चिट्ठी पत्री

२

प्रेमचंद

चिट्ठी | पत्री

२

संकलन लिप्यंतर शब्दार्थ

अ मृ त रा य

हंस प्रकाशन
इ ला हा बा द

प्रकाशक
हंस प्रकाशन इलाहाबाद

मुद्रक
भार्गव प्रेस इलाहाबाद

आवरण-सज्जा
कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव

प्रथम संस्करण
प्रेमचंद स्मृति दिवस १९५२

मूल्य—आठ रुपया

भूमिका

प्रेमचंद की चिट्ठी-पत्री का घेरा बहुत लंबा चौड़ा था। निजी दोस्तों के अलावा हिन्दी और उर्दू के बहुत से नये और पुराने, नामी और गुमनाम लेखकों से उनकी बराबर ख़त किताबत थी। हंस, जागरण और माधुरी के संपादन काल में संपादकीय पत्रव्यवहार भी बहुत काफ़ी था। लेकिन इसका थोड़ा ही अंश अब तक मिल सका है। बाक़ी के मिलने की बहुत आशा भी नहीं है। अधिकांश चिट्ठियाँ नष्ट हो चुकी हैं। जो कुछ शायद कहीं कोनों-अँतरों में पड़ी होंगी उनको बाहर निकालने में भी इस संग्रह से थोड़ी-बहुत सहायता मिलेगी।

पत्र-साहित्य कितनी अनमोल निधि है, इसकी चेतना हम लोगों को प्राप्त नहीं है। 'हम लोगों' से मेरा अभिप्राय विशेष रूप से हिन्दी-भाषी लोगों से है, क्योंकि, पश्चिम के देशों को तो छोड़ ही दीजिए जो इस विषय में बहुत ही सचेत हैं, हमारे यहाँ भी बंगला, उर्दू, मराठी आदि भाषाओं में पत्रों को संभालकर रखने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

पत्रों को इकट्ठा करने के काम में देर भी बहुत की गयी। मुंशीजी के देहान्त के बरस दो बरस के भीतर अगर इस काम में हाथ लगाया जा सकता तो निश्चय ही और भी सफलता मिलती। लेकिन वह न तो मेरे लिए संभव हुआ और न मेरे किसी अन्य, अधिक वयस्क मित्र के लिए। सिर्फ़ मेरे बंधु मदनगोपालजी ने इस संबंध में काफ़ी जागरूकता का परिचय दिया और कुछ पत्रों का संग्रह भी किया, पर अधिक सफलता उन्हें भी नहीं मिली।

असल बात यह है कि वह ख़ज़ाना ज़्यादातर ग़ायब हो ही गया। इस उदासीनता के पीछे कुछ तो निश्चय ही वह मनोभाव भी रहा होगा जिसे फ़िराक़ गोरखपुरी ने अपने एक संस्मरण में इस तरह बयान किया—किसे पता था कि यह प्रेमचंद एक दिन इतना बड़ा आदमी हो जायगा!...

मुंशीजी और फ़िराक़ का बहुत लंबा और बहुत आत्मीय संबंध रहा और अगर उन्होंने मुंशीजी की चिट्ठियाँ सँभालकर रखी होतीं तो आज उनके पास एक बड़ा-सा पुलिन्दा होता।

औरों के साथ कुछ आकस्मिक विपत्तियाँ भी रहीं। मसलन् क़ाज़ी अब्दुल ग़फ़्फ़ार के पास (जो मौलवी अब्दुल हक़ के पाकिस्तान चले जाने के बाद अंजुमन तरक़्क़िए उर्दू के सर्वेसर्वा बने) मुंशीजी और दूसरे लोगों के पत्रों का

संग्रह था, उसे उनकी पुत्रवधू ने अपनी हिस्टीरिया के एक दौरे में आग लगा दी।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार और सुदर्शन को चिट्ठियाँ देश के विभाजन की भेंट चढ़ गयीं।

चिट्ठियाँ संभालकर रखने में आचार्य शिवपूजन सहाय पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी से कुछ ही घटकर होंगे, लेकिन उनके ऊपर एक चोर ने हाथ साफ कर दिया। शिवजी उन दिनों अपने गाँव पर ही थे जब कि उनके यहाँ चोरी हुई और चोर उन चिट्ठियोंवाली अटैची को कुछ दूसरे ही माल-मता के धोखे में उठा ले गया। बाहर जाकर जब उसने अटैची को खोला तो बड़ी घोर निराशा हुई और उसने चिट्ठियाँ सब की सब कुएँ में झोंक दीं। अगले रोज सबेरे वह पानी पर उतराती हुई दिखायी दीं, मगर गल चुकी थीं और किसी काम की न रह गयी थीं। कुछ छूटकर चिट्ठियाँ, जो शायद कहीं और थीं, बच गयीं। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के सौजन्य से उन्हें यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

मुंशी दयानारायन निगम को लिखी हुई चिट्ठियों का उद्धार किस तरह एक ढहे हुए मकान की एक गिरी-पड़ी कोठरी में से हुआ, इसकी कहानी 'चिट्ठी पत्री' के पहले खण्ड की भूमिका में पढ़िए।

जैनेन्द्रकुमार-वाली चिट्ठियों की टाइप की हुई प्रतिलिपि मुझे मदनगोपाल जी से मिली। उसमें कई स्थानों पर वाक्यांश छूट गये हैं। मैंने इसके संबंध में जिज्ञासा प्रकट की तो मदनगोपालजी ने बतलाया कि अब इसका कोई उपचार संभव नहीं है क्योंकि मूल पत्र अब खो चुके हैं। पहली बार, टाइप करवाने में किसी कारण से ये छूटें रह गयीं। मूल पत्र जैनेन्द्रजी की इच्छानुसार उनको लौटा दिये गये। दुबारा, प्रतिलिपि को मिलाने के लिए जब उन मूल पत्रों की जरूरत हुई, तो उनका कहीं पता न चला। लिहाजा उन चिट्ठियों को वैसा ही छापा जा रहा है, हाँ, इतना मैंने जरूर किया है कि जहाँ पूर्वापर मेल बैठा कर मैं किसी वाक्य को पूरा कर सकता था वहाँ मैंने ब्रैकेट लगाकर ऐसा कर दिया है। संयोग से मुंशीजी के कागजों में जैनेन्द्रजी के कुछ पत्र भी मिल गये। उनमें से कुछ पत्र चुनकर, जो दोनों के पत्राचार की कड़ी में आते थे, मैंने यथास्थान दे दिये हैं। दुर्भाग्यवश यह चीज और किसी के साथ न की जा सकी। बनारसीदासजी के कुछ पत्र जो उन्होंने मुंशीजी को लिखे मिले जरूर लेकिन उनका तारतम्य मुंशीजी के पत्रों से न बैठने के कारण उन्हें छोड़ देना ही ठीक जान पड़ा।

बनारसीदासजी मुंशीजी को अक्सर अंग्रेजी में ही लिखते थे, लिहाजा मुंशीजी के जवाब भी अक्सर अंग्रेजी में हैं। इसी तरह और भी कुछ पत्राचार अंग्रेजी में

है— जैसे श्री रघुनाथ सहाय, श्री बनारसीदास सारस्वत, पं० श्रीराम शर्मा आदि के साथ। मैंने इनको अनुवाद करके देना ही ठीक समझा। पर जो पत्र मूल अंग्रेजी में हैं उनके नीचे इस बात का उल्लेख कर दिया गया है। इनमें से तीन पत्रों का मूल अंग्रेजी भी लोगों की दिलचस्पी का ख्याल करके परिशिष्ट में दे दिया गया है।

उर्दू पत्रों को ज्यों का त्यों छापकर, फुटनोट में कठिन शब्दों का अर्थ दे दिया गया है।

एक बात और। मुंशी दयानारायन निगम-वाले अधिकांश पत्रों की, जो 'चिट्ठी-पत्री' के पहले खण्ड में प्रकाशित हैं मूल लिपि मेरे सामने थी। जहां मूल लिपि नहीं भी थी, वहां उनकी फ़ोटो-प्रतिलिपि थी। अतः उनके पाठ की शुद्धता के लिए मैं पूरी तरह उत्तरदायी हूं। लेकिन इस खण्ड में ऐसे भी कुछ पत्र हैं जिनमें मुझे इस प्रकार की सुविधा न थी, जिनकी टाइप की हुई प्रतिलिपि ही मेरे सामने थी या जिन्हें मैंने कुछ पत्र-पत्रिकाओं से संग्रह किया है। असली का डर उनमें भी कुछ खास नहीं है क्योंकि वह सभी ज़िम्मेदार लोग हैं। तो भी अपनी यह कठिनाई मुझे आपके सामने रखनी उचित जान पड़ी। वैसे, पाठ अधिक से अधिक शुद्ध हो इसकी पूरी कोशिश मैंने की है। मिसाल के लिए इम्तियाज़ अली ताज को लिखे गये पत्रों की जो नक़लें मेरे पास थीं, उनमें जहां-तहां कुछ पाठ भ्रम था। इस प्रसंग में मैंने ताज साहब को तीन ख़त भी पाकिस्तान भेजे। लेकिन जो भी वजह हो, मुझे कोई जवाब नहीं मिला। मगर ख़ैर इस कमी को मेरे दोस्त डाक्टर क़मर रईस ने पूरा कर दिया जो उन दिनों दिल्ली यूनिवर्सिटी में उर्दू पढ़ाते थे और आजकल ताशकन्द यूनिवर्सिटी में हैं। उनकी मेहरबानी से मुझे पाकिस्तान के मशहूर रिसाले 'नक़ूश' का 'मकातीब नंबर' मिला। उसमें ताज साहब को लिखे गये ख़ुतूत के सब पाठ मौजूद थे। मैंने अच्छी तरह उससे मिलाकर भ्रम पाठ को ठीक कर लिया है।

मुंशीजी को ख़ुद भी चिट्ठियां सम्भालकर रखने की आदत न थी। जवाब देते ही फाड़कर फेंक देते थे। तो भी न जाने कैसे और क्यों, उनके कागज़ों में बहुत-सी अल्लम-ग़ल्लम बेकार चिट्ठियों के ढेर में दस-पांच अच्छी चिट्ठियां भी मिल गयीं— आचार्य नरेन्द्र देव की जो उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू की किताब 'लेटर्स फ्राम ए फादर' के हिन्दी अनुवाद के सिलसिले में मुंशीजी को लिखी थी, पंडित अमरनाथ झा की, जो उन्होंने 'रंगभूमि' पढ़कर १९२१ में देहरादून से लिखी थी; पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी की, जो उन्होंने मुंशीजी को अभिनन्दित करते हुए शान्तिनिकेतन से लिखी थी; मौलवी अब्दुल हक़ की, जो उन्होंने अपनी लिखी

किताब के लिए मुंशीजी से गांधी पर कोई लेख लिखवाने के सिलसिले में लिखी थीं; जनाब अब्दुल माजिद साहब दरियाबादी की, जो उन्होंने 'चौगाने हस्ती' पढ़कर मुंशीजी को लिखी थीं ख़्वाजा ग़ुलामुस्सैयदैन की जो उन्होंने मुंशीजी के साहित्य के प्रति अपना अनुराग व्यक्त करते हुए लिखी थी और जिसमें उन्होंने मुंशीजी से अपील की थी कि उर्दू को छोड़ें नहीं; मक़बूल हुसैन और सुदर्शन की जो उन्होंने मुंशीजी को बंबई की फ़िल्मी दुनिया से नाता तोड़कर आने पर लिखी थीं, फ़िराक़ गोरखपुरी की जो ख़ुद अपनको बहुत ख़ूबसूरती से उजागर करती है।

पढ़नेवालों को इसमें दिलचस्पी होगी इस ख़याल से इन फुटकर चिट्ठियों को भी शामिल कर लिया गया है।

अमृतराय

पत्र-क्रम

चिट्ठी पत्री—२

जनेन्द्र कुमार

२

पहाड़ी धीरज दिल्ली
२० फरवरी १९३०

भाई जी

आपका पत्र मिला। वह भूखा पात्रोपमयाना भी कल एक Delivery देर से मुझे मिल गया। कहानी मैंने १४ को शुरू की थी पर खतम अब भी नहीं हुई। शुरू करने के बाद ही मैं तो उलझन में पड़ गया। इधर आपके उत्साह ने बार भी देर लगाना पाप जान पड़ा। ये दो कहानियाँ भेज रहा हूँ। नाथूराम जी प्रेमी (बम्बई) से वापस मँगा ली है। 'दिल्ली में' आपके लिए और 'फोटोग्राफी' भारती के लिए। इसी से अभी तो संतोष मान लें ऐसी प्रार्थना है। इच्छा तो थी कोई अपूर्व चीज भेजूँ पर इच्छा पूरी न हुई। फिर आगे करूँगा। यह भी अपनाने पूरे मन की नहीं है फिर भी उम्मीद है बुरी नहीं है। अंतिम (आधा) पैराग्राफ यदि आप सहमत हों तो काट दीजिए। बिलकुल व्यर्थ है। वास्तव में थोड़ा भी काम न आया है। आप यदि खास तौर पर उसे रखना चाहें तो बात दूसरी नहीं तो उड़ा ही दें। उसमें ऐसा लगता है जैसे लेखक बड़-बड़ा रहा है। लेखक की यह Mentality हठात् क्यों प्रकट हो?

'फोटोग्राफी' मेरी पहली कहानी है। वह भी 'माधुरी' के लिए वाले से ज्यादा ही अच्छी है ऐसा विश्वास है। न भी पसंद आवे तो गुरेज न होगा।

'मेरी मेहनत' भी आपने सिफारिश ही की। मुझे भी ऐसी ही आशा थी। निर्णय का सब तरह पता चलेगा।

क्या आप सम्मेलन में आवेंगे? और क्या मुझे वहाँ जाने की सलाह देंगे? परिचय का लाभ हो यदि लाभ समझा जाय तो बात दूसरी नहीं तो सम्मेलन में धरा क्या है? उन (सम्मेलनी) लोगों में से किसी के दर्शन की उत्कट चाह हो सो भी बात नहीं है। सलाह दें।

आपका उपन्यास कैसा चल रहा है? मुझे भी बहुत और बराबर लिखने का मशवरा बताइए न? अब मैं पाता हूँ क्या कहूँ एक कहानी भी न की। शुरू ही

न हुई — तबीयत नहीं हाजिर हुई। कोई इलाज अवश्य बताइए।
विशेष मेरे योग्य सेवा लिखिये।

आपका ही
जैनेन्द्र

२

सरस्वती प्रेस,
२५ नवम्बर १९३०

प्रिय मित्रवर,

वंदे। पत्र मिला। बड़ा आनंद हुआ। 'परख' मैंने पढ़ लिया था और पढ़कर मुग्ध हो गया था। इसकी आलोचना दिसम्बर के 'हंस' में कर रहा हूँ जो विशेषांक होगा। 'परख' के चारों चित्र — सत्य, कट्टो, बिहारी और गरिमा — खूब हुए हैं। सत्य का गंभीर, मानसिक संग्राम। बिहारी का उससे भी पवित्र किन्तु सरल और विनोदमय त्याग। कट्टो तो देवी है। आपकी शैली और चरित्र प्रदर्शन का ढंग मुझे बहुत पसंद आया। मैंने सरस्वतीवाली आलोचना नहीं देखी लेकिन आपके उपन्यास की तारीफ तो उन्हें करना ही चाहिए था। मैं ऐसी रचना पर आप को बधाई देता हूँ।

अन्य प्रकाशकों की स्थिति इस समय अच्छी नहीं है। मौलिक उपन्यास तो कई अच्छे निकले हैं। प्रसाद जी का 'कंकाल' 'उग्र' जी का शराबी वृन्दावनलाल वर्मा का 'गढ़कुंडार'। 'गढ़कुंडार' तो रोमांस है पर 'कंकाल' बहुत ही सुंदर है। लेकिन मौलिक उपन्यासों को छोड़कर अनुवादों का बाजार ठंडा पड़ा है। 'मैक्मीलन' खुद अपने प्रेस में छपवाने का इरादा कर रहा हूँ। आजकल मेरा 'गबन' छप रहा है, वह निकल जाय तो इसे शुरू करूं।

'हंस' के छः अंक निकल चुके। सितंबर और अक्टूबर में प्रेस और पत्रिका जमानत मांगे जाने के कारण बन्द पड़े रहे। प्रेस के आर्डिनेंस उठ जाने पर फिर निकले हैं।

मेरी पत्नी को पिकेटिंग के जुर्म में दो महीने की सजा हो गई। कल फैसला हुआ है। इधर पन्द्रह दिन से इसी में परेशान रहा। मैं जाने का इरादा ही कर रहा था पर उन्होंने खुद जाकर मेरा रास्ता बंद कर दिया।

और क्या लिखूं? मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि आप गुजरात में स्वस्थ और प्रसन्न हैं। हम लोग भी अच्छी तरह हैं।

एक बार फिर 'परख' के लिए बधाई लीजिए। हिन्दी उपन्यास अब फैलेगा

इसमें सन्देह नहीं। एक मास के अन्दर 'कंकाल' 'परख' 'गढ़कुंडार', 'शराबी' जैसी पुस्तकें निकल चुकीं — यह भविष्य के लिए शुभ लक्षण है।

न जाने आप से कब मुलाकात होगी। मालूम होता है युग बीत गया।

भवदीय—

धनपतराय

सेण्ट्रल जेल गुजरात (पंजाब)
४ सितम्बर १९३०

बाबू जी

आपका खत समय पर मिल गया था। मैंने सोचा कि शायद विशेषांक निकल न गया हो तो एक कहानी लिख डालूँ उसके साथ ही पत्र का जवाब दे दूँगा। लेकिन यहाँ की धूमधाम में कहानी तो लिखी न जा सकी और यह वक्त आ गया कि खत के जवाब को और टालना धृष्टता हो जाती। इससे इतनी देर बाद भी खाली खत ही भेज रहा हूँ। क्षमा करें।

क्या विशेषांक निकल गया? एक (मेरी) प्रति शेख मुहम्मद अली साहब मिल ओनर, गुजरात के पते पर भिजवा दें। मेरा नाम न लिखें। वह मुझे यहाँ पहुँच जायगी। जेल के पते पर मैंने नये अखबार नहीं मिलने दिये जाते। कृपा-कर ध्यान रखकर जरूरी सूचना बनारस दे दें।

क्या आपकी पत्नी के जेल जाने पर धन्यवाद दूँ? यह इसलिए भी धन्यवाद का विषय हो सकता है कि आपकी इस तरह जेल जाने की राह और आवश्यकता रुक गयी। कितने पतियों ने पत्नियों को रोक रखा है लेकिन वे पति धन्य हैं जिनकी पत्नियाँ आगे बढ़कर जेल में पहुँच गयीं और उनको रुकने को लाचार कर गयीं।

'कंकाल' की सद्य-प्रकाशित प्रति मैंने देखी थी। प्रसाद जी की कृति है, बुरी कैसे होगी? 'उग्र' जी के 'शराबी' का नमूना 'मतवाला' के पृष्ठों में देखा जा पड़ता है। 'गढ़कुंडार' बिलकुल ही नया नाम और नया नाम मालूम होता है। मैं नहीं जानता मैं यहाँ किसी से कोई चीज मँगा सकता हूँ। हाँ 'शराबी' और 'गढ़कुंडार' पढ़ना जरूर चाहूँगा। आपके पास पढ़ने को कोई प्रति होगी? अगर 'हंस' के लिए प्राप्त हुई दो प्रतियों में से एक यहाँ (अर्थात् ऊपर लिखे पते पर) भेजी जा सकें तो मैं आलोचना 'हंस' में भेज दूँगा।

ऋषभचरण का पत्र मिला कि आप 'परख' को प्रसाद स्कूल के अधिक निकट समझते हैं। आपने लिखा है कि आपको वह पसन्द आयी है और आप समालोचना 'हंस' के इसी अंक में दे रहे हैं। 'हंस' मिला तो आलोचना में अधूरा ही। पर 'परख' में आपके अनुसार कहाँ क्या अधिक और कहाँ क्या कम होना चाहिए था यह मैं आपसे जाने बिना संतुष्ट न हूँगा। परीक्षक के ढंग से मैं उसे आपको सौंपना चाहता हूँ। अंतर केवल इतना ही कि परीक्षार्थी परीक्षक के नम्बर देने के ढंग को भी समझना चाहता है। ऋषभचरण ने जो स्कूल की बात लिखी उसका भी खुलासा मैं जानना चाहूँगा।

पता चला है कि अवध उपाध्याय जी की आलोचना देवीदत्त जी ने 'सरस्वती' में नहीं छापी। असल बात तो यह है कि वह थी भी इस लायक नहीं। लेकिन आलोचना उन्हें पसन्द नहीं आयी इतना ही होता तो अचरज की बात न थी। सुनते हैं किताब उन्हें और भी नापसन्द है। एक और मित्र के सम्बन्ध में मालूम हुआ है कि उन्हें 'परख' मेरी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं लगी। गोया कि लिखने से पहले ही मेरी लेखनी की प्रतिष्ठा बन गयी थी। इन सब ऊटपटांग सम्मतियों का क्या बनाया जाय! और मैं समझता हूँ कि अगर लोग आपको और प्रसाद जी को मंगलाप्रसाद पारितोषिक नहीं देते और फिर भी योग्य व्यक्ति को ही देना चाहते हैं तो वह मुझे ही दे सकते हैं। पारितोषिक का सम्मान इसी में है।

तो 'मेरी मेगज़ीन' आप छापेंगे? यह ठीक है। 'ग़बन' कब तक ख़त्म होगा? कितनी मोटी चीज़ है? कोई 'रंगभूमि' के टक्कर की दूसरी चीज़ भी लिखिए न? आप और क्या लिख रहे हैं? न जाने कौन कहता था कि एकेडमी के लिए Galsworthy का अनुवाद करना आपने शुरू किया है? क्या यह ठीक है? मुझसे आप पूछें और नाराज़ न हों तो मैं कहूँगा कि गाल्सवर्दी के अनुवादक तो बहुतेरे निकल आयेंगे प्रेमचंद इस काम को करते हैं तो हिन्दी का दुर्भाग्य है। गाल्सवर्दी की चीज़ों को मैंने दिल्ली जेल में चख देखा था विलायतीपन और विलायती भाषा के अजनबीपन के आवरण को दूर रखने के बाद क्या मैं ज़रा देर के लिए भी गाल्सवर्दी को प्रेमचंद से ऊँचा मान सकता हूँ? आप कहानियाँ लिखें रंगभूमियाँ लिखें पर मेरा निवेदन है कि गाल्सवर्दी के अनुवाद में फँसकर प्रेमचंद से वंचित रखने का अनुपकार हिन्दी साहित्य पर न करें।

'माधुरी' वालों ने मेरा पुरस्कार तो भेज ही दिया होगा। 'माधुरी' में 'परख' की समालोचना निकली या नहीं? 'माधुरी' की जो मेरी प्रति शेख मुहम्मद अली के पते पर भेजने को कह दें तो कृपा हो।

आपसे मिलने को जी तो चाहता है। सदेह साक्षात् और वार्तालाप नहीं

होगा तब तक पत्र से ही सही।

मैं यहाँ सबका कुशल और आनन्द से हूँ। आपकी बधाइयों पर प्रसन्न और कृतज्ञ हूँ। शायद आप इस बात पर एक और बधाई भेज दें कि अभी कुछ दिन हुए परमात्मा ने मुझे एक पुत्र का पिता बना दिया है।

आपका
जैनेन्द्र कुमार

४

नवल किशोर प्रेस
प्रकाशन विभाग
लखनऊ।
१७ दिसम्बर १९३०

प्रिय जैनेन्द्र जी

वंदे। पत्र मिला। वाह! आपने कहानी लिख दी होती तो क्या पूछना। मैंने तो इस वजह से नहीं कहा था कि आप को कष्ट पर कष्ट दे रहा हूँ। अभी तक समय है, हालांकि छपाई शुरू हो गयी है। पर आप की कहानी मिल जाती तो आखिर वक्त भी दे देता। क्या अब भी मुश्किल है?

'परख' की आलोचना मैं 'माधुरी' या 'हंस' में करूँगा। मेरे पास दो प्रतियों में से एक भी नहीं बची। एक तो जेल भेज दी था दूसरी एक महिला ले गयी और अभी तक लौटा रही है। इसलिए उसका असर जो दिल पर पड़ा था वही लिखूँगा। यह 'कथा' तो नई चीज है मगर मेरा मन उसके पढ़ने में न लगा। दो एक चरित्रों का चित्रण उसमें अच्छा हुआ है। उसकी आलोचना भी करूँगा।

'गबन' अभी तैयार नहीं हुआ। तीन सौ पृष्ठ छप चुके हैं। अभी एक सौ पृष्ठ और होंगे। यह एक सामाजिक कथा है। मैं पुराना हो गया हूँ और पुरानी शैली निभाये जाता हूँ। कथा को बीच से शुरू करना या इस तरह शुरू करना कि उसमें ड्रामा का चमत्कार पैदा हो जाये मेरे लिए मुश्किल है। पुरस्कारों का विचार करना मैंने छोड़ दिया। अगर लिख जाए तो मैं 'सुधा' पर इस तरह लिखूँ जिस तरह पढ़ा हुआ पत्र लिख जाए। आप या प्रसाद जी पा जायें तो मुझे समान हर्ष होगा। आप का दावा अब्बल है इसलिए ज्यादा खुश हूँगा।

पुत्र मुबारक। ईश्वर चिरायु करे। या या कहूँ चिरायु हो। मैं तो पुराने जमाने का आदमी हूँ। दो पुत्रों तक तो बधाई दूँगा इस के बाद जरा सोचूँगा।

'हंस' और 'माधुरी' दोनों ही यथास्थान भेज दी जाएँगी। 'शराबी' और 'गढ़कुंडार' दोनों ही की एक-एक प्रति मिली थी। वे दोनों भी मैंने पढ़कर जेल भेज दीं। अब तो उनके आने पर किताबें वापस होंगी। आखिर आप कब तक आवेंगे। 'माधुरी' में दो में से एक भी आलोचना के लिए नहीं आयी।

अब आपके उस प्रश्न का जवाब कि 'परख' को मैं प्रसाद स्कूल के निकट क्यों समझता हूँ। मैं तो कोई स्कूल नहीं मानता आपने ही एक बार 'प्रसाद स्कूल' 'प्रेमचंद स्कूल' की चर्चा की थी। उसमें जरूर कुछ अन्तर है मगर वह अन्तर कहाँ है यह मेरी समझ में कुछ नहीं आता। आपकी शैली में स्फूर्ति — सजीवता — कहीं अधिक है। चुटकियाँ चुलबुलापन कहीं अधिक है। प्रसाद जी के यहाँ गम्भीरता और कवित्व अधिक है। *Realist* हम में से कोई भी नहीं है। हममें से कोई भी जीवन को उसके यथार्थ रूप में नहीं दिखाता बल्कि उसके वांछित रूप में ही दिखाता है। मैं नग्न यथार्थवाद का प्रेमी भी नहीं हूँ। आपसे मिलने पर 'परख' के विषय में बातें होंगी — तब तक 'गबन' भी तैयार हो जायगी।

आशा है आप प्रसन्न होंगे।

भवदीय—
धनपतराय

P S अगर हो सका तो मैं 'शराबी' और 'गढ़कुंडार' और 'कंकाल' तीनों ही किसी तरह मँगवाकर भेजूँगा। समालोचना अवश्य कीजियेगा 'हंस' के लिए।

५

सेंट्रल जेल, मुलतान (पंजाब)
१७ सितम्बर १९३१

बाबू जी

बहुत दिन हुए यहाँ से आपको अमीनुद्दौला पार्क के पते पर एक खत डाला था। मालूम नहीं आपको वह मिला भी या नहीं। आपका खत न पाने से जान पड़ता है नहीं मिला।

'परख' हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर ने ही छापी है। आपको अवश्य मिल गयी होगी। वह आपको कैसी लगी? आपकी खुली सम्मति सुनने की बड़ी इच्छा है। नाथूराम जी प्रेमी ने उस पर अवध उपाध्याय जी की विस्तृत समालोचना की एक प्रति मेरे पास भेजी है। वह उपाध्याय जी ने सरस्वती में भेजी थी। मुझे

तो अखबार मिल पाते नहीं इससे मालूम नहीं रहता कहाँ क्या निकलता है। क्या आपने भी उसके संबन्ध में 'हंस' या 'माधुरी' में कुछ लिखा है? उपाध्याय जी ने तो किताब की बेहद तारीफ कर दी है। आप जानते हैं मुझे उनकी परख पर बहुत भरोसा नहीं है। विज्ञान की तराजू पर तौल कर जो साहित्य पर निर्णय दिया जाता है, उसके मोह में मैं नहीं पड़ना चाहता लेकिन आपकी और दो एक सज्जनों की अच्छी सम्मति मुझे चाहिए ही। आपकी और उनकी निगाहों में पास समझा गया तो यही मेरे लिए सब कुछ है। शेष से तारीफ पाने की इच्छा जैसे या चिन्ता मुझे बिलकुल भी नहीं है। आपको मैं 'मेरी मगजीन' दे आया था। नौ-दस महीने हुए होंगे। उसके प्रकाशित होने का अब क्या हाल है? जैसे और जहाँ से उचित समझें छपवा दें और पैसा घर भिजवा दें। मैं यहाँ जेल में हूँ पर घर हर तांबे के पैसे की जरूरत है। इस सम्बन्ध में मैं यह भी आपकी मार्फत 'माधुरी' के व्यवस्थापक जी को याद दिलवाना चाहता हूँ कि शायद अप्रैल (या आस-पास के) महीने की 'माधुरी' में प्रकाशित कहानी (दिल्ली में) का पुरस्कार मुझे नहीं मिला है। वह कृपाकर घर भेज दिया जाना चाहिए। थोड़ा कष्ट उठाकर यह काम आप करा सकेंगे तो बड़ी कृपा होगी और 'मेरी मेगजीन' का भी ध्यान रखेंगे तो आभार होगा।

आपने इस बीच क्या लिखा है? नई छपी चीजों की एक-एक प्रति अवश्य भिजवा दीजिए। जेल में किताबों की कीमत और जरूरत और चाह कितनी रहती है यह हमीं जान सकते हैं।

और आप कैसे हैं, यह अवश्य लिखें। यहाँ तो एक आपके जबरदस्त मुरीद हैं। जब उन्हें पता लगा कि मैं आपसे writing terms पर होने का सौभाग्य रखता हूँ तो उन्होंने मुझे शपथ अनुरोधपूर्वक आपको उनकी Respects लिख भेजने को कहा। वे आपकी कुशलता सुनने के बड़े आकांक्षी हैं। मैं उन्हें उन आठ-दस घंटों का हाल सुना चुका हूँ जो मुझे अब तक आपके साथ बिताने के लिए मिले हैं। उनकी याद मेरे भीतर बसी है। बड़े मजे की वह याद है। लेकिन वह मैं आपको नहीं सुनाऊँगा।

आशा है आप प्रसन्न और स्वस्थ होंगे और पत्र देंगे।

मैं यहाँ इतनी अच्छी तरह हूँ कि क्या कहूँ। खाना बहुत अच्छा मिलता है, जेल के अन्दर घूमने को और खेलने को खूब मिलता है। बस अखबार नहीं मिलते यही जरा कमी है। सो यह भी कुछ नहीं अगर नई-नई किताब मिलती रहें।

विशेष नमस्कार और आदर के साथ

आपका
जैनेन्द्र कुमार

'हंस' और 'माधुरी' दोनों ही यथास्थान भेज दी जाएँगी। 'शराबी' और 'मधु कुंवार' दोनों ही की एक-एक प्रति मिली थी। वे दोनों भी मैंने पढ़कर पास भेज दीं। अब तो उनके आने पर किताबें वापस होंगी। आखिर आप कब तक आवेंगे। 'माधुरी' में दो में से एक भी आलोचना के लिए नहीं आयी।

अब आपके उस प्रश्न का जवाब कि 'परख' को मैं प्रसाद स्कूल के निकट क्यों समझता हूँ। मैं तो कोई स्कूल नहीं मानता आपने ही एक बार 'प्रसाद स्कूल' 'प्रेमचंद स्कूल' की चर्चा की थी। शैली में जरूर कुछ अन्तर है मगर वह अन्तर कहाँ है यह मेरी समझ में खूब नहीं आता। आपकी शैली में स्फूर्ति — सजीवता — कहीं अधिक है। चुटकियाँ चुलबुलापन कहीं अधिक है। प्रसाद जी के यहाँ गम्भीरता और कवित्व अधिक है। Realist इन में से कोई भी नहीं है। इनमें से कोई भी जीवन को उसके यथार्थ रूप में नहीं दिखाता बल्कि उसके कल्पित रूप में ही दिखाता है। मैं नग्न यथार्थवाद का प्रेमी भी नहीं हूँ। आपसे मिलने पर 'परख' के विषय में बातें होंगी — तब तक बचन भी तैयार हो जायगी।

आशा है आप प्रसन्न होंगे।

भवदीय—
धनपतराय

P. S. अगर हो सका तो मैं 'शराबी और मधुकुंवार' और 'कंकाल' तीनों ही किसी तरह मँगवाकर भेजूँगा। समालोचना अवश्य कीजियेगा 'हंस' के लिए।

५

स्पेशल जेल, गुजरात (पंजाब)
१० दिसम्बर १९३१

बाबू जी

बहुत दिन हुए यहाँ से आपको अमीनुद्दौला पार्क के पते पर एक खत डाला था। मालूम नहीं आपको वह मिला भी या नहीं। आपका खत न आने से जान पड़ता है, नहीं मिला।

'परख' हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर ने ही छापी है। आपको अवश्य मिल गयी होगी। वह आपको कैसी लगी? आपकी खुली सम्मति सुनने की बड़ी इच्छा है। नाथूराम जी प्रेमी ने उस पर पद्म उपाध्याय जी की विस्तृत समालोचना की एक प्रति मेरे पास भेजी है। यह उपाध्याय जी ने सरस्वती में भेजी थी। मुझे

तो अखबार मिल पाते नहीं इससे मालूम नहीं रहता कहाँ क्या निकलता है। क्या आपने भी उसके संबन्ध में 'हंस' या 'माधुरी' में कुछ लिखा है? उपाध्याय जी ने तो किताब की बेहद तारीफ कर दी है। आप जानते हैं मुझे उनकी परख पर बहुत भरोसा नहीं है। विद्वत्ता की तराजू पर तोल कर जो साहित्य पर निर्णय दिया जाता है, उसके मोह में मैं नहीं पड़ना चाहता लेकिन आपकी और दो एक सज्जनों की अच्छी सम्मति मुझे चाहिए ही। आपकी और उनकी निगाहों में पास समझा गया तो यही मेरे लिए सब कुछ है। शेष से तारीफ पाने की इच्छा जैसे या चिन्ता मुझे बिलकुल भी नहीं है। आपको मैं 'मेरी मग्ज़ीन' दे आया था। नौ-दस महीने हुए होंगे। उसके प्रकाशित होने का अब क्या हाल है? जैसे और जहाँ से उचित समझें छपवा दें और पैसा घर भिजवा दें। मैं यहाँ जेल में हूँ पर घर पर तो पैसे की जरूरत है। इस सम्बन्ध में मैं यह भी आपकी मार्फत 'माधुरी' के व्यवस्थापक जी को याद दिलवाना चाहता हूँ कि शायद अप्रैल (या आस-पास के) महीने की 'माधुरी' में प्रकाशित कहानी (किसी में) का पुरस्कार मुझे नहीं मिला है। वह छपाकर घर भेज दिया जाना चाहिए। थोड़ा कष्ट उठाकर यह काम आप करा सकेंगे तो बड़ी कृपा होगी और 'मेरी मेगज़ीन' का भी ध्यान रखेंगे तो आभार होगा।

आपने इस बीच क्या लिखा है? नई अपनी चीजों की एक-एक प्रति अवश्य भिजवा दीजिए। जेल में किताबों की कीमत और जरूरत और चाह कितनी रहती है यह तुम्हीं जान सकते हो।

और आप कैसे हैं, यह अवश्य लिखें। यहाँ जो एक आपके जबरदस्त मुरीद हैं। जब उन्हें पता चला कि मैं आपसे writing terms पर होने का सौभाग्य रखता हूँ तो उन्होंने मुझे खासा अनुरोधपूर्वक आपको उनकी Respects लिख भेजने को कहा। वे आपकी कुशलता सुनने के बड़े आकांक्षी हैं। मैं उन्हें उन आठ-दस घंटों का हाल सुना चुका हूँ जो मुझे अब तक आपके साथ बिताने के लिए मिले हैं। उनकी याद मेरे भीतर बसी है। बड़े मजे की वह याद है। लेकिन वह मैं आपको नहीं सुनाऊँगा।

आशा है आप प्रसन्न और स्वस्थ होंगे और पत्र देंगे।

मैं यहाँ इतनी अच्छी तरह हूँ कि क्या कहूँ। खाना बहुत अच्छा मिलता है, जेल के अन्दर घूमने को और खेलने को खूब मिलता है। बस अखबार नहीं मिलते यही जरा कमी है। सो यह भी कुछ नहीं अगर नई-नई किताब मिलती रहें।

विशेष नमस्कार और आदर के साथ

आपका
जैनेन्द्र कुमार

६

स्पेशल जेल गुजरात
७ जनवरी १९३१

भाइयम बाबू जी

आपका पत्र समय पर मिल गया था। उत्तर आज इसलिए दे रहा हूँ कि जनवरी का पहला हफ्ता खतम हो जाता है और 'हंस' के लिए कहानी भेजने के ख्याल को पास रखने की गुंजायश भी बिलकुल खतम हो जाती है। बात तो असल में यह है कि कहानियाँ हो गई हैं पर भेजी नहीं। प्रेस आर्डिनेन्स की खबर पाते ही डर हुआ कि 'हंस' का यह अंक निकल भी गया तो आगे नहीं निकलने दिया जायगा। और क्या मालूम विशेषांक भी निकल पाये या नहीं। फिर संभावना थी कि उन कहानियों को जल्दी ही हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर भेजना पड़ जाय। वह संग्रह छापता है और कुछ नयी अप्रकाशित कहानियाँ चाहते हैं। बात जनवरी तक संग्रह के निकल जाने की थी। आपको कहानी भेजी गई और अखबार बन्द हो गया या विशेषांक में उसके निकलने की संभावना न रही तो इस तरह उसके फिर जल्दी बम्बई जाने में गड़बड़ पड़ जाती। इस तरह दो चार कहानियाँ इस बीच लिख डाली गयी हैं मेरे पास हैं। पुरानी प्रकाशित कहानियों को उनसे (नाथूराम जी प्रमो से) पाने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ताकि उनको एक बार फिर देखकर उनके साथ ही इन नयी को भी रवाना कर दूँ। कृपा कर लिखिये कि आर्डिनेन्स की कृपा आपके प्रेस और पत्र पर तो नहीं हो गई? पत्र निकलता हो तो कृपाकर मेरी भूल को क्षमा कर दीजिए। पत्र निकले तो अगर पहले लिखे पते पर न भेजा गया हो तो जेल के पते पर ही भिजवा दीजिएगा। 'माधुरी' भी। 'माधुरी' की उस कहानी के मेरे पुरस्कार के बारे में क्या हुआ सो आपने नहीं लिखा था। 'माधुरी' के नाम पर वह बात भी याद आ गयी है तो आपको भी याद दिला देता हूँ।

'गढ़ कुंडार' और 'शराबी' अगर आपको प्राप्त हो गये हैं तो मैं देखना चाहूँगा। समालोचना जहाँ लिखेंगे भेज दूँगा।

'गबन' तैयार हो गया? इसके बाद ही 'मेरी मेक्समीन' प्रेस में जायगा न? तैयार हो गया हो तो पिछली किताबों के साथ 'गबन' की एक प्रति भी भेजिएगा।

माघ के अन्त तक मैं छूटूँगा। लिखित नहीं तो सेवा में उपस्थित होकर मौखिक ही आपसे अपनी रचना के सम्बन्ध में आदेश और समालोचना प्राप्त

करूँगा।

लेकिन इतना ज़रूर लिखिए कि आप की राय में 'कुलबुलाहट' कम होनी चाहिए न? शायद मेरी कृति में यह पर्याप्ति से अधिक मात्रा में होती है।

मैंने अभी ठीक पारखी और आलोचक दृष्टि से साहित्य को जाँचना और जमाना (Assortment) नहीं सीखा। छंटाई और 'स्कूल-विभाजन' का काम मैं अपने लिए मन चाहे जैसा कर भी सकूँ दूसरे के लिए और अपने के लिए नहीं कर सकता लेकिन 'प्रसाद-स्कूल' शब्द काशी में सुन पड़ा था। स्वभावतः दूसरा स्कूल आपका ही होगा। खैर जो हो। मैं तो चाहता हूँ यह काम सब अपने लिए कर लिया करें।

मैं बिलकुल प्रसन्न और स्वस्थ हूँ।

आपका
जैनेन्द्र कुमार

७

सरस्वती प्रेस
१२ जनवरी १९३१

प्रिय जैनेन्द्र जी

कल पत्र पाकर बड़ा आनन्द हुआ। आपको भ्रम हुआ। आर्डिनेन्स तो फिर जारी हुआ लेकिन अभी मुझसे जमानत नहीं माँगी गयी इसलिए 'हंस' का विशेषांक छप रहा है। आप यदि अपनी कहानी भेज दें तो तुरन्त छपवाऊँ और आपका लाखों धन्य मानूँ। फिर तो पत्रिका जग उठे। सुदर्शन जी ने कहानी भेज दी है राजेश्वरी ने भी भेजी। कौशिक जी आजकल इतना लिख रहे हैं, कि मैंने उन्हें कष्ट देना व्यर्थ समझा। यह बहाना करके टाल जाते। आपकी कहानी आ जाय तो क्या पूछना।

हमारे प्रोप्राइटर बाबू विष्णुनारायण भार्गव का मद्रास में स्वर्गवास हो गया। घुड़दौड़ में गए, लाखों की बाजी हार गए। अब देखना है कि यहाँ कैसे काम होता है 'माधुरी' बंद होती है या चलती है। मुझे तो इसके चलने की आशा नहीं है।

'गबन' के तीन फार्म और बाकी हैं। बेचैन हूँ कि कब छपें और कब आपके पास भेजूँ। 'सत कुँवार' और 'शराबी' आज भेज रहा हूँ। मुझे तो 'सत कुँवार' कुछ (नहीं जँचा)। 'शराबी' अपने ढंग की बुरी चीज नहीं। मगर इन बातों

की आलोचना कर सकें तो 'हंस' में छाप दूँगा।

हाँ 'ग़बन' के बाद 'मनस्वीन' छपेगी। तब तक मेरा दूसरा उपन्यास भी लिखा जा चुकेगा।

हाँ पत्नी जी तो आ गईं मगर शायद फिर जायें। अभी उन्हें सन्तोष नहीं। सारा स्वास्थ्य एकबार ही ले लेंगी। किस्तों में नहीं चाहतीं।

मैंने 'परख' की आलोचना 'हंस' में कर दी है। 'माधुरी' का पुरस्कार तो भेजा जा चुका है। बहुत पहले ही। अब कुछ बाकी नहीं।

और तो नई बात नहीं। आप बाहर आ जाएँ तो फिर बातें होंगी। उस थोड़ी देर की मुलाकात से तो प्यास और भी बढ़ गई थी।

आपका

धनपतराय

हाँ उपन्यास हो या कहानी उसमें गुदगुदाहट न हो तो बेचटनी-सा भोजन है। जरूर चाहिए। ज़राफ़त तो उपन्यास की जान है।

८

२० जनवरी १९३१

बाबू जी

पन्द्रह ता० को मैंने आपको कहानी भेजी थी। रजिस्ट्री से भेजता कैसे इससे बैरंग भेजी ताकि पैसे वसूल करने की वजह से पो० आफिस को उसे ठीक जगह पहुँचाने की चिन्ता रहे। वह आपको मिल गई न? वह लिखी तो चौदह को गयी थी लेकिन खत्म नहीं हुई थी। अब आपको भेजी दोबारा देख भी न पाया। एक जगह एक शब्द सूझ नहीं रहा था इससे Gap छोड़ दिया था। मुझे पीछे उसका खयाल आया। खैर। जहाँ-तहाँ की गलतियों को आपने सँभाल लिया होगा। 'हंस' अब तक आयेगा लिखिए। आपकी किताबें अब तक नहीं मिलीं। शायद भेजने में भूल हो गयी अब तक भेज नहीं पाये।

आपका

जैनेन्द्र कुमार

९

स्पेशल जेल गुजरात
२२ फरवरी १९३१

बाबू जी

आपका पत्र मिला। उससे एक ही रोज पहले एक कार्ड मैंने लिखा था। 'हंस' की और किताबों की प्रतीक्षा में हूँ। मैं स्वयं आपसे मिलने को भूखा हूँ। आप ही घर पर दिल्ली आ सकेंगे इससे तो बढ़कर भाग्य ही क्या होगा। मैं अगले महीने की समाप्ति तक छूटूँगा। ठीक तिथि लिखना तो संभव नहीं। 'कल्याण' का विशेषांक कब निकलता है? मैं अवश्य उसके लिए लिखूँगा लेकिन जान पड़ता है अभी जल्दी नहीं है। आपकी सेवा और आज्ञा पालन के लिए मैं तैयार हूँ ही। जब और जैसी आज्ञा होगी 'हंस' के लिए लिखने का यत्न करूँगा। आपका फरवरी का अंक कब तक निकलेगा क्योंकि उस कहानी की हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर जो मेरा संग्रह निकाल रहे हैं उसके लिए आवश्यकता है। क्या यह हो सकेगा कि उसकी प्रतिलिपि बम्बई पहुँच जाय?

और आप क्या नवलकिशोर प्रेस से सम्बन्ध तोड़ने का इरादा रखते हैं जो गाँव में बैठ जाने के बारे में लिखते हैं? 'माधुरी' का क्या हाल है। विशेष सब कुशल है।

विनीत
जैनेन्द्र कुमार

२०

नवल किशोर बुक डिपो, लखनऊ
१८ फरवरी १९३१

प्रिय जैनेंद्र

आपकी आलोचनाएँ मुझे पहले ही मिल गई थीं पर जवाब की ऐसी कोई बात न थी। इस से विलम्ब से लिख रहा हूँ। सभी आलोचनाएँ 'हंस' में आ रही हैं। आपने 'गढ़ कुंडार' को पसंद किया है। मैं तो पढ़ न सका था। कारण यह है कि उसमें आगे चलकर कुछ रस आता है और मैं आदि के दस बीस पन्ने पढ़कर ही अधीर हो गया आगे पढ़ने का धैर्य न रहा।

'हंस' अभी तक नहीं आया। शायद आज मिल जाय। इधर काशी में बुधवार से बहुत बड़ा दंगा हो रहा है सभी कारोबार बंद हैं प्रेस भी बंद है, यहाँ तक कि

× × भी बंद है। शायद दो एक रोज में सामान्य स्थिति आ जाय।

इस बीच में निराला जी की 'अप्सरा' भी प्रकाशित हो गई। यह उनका पहला उपन्यास है, मिलने पर भेजूँगा। आप कब तक बाहर आवेंगे? एक बार हम लोगों का मिलना जरूरी है। मैं दिल्ली आ जाऊँगा। पूज्य बहन जी से भी जल्दी में कुछ बातें न हुईं।

'ग़बन' की एक प्रति भी शीघ्र ही भेजूँगा। इस पर जो कुछ लिखना हो वह 'माधुरी' के लिए लिखिएगा। 'माधुरी' से अब मेरा सम्बन्ध नहीं रहा। मैं बुकडिपो में आ गया। आ तो पहले ही गया था अब पूरा रूप से आ गया। पचीस तक शायद यहाँ और रहूँगा फिर काशी चला जाऊँगा और कहीं देहात में बैठकर कुछ लिखता पढ़ता रहूँगा। 'हंस' तो आपके सिर डाल दूँगा। क्या बताऊँ अभी एक हजार भी ग्राहक नहीं हैं। आप लिपट जाएँगे तो छ महीने में दो हजार छपेगा। उसके लिए प्रति मास एक गल्प लिखते जाइए और जो कुछ मिजाज में आवे लिखिए।

'कल्याण' का कृष्णांक निकल रहा है। कुछ उसमें भी लिखिए। वह पैसे अच्छे देता है हिन्दी में सबसे ज्यादा छपता है।

इधर उर्दू की उन्नति देखकर आश्चर्य हो रहा है। लाहौर में एक पत्रिका ने आठ सौ पचास पृष्ठों का विशेषांक निकाला है।

शेष कुशल है।

शुभेच्छु

धनपतराय

२२

अजमेर कैम्प कांग्रेस, करांची

२१ मार्च १९३१

प्रिय

आपका पत्र दिल्ली मिला था। 'ग़बन' भी मिल गया था पढ़ भी न पाता कि ऋषभचरण उठा ले गया। अब दिल्ली जाकर पढ़ूँगा और अपनी सम्मति लिखूँगा। सम्मति अच्छी के बजाय और कुछ तो होने से रही। कुछ ठ न पढ़ लेता इतना तो तब भी कह सकता था। यहाँ कल अथवा परसों या तरसों को बम्बई जाऊँगा। इस पत्र का उत्तर जो आप लिखें बम्बई प्रेमी जी के पते पर दें। 'हंस' का फरवरी का अंक भी वहीं भिजवा दें। आपने 'कंकाल और शराबी' का जिक्र तो किया भेजा नहीं। मिल जाय तो उन्हें बम्बई भिजवा

अवश्य है रास्ता काटने को कुछ सामान मिलेगा क्योंकि साथ में मेरे कोई किताब नहीं है।

विशेष कुशल है।

यहाँ चहल-पहल है। नौजवानों में जोश देखा है उठ रहे हैं और गाँधी जी को बैठा देना चाहते हैं। यह जानते नहीं कि गाँधी मरकर ही बैठेगा। पर सिर्फ अहम्मन्य नौजवानों की बात थोड़ा-बहुत तमाशा अवश्य दिखायगी। देखूँ क्या होता है। विशेष कुशल है।

आपका
जैनेन्द्र

२२

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय गिरगाँव बम्बई
९ अप्रैल १९३१

बाबू जी

मैं करांची से परसों यहाँ पहुँचा। पवन जब चलनेवाला ही था कि दिल्ली न मिला था। कुछ सपने पढ़ पाता हूँ कि अनुपम उसे उठा ले गया। सम्मति अब दिल्ली से ही लिखूँगा। फरवरी का 'हंस' का अंक मुझे यहाँ मिला। 'परख' की आपकी आलोचना तो चलती-सी रही जैसे बहुत भीड़ में जल्द लिखी गयी हो। यहाँ से दो-एक रोज में चलूँगा। झाँसी भी ठहरने का विचार है। वहाँ सोचता हूँ सीधा वृन्दावनलाल जी वर्मा के यहाँ ही पहुँचूँ और ठहरूँ। जानता नहीं तो क्या। आपकी 'हंस' की कहानी खूब है। आप दिल्ली के पते पर लिखिएगा कि आप दिल्ली कब पधारिएगा। मैं नौ-दस तक दिल्ली अवश्य पहुँच जाऊँगा।

विशेष।

आपका
जैनेन्द्रकुमार

२३

साहित्य सुमन माला कार्यालय
नवलकिशोर प्रेस बुक डिपो लखनऊ।
११ अप्रैल १९३१

प्रिय जैनेंद्र जी

आपका पत्र मिला। मैं लाहौर गया पर आप दिल्ली न थे इसलिए मैं सोचा

लौट आया। आशा है अब आप दिल्ली आ गए होंगे। आपकी कहानी का पुरस्कार भेजने के लिए मैंने ताकीद कर दी है। आशा है जल्द पहुँचेगा। 'गबन' आप पढ़ लें और मैं कुछ आपकी राय जान लूँ तो मुझे सन्तोष हो। 'परख' की आलोचना जल्दी में तो नहीं की लेकिन अपनी दानिस्त में मुझे जो कुछ कहना चाहिए था वह कह चुका। मैं समालोचक बहुत खराब हूँ। पुस्तक पर पाठक की दृष्टि से निगाह डालता हूँ। और जो भाव जम जाता है वही लिखता हूँ। × × × × भावों तो जी पर एक साहब लेकर मुरादाबाद चले गए वह लौट कर आवें तो भेजूँ।

आशा है आप (सानन्द) हैं।

भवदीय

धनपतराय

२४

पहाड़ी धीरज दिल्ली

१६ अप्रैल १९३१

बाबू जी

आपका पत्र मिला। मैं यहाँ तेरह तारीख की सुबह पहुँचा। उसी दिन श्री स्वामी आनन्द भिक्षु जी से मिलना हुआ था। उनसे मालूम हुआ था कि आप देव शर्मा जी को लाहौर जाते हुए सहारनपुर के स्टेशन पर मिल गये थे। मैं इससे यह समझा था कि आप अभी लाहौर ही होंगे और लौटते हुए शायद दिल्ली उतरेंगे। और मैं हर रोज आपके यहाँ आने की आशा कर रहा था। उसके बदले में मिला आपका खत जिससे मालूम हुआ कि आप लखनऊ पहुँच गए और अब जल्दी इधर आनेवाले हैं नहीं। यह तो सब कुछ बात न हुई। मैं यहाँ आपकी सलाह और मदद से कुछ अपनी जिन्दगी की समस्याओं को हल करने की सोच रहा था। खैर।

पुरस्कार के बीस रु० मुझे परसों मिल गये। गबन अब पढ़ रहा हूँ। कल तक पढ़ चुकूँगा। पसंद न आये यह तो हो ही कैसे सकता है। ज्यादा ग़ौर करने पर लिखूँगा।

स्वामी जी आज मालूम हुआ लखनऊ ही गये हैं। वह शायद आपको मिलें। उनसे आप जानेंगे कि यहाँ न आकर आपने कैसा अत्याचार किया। मैं आखिर दिल्ली आता था ही। स्टेशन पर ही नहीं तो एक दिन बाद यहीं मैं वहाँ हाज़िर हो ही जाता। मेरा आपको देखने का बड़ा जी है।

'परख' की आपकी आलोचना से मैं असहमत हूँ सो बात नहीं। उस विलक्षण विवाह के बारे में तो मुझे अब खयाल होता है कि शायद कुछ Extra ordinary के मोह में पड़कर कि पुस्तक जिससे असाधारण जैसे मैंने वह बात उस तरह लिखी। अब सचमुच लगता है कि वह अनचाप मोह था और मेरी कमी थी। और पुस्तक का परिचय देते-देते जो आप पुस्तककार पर कुछ शब्द लिख गये यह मुझे बड़ा प्रिय लगा। जैसे आप उस लेखक को पाठक के निकट पहुँचा देना चाहते हैं और उनमें आपस में मेलजोल हो जाय। लेकिन पहले कार्ड में जो मैंने लिखा उसका आशय यह था कि पुस्तक पर आपका वक्तव्य इतना संक्षिप्त है कि पुस्तककार जिसे आप से उसके गुण-दोषों की समीक्षा और आलोचना सुनने की उत्कण्ठा थी संतुष्ट नहीं हो सकता। और वह भी वह जो आपसे सारी बात सुनने की जिद करने का अपना अधिकार समझने लग गया है। आप चाहें तो 'माधुरी' या और किसी में या उससे भी अच्छा मुझे, समीक्षात्मक अपनी विस्तृत सम्मति भेज सकते हैं और इस 'वासित-चित्र' के बारे में भी अपनी राय लिखें। मेरे मन में हो रहा है न जाने कैसी है कैसी नहीं। कुमार जी तो बीच बीच में कुछ गड़बड़-सी लगने लगती है। आप इस पर समीक्षक नहीं उस्ताद की हैसियत से मुझे कुछ लिखें। आपको याद हो कि उस मुलाकात के वक्त मैंने जब आपसे इस कहानी के थीम का जिक्र किया था तो आपने कुछ संदेह-सा प्रकट किया था। सो ही समझकर आप मुझे लिखें।

मैं यहाँ बिलकुल स्वस्थ और प्रसन्न हूँ। और माता जी अच्छी तरह हैं। और सब भी कुशल पूर्वक हैं।

मेरे योग्य सेवा लिखें।

आपका विनीत
जैनेंद्र कुमार

२५

पहाड़ी धीरज दिल्ली
२६ जून १९३१

बाबू जी

आपके पत्र का जवाब मैंने परसों दिया है या कल। मिला होगा। 'वातायन' वाली कहानी कल ही रवाना कर चुका हूँ। आज 'भवन' की आलोचना मिलता था कि तदनुसार वाजपेयी का बहुत-बहुत अनुरोध का पत्र आ पहुँचा।

'भारत' के लिए कहानी चाहते हैं। क्योंकि ऐसी आलोचना लिख चुके हैं जो मेरे बहुत अनुकूल न थी इसलिए भी उनके अनुरोध को मानना जरूरी हो गया है कहीं वह और न समझें। इसलिए अब वहीं लिख रहा हूँ। यह इसलिए आपको लिखता हूँ कि आप 'भारत' में कहानी देखकर मुझे उलाहना न दें। कल आपकी आलोचना और फिर जरूरी हो कहानी लिखूँगा। 'भारत' में आज हिन्दुस्तानी एकेडमी की पुरस्कार सूचना देख पड़ी। 'परख' और नये छपते हुए संग्रह 'वातायन' की यथावश्यक प्रतियाँ यथास्थान भेजने के लिए बम्बई लिख रहा हूँ। मुझे विश्वास है, यह मेरा दुस्साहस नहीं है। 'वातायन' छपते ही आपके पास आयगा। जल्दी ही छप जायगा।

विशेष कुशल है।

विनीत
जैनेंद्र

२६

सेंट्रल जेल, लाहौर
१६ जुलाई १९३२

बाबू जी

आपका पत्र मुल्तान में मिला था। ख्याल था कि जवाब दूँ तो कहानी के साथ दूँ। कहानी जो शुरू की थी शुरू करते न करते छूट गई। और जब आपका पत्र आया तब उन कुछ लिखे पन्नों का भी पता न चला। दूसरी कहानी या वही कहानी दूसरी बार लिखने का फिर न मन हुआ न मौका हुआ। यह भी ख्याल हुआ कि नया आर्डिनेंस बन गया है, और अब आपका विशेषांक क्या निकलेगा। क्या विशेषांक निकल रहा है? और क्या उसमें कुछ देर है? सूचना मिली और अंक निकलता हुआ और उसके निकलने और आपके पत्र में काफी से कम वक्त भी हुआ तो भी यहाँ से कहानी अवश्य भेजूँगा। यहाँ मुल्तान जैसा झंझट नहीं है।

१३ ता० को मैं यहाँ आया। राजनैतिक कैदियों को रिहाई की तिथि निकट आते ही यहाँ भेज देते हैं, मुल्तान में रिहा नहीं करते। यों मेरी तिथि अट्ठारह है पर जुर्माने का और डेढ़ महीना यहीं काटना होगा। सामान कुर्क करके जुर्माना वसूल कर लिया जाए तो बात दूसरी पर इसकी आशा कम है।

आपका 'कर्मभूमि' निकलना हो गया? जल्दी देखने की उत्सुकता है। आपको

जाननेवाले हर जगह मिल जाते हैं। पर हस्तियों से दूर-दूर से ऐसा जानते हैं कि यथार्थ ही आपको जाननेवाले किसी को सामने पाकर उन्हें हृदय विस्मय होता है। तब आपके प्रति उनके आन्तर भाव का कुछ प्रतिबिम्बित अंश अनायास उस व्यवहार को भी पाना होता है। इस पर उसे मद भी होता है, अच्छा भी। मुफ्त पाकर क्या बुरा? मुफ्त है इसलिए क्यों अच्छा नहीं? पर, मुफ्त है इसलिए वह कठिन है, भारी लगता है। ऐसे ही एक महाशय अपना लिफाफा और कागज पेश करके हुक्म् मुझसे आपको यह पत्र लिखवा रहे हैं। नवयुवक हैं कम्प्रेस में हैं और आपको जानने के मेरे सौभाग्य के बधाई-स्वरूप मेरे प्रति अत्यन्त सेवोद्यत हो गये हैं। मुझे लिखते हुए अपने पत्र में आप उन्हें अवश्य याद करें। जेल में लिफाफा कीमती चीज है और मैं आपको लिख पा रहा हूँ इसका तमाम श्रम उनको है।

अब आप गाँव में रहते हैं या शहर में मकान ले लिया है? दोनों बच्चे कहाँ हैं? शहर म ही रहना होता होगा उन्हें तो। मगर 'हंस' बन्द है तो क्या आप नया कुछ नहीं लिख रहे?

'मेरी मैगजीन' क्या छपना आरम्भ हो गया? और मैंने 'स्पर्धा' कहानी ठीक करके राय साहब को भिजवायी थी क्योंकि उन्होंने मुझसे एक बार खानु रोध कहा था। क्या वह उन्हें मिल गयी? पूछकर अवश्य सूचित कीजिएगा। क्योंकि इस काम के लिए एक आदमी की तत्परता के विश्वास पर निर्भर करना हुआ था।

और कुशल समाचार और साहित्य समाचार लिखिएगा। श्री कृपाराम मिश्र की जिस किताब का जिक्र किया था वह भेज सकें तो अवश्य भेजें। विशेष सब ठीक है।

आपका
जैनेन्द्र

२७

सरस्वती प्रेस, काशी
१६ अगस्त १९३२

प्रिय जैनेन्द्र

तुम्हारा पत्र कई दिन हुए मिला। मैं आशा कर रहा था तेहली पहाड़ी जेल से आ रहा होगा पर आया लाहौर से। और लाहौर मुल्तान से कुछ कम है। उससे कई दिन पहले मुल्तान मैंने एक पत्र भेजा था। शायद वह लौट कर आ

गया हो। अच्छा मेरी गाथा सुनो। 'हंस' पर जमानत लगी। मैंने समझा था आर्डिनेंस के साथ जमानत भी समाप्त हो जायगी। पर नया आर्डिनेंस आ गया और उसी के साथ जमानत भी बहाल कर दी गई। जून और जुलाई का अंक हमने छापना शुरू कर दिया है। पर मैनेजर साहिब जब नया डिक्लेरेशन देने गये तो मजिस्ट्रेट ने पत्र जारी करने की आज्ञा न दी जमानत माँगी। अब मैंने गवर्नमेंट को एक स्टेटमेंट लिखकर भेजा है। अगर जमानत उठ गई तो पत्रिका तुरन्त ही निकल जायगी। छप कट, सिलकर तैयार रखी है। अगर आज्ञा न दी तो समस्या टेढ़ी हो जायगी। मेरे पास न रुपये हैं न प्रामेसरी नोट न सिक्योरिटी। किसी से कर्ज लेना नहीं चाहता। यह शुरू साल है, चार पाँच सौ वी० पी० वाले कुछ रुपये हाथ आते। लेकिन यह नहीं होना है।

इस बीच मैंने 'जागरण' को ले लिया है। 'जागरण' के बारह अंक निकले लेकिन ग्राहक संख्या दो सौ से आगे न बढ़ी। विज्ञापन तो व्यास जी ने बहुत किया लेकिन किसी वजह से पत्र न चला। उन्हें उस पर लगभग पन्द्रह सौ का घाटा रहा। वह अब बंद करने जा रहे थे। मुझसे बोले यदि आप इसे निकालना चाहें तो निकालें। मैंने उसे ले लिया। साप्ताहिक रूप में निकालने का निश्चय कर लिया है। पहला अंक जन्माष्टमी से निकलेगा। तुम्हारा इरादा भी एक साप्ताहिक निकालने का था। यह तुम्हारे लिए ही सामान है। मैं जब तक इसे चलाता हूँ फिर यह तुम्हारी ही चीज है। मन का प्रमाद है। 'हंस' में कई हजार का घाटा उठा चुका हूँ। लेकिन साप्ताहिक के प्रलोभन को न रोक सका। कोशिश कर रहा हूँ कि सर्वसाधारण के अनुकूल पत्र हो। इसमें भी हजारों का घाटा ही होगा। पर करूँ क्या। यहाँ तो जीवन ही एक लम्बा घाटा है। यह कुछ चल जायगा तो प्रेस के लिए काम की कमी की शिकायत न रहेगी। अभी तो मुझे ही पिसना पड़ेगा लेकिन आमदनी होने पर एक सम्पादक रख लूँगा। अपना काम केवल एडिटोरियल लिखना होगा।

तुम्हारी कहानी 'स्पर्धा' छप रही है। राय साहिब अच्छा रहे हैं। 'मैक्वेलीन' भी छपनेवाले हैं।

कर्मभूमि' के तीस फ़ार्म छप चुके हैं। अभी करीब छ फ़ार्म बाकी हैं। 'हंस' में हाथ लगा दिया। प्रेस को अवकाश न मिला। इसलिए अब तक पुस्तक तैयार न हुई। अब उसे जल्द समाप्त करता हूँ। सबसे पहले तुम्हारे पास भेजी जायगी और तुम्हारे ममताशून्य फैसले पर मेरी कामयाबी या नाकामी का निर्णय है। दो कहानियों के छोटे-छोटे संग्रह और छापे हैं। पं० कृपानाथ मिश्र की 'प्याला' भेज रहा हूँ। संभव हो तो इसकी आलोचना करना। अब मैं शहर में रह रहा

हूँ। लड़के पढ़ने जाते हैं। मैं भी प्रेस में दस-पाँच घड़ी के लिए चला जाता हूँ।

जिन भाई का आपने अपने पत्र में ज़िक्र किया है उन्हें मेरा बड़े प्रेम से बंदे कहिएगा। मेरे हृदय में उनकी सच्ची शुभकामना है। उनका नाम न लिखा। मैं अपना नया उपन्यास उनके पास भेजूँगा।

अभी भी आनन्दभिक्षु सरस्वती का पत्र आया। उन्हें मध्यप्रान्त और ग्वालियर की साहित्य सभाओं की ओर से 'भावना' पर पुरस्कार मिले हैं। 'भावना' है भी तो अच्छी चीज़।

इधर प० श्रीराम शर्मा का 'शिकार', स्वामी सत्यदेव जी की कहानियों का संग्रह, डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'पोथी' आदि पुस्तकें निकली हैं। डा० वृन्दावनलाल जी का 'कुण्डलीचक्र' मैंने बड़े शौक से पढ़ा। लेकिन पढ़कर मन फीका हो गया। कहीं गर्मी नहीं मिली न फुरती न कटक। शायद मुझमें भावशून्यता का दोष है।

और तो सब कुशल है। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तुम सुखी रहो।

तुम्हारा सच्चा भाई—

धनपतराय

२८

सरस्वती प्रेस काशी।

७ दिसम्बर १९३२

प्रिय जैनेन्द्र बन्धे।

कार्ड मिला था। सरस्वती प्रेस और 'जागरण' से २६-१०-३२ को 'उसका पंच' नाम की कहानी के अंक में दो हजार की जमानत माँगी। बहुत परेशान हुआ। भागा हुआ लखनऊ पहुँचा वहाँ Chief Secretary से मिलकर कहानी का आशय समझाया और भी अपनी Loyalty के प्रमाण दिये। अब आशा है जमानत मन्सूख हो जायगी। जरा-जरा-सी बात में प्रेस पर छुरी चल जाती है।

'कर्मभूमि' तुम्हें बहुत बुरी नहीं लगी इससे खुशी हुई। इसकी कड़ी आलोचना कर दो।

तुम्हारी परेशानियों की कहानी पढ़कर बड़ी चिन्ता में हूँ। इस मास में कुछ भेजूँगा जरूर। 'जागरण' बड़ा पेटू है और हम पैसे खाने में शेर।

बच्चों को आशीर्वाद।

सप्रेम

धनपतराय

१९

सरस्वती प्रेस काशी।
१० जनवरी १९३३

प्रिय जैनेंद्र

प्रेम। पत्र मिला। छोटे दिलीप की बीमारी की बुरी खबर सुनी है। सर्दी यहाँ भी जोरों की है। दिल्ली का क्या पूछना। ईश्वर उसे जल्द अच्छा कर दे

पं० बनारसीदास जी यहाँ रविवार को आ रहे हैं। माखनलाल जी कल यहाँ आए थे। तुम्हारी कहानी मैंने कहीं नहीं भेजी। यहाँ प्रसाद जी से उस पर मेरी बातचीत हुई। एक दम तो उसे अवश्य ही ब्लासफेमी कहेगा। वह लोग उसी दल में हैं। मैंने समझा यदि कोई उस पर कुछ लिखेगा तो उसका जवाब दिया जायगा। अपनी तरफ से नाहक क्यों तूफान खड़ा किया जाय।

हाँ मैं भी चाहता हूँ परख पर कुछ लिखवाऊँ। मुझे आलोचना नहीं करनी आती। यहाँ आलोचना के लिए (जनार्दन प्रसाद झा द्विज) सबसे अच्छे हैं। वह परीक्षा में लगे हुए हैं और तो मुझे कोई आलोचक नहीं दिखता।

'कर्मभूमि की आलोचना जरूर निकलनी चाहिए।

सुभद्राकुमारी जी को बधाई तो दे दी थी। 'हंस' में आलोचना कर रहा हूँ।

रुपये नहीं आ सके मगर दो एक दिन में अवश्य ही आएँगे। हजारों रुपये बाकी पड़े हुए हैं, लेकिन जब तक अपने हाथ में न आ जायें क्या कहा जाय? शिवपूजन प्रयाग हैं। ज्यों ही आएँगे कहानी ले लूँगा।

और सब कुशल है।

तुम्हारा—
धनपतराय

२०

सरस्वती प्रेस,
१७ जनवरी १९३३

प्रिय जैनेंद्र

आशीर्वाद। तुम्हारे दोनों पत्र मिले। इसके दो दिन पहले मैंने एक कहानी 'भारत' के लिए लिखी थी। बड़ी मनहूस कहानी निकली। कुछ इसी तरह का

उसका नियम था।

बच्चा चला गया। खत पढ़ते ही पहले तो कलेजा सन्न हो गया लेकिन फिर मन शांत हो गया। यही जीवन के अनूठे अनुभव हैं। इन्हें झेलने आओ तो सब कुछ सरल हो जाता है। फिर रोयें भी तो किस के सामने? कौन देखनेवाला है? किसी को अपना समझें क्यों? अपना केवल इतने ही के लिए समझो कि उसके प्रति हमारे कर्तव्य हैं। आस-पास तो मैं जानता नहीं। ऐसे आघातों से कलेजे पर घाव लगता ही है। लेकिन लगना चाहिए नहीं। तुम रोये नहीं इससे मेरा चित्त बहुत शांत हुआ। तुम यहाँ होते तो तुम्हारी पीठ ठोंकता। यही तो परीक्षा के अवसर हैं।

भगवती और माता जी को बहुत समझाना। देवियों का हृदय कोमल होता है। बच्चा उनके अंग का एक भाग-सा था। हाल ही उसी के सहारों में लग जाती थी। अब उन्हें कितना सूना-सूना लगता होगा। माता जी ने दुनिया के सुख-दुख देखे हैं। उनको मैं क्या समझाऊँ। लेकिन भगवती से कहूँगा धैर्य से काम लो। बच्चे को तुमने पाला-पोसा फिर भी वह तुमसे रूठ कर चला गया। उसकी स्मृति क्या इससे कम प्यारी है? मैं तो समझता हूँ वह और भी प्यारा हो गया है, समझो कि अब तुम्हारी गोद में खेल रहा है। बल्कि तुम्हारे हृदय के अंदर है। कहीं गया नहीं भीतर जो बैठा है अब बाहर की गर्मी सर्दी रोग व्याधि का उस पर कुछ असर न होगा। फिर क्यों रोते हो?

चतुर्वेदी जी आये थे। दो दिन खूब बातें हुई। प्रसाद जी से भी भेंट हुई। मैं समझता हूँ उनमें बहुत कुछ सफाई हो गयी है। कहानी के विषय में मेरी उनसे बातचीत हुई मैंने उन्हें समझाने की चेष्टा की। वह अपनी तरफ से अड़े रहे। लेकिन उन इधर उधर भेजकर एक झगड़ा खड़ा करना उन्हें भी पसन्द नहीं है।....

चैक से शीघ्र रुपये भेजता हूँ। रुपये मँगवाने में डाक का समय निकल गया।

अभी शिवपूजन सहाय जी घर से नहीं लौटे। आने ही कहानी ले लूँगा। सुदर्शन जी एक फ़िल्म कम्पनी में ढाई सौ रुपये पर नौकर हो गये।

और तो सब कुशल है।

तुम्हारा—

धनपतराय

२१

सरस्वती प्रेस
४ मार्च १९३१

प्रिय जैनेंद्र

मैंने कई दिनों से तुम्हें पत्र नहीं लिखा। कोई बात लिखने की ऐसी थी भी नहीं। तुम्हारा लेख शिवपूजन सहाय जी से मिल गया और छप भी गया मगर है बहुत नन्हा-सा। मेरा लेख भी इतना ही बड़ा होगा।

तुम्हारा उपन्यास चल रहा है, या आराम करने लगा? मैं समझता हूँ अब तुम हर तरह से स्वस्थ हो।

तीन चार दिन इलाहाबाद रहा और (वहाँ) तुम्हारी खूब चर्चा रही। इंडियन प्रेसवाले तुम्हें पत्र लिखेंगे।

मुन्नू की अम्माँ की किताब को भूलना नहीं। तुम्हारा (लिख देना) ही उन्हें आसमान पर चढ़ा देगा।

और तो नई बात नहीं।

तुम्हारा—
धनपतराय

तुम अपना तौलिया यहाँ छोड़ गये जिससे बंदा देह पोंछता है।

२२

सरस्वती प्रेस बनारस।
६ मई १९३१

प्रिय जैनेंद्र

पत्र मिला। मैं सागर गया था। कल शाम को लौटा हूँ। बेटी के बालक हुआ पर चौथे दिन उसे ज्वर आ गया और प्रसूत ज्वर के लक्षण मालूम हुए। वहीं तार आया। हम दोनों प्राणी भागे हुए गये। मैं तो लौट आया तुम्हारी भाभी अभी वहीं हैं। 'हंस' निकल गया। कल रवाना होगा। अब की बड़ी देर हो गयी। तस्वीरों का इंतजार था। तस्वीर तो न आयी देर हो गई। यह सुन कर खुशी हुई कि 'रंगभूमि' वालों से तुम्हारा मामला हो गया। बड़ी अच्छी बात हुई। मगर भाई 'हंस' का महीने में एक मोती न चुगे तो बेचारा जियेगा

कैसे ? यह अंक भी बिना तुम्हारी कहानी के गया।

और तो सब कुशल है। 'जागरण' अभी तक खड़ा नहीं हुआ घिसट रहा है।

भगवती को मेरा आशीर्वाद कहना और महात्मा जी को प्रणाम। दिलीप को प्यार।

तुम्हारा —
धनपतराय

२३

प्रिय जैनेन्द्र

सरस्वती प्रेस,
१७ मई १९३३

कई लेख आलोचना और पत्र मिले। धन्यवाद। तुम्हारी कहानी अब के ज़रूर रहे।

पुस्तकों का हाल न पूछो। 'प्रेम की वेदी' और 'फाँसी' का महीनों से विज्ञापन हो रहा है, पर मुश्किल से दस आर्डर आये होंगे। यह हाल है पुस्तकों का। एक एजेंट रखा है, पर वह लिखता है पाठशाला और बालकों की पुस्तकों की माँग अधिक है। 'फाँसी' वहाँ किसी बुकसेलर की दुकान पर रख दो कुछ न कुछ बिकती रहेगी। आजकल पुस्तकों का बाजार ठंडा है। सवान शास्त्र कुछ बिकता है, या वह जिससे जीवन का कोई प्रश्न हल होता है।

दैनिक 'जागरण' के विषय में मैं इससे अधिक और कुछ नहीं जानता कि वह लोग उद्योग कर रहे हैं। ज्यादा परवाह भी नहीं है।

अम्मा को प्रसूत ज्वर है। मुन्नू की अम्मा अभी नहीं है। एक हफ्ते से मामूम हल्का है हालत अच्छी है, दूसरा पत्र आकर लिखा में काम देता है। चि० दिलीप तो अब स्वस्थ है। मैं समझता था महात्मा जी आ गये होंगे। भगवती को यहीं भेजाने ? एक-दो महीना हमें भोजन दे दो। मगर तुम सोचोगे यहाँ क्या होगा ? संसार स्वार्थी है ही। कहानियों की सेम तो आजकल बहुत कम है। मेरी बीस कहानियाँ पड़ी हुई हैं, छापने की हिम्मत नहीं पड़ती। अभी तो 'मैंचेसीम' मिल मन दो। कहानी अवश्य। मई आज तैयार हो गया। मई का मई में। कितनी तारीफ की बात है।

तुम्हारा —

२४

बनारस सिटी,
१७ जुलाई १९३३

प्रिय जैनेंद्र

[illegible] । नई बात ! मानता हूँ । भूल गया जुलाई क्या और अगस्त का मैटर भी जानेवाला है । जुलाई बीस तक निकल जायगा । लेकिन हुजूर को याद ही नहीं । क्यों याद आये । बड़े आदमी होने में यही तो ऐब है । रुपये तो अभी कहीं मिले नहीं । लेकिन यश तो मिल ही गया है और यश के धनी धन के धनी से क्या कुछ कम मगरूर और मुतकब्बिर होते हैं !

अच्छा दिल्लगी छोड़ो । यह बात क्या है ? तुम क्यों मुझसे तने बैठे हो ? न कहानी भेजते हो न खत भेजते हो । मैं तो इधर बहुत परेशान रहा । याद नहीं आता अपनी कथा कह चुका हूँ । बेटी के पुत्र हुआ और उसे प्रसूत ज्वर ने पकड़ लिया । मरते-मरते बची । अभी तक अधमरी-सी है । बच्चा भी किसी तरह बच गया । आज बीस दिन हुए यहाँ आ गयी है । उसकी माँ भी दो महीने उसके साथ रही । मैं अकेला रह गया था । बीमार पड़ा, दाँतों ने कष्ट दिया । महीनों उसमें लग गये । दस्त आये और अभी तक कुछ न कुछ शिकायत बाकी है । दाँतों के दर्द से भी गला नहीं छूटा । बुढ़ापा स्वयं रोग है और अब मुझे उसने स्वीकार करा दिया कि अब मैं उसके पंजे में आ गया हूँ ।

काम की कुछ न पूछो । बेहूदा काम कर रहा हूँ । कहानियाँ केवल दो लिखी हैं, उर्दू और हिन्दी में । हाँ कुछ अनुवाद का काम किया है ।

तुमने क्या कर डाला अब यह बताओ ? 'रंगभूमि' से क्या रहा ? लिखा जाता है या नहीं ? कोई नयी चीज कब आ रही है ? बच्चा कैसा है ? भगवती देवी कैसी हैं ? माता जी कैसी हैं ? महात्मा जी कैसे हैं ? सारी दुनिया लिखने को पड़ी है, तुम खामोश हो ।

'सरस्वती' में वह नोट तुमने देखा ? आज पं. बनारसीदास जी के पत्र से मालूम हुआ कि यह शास्त्री जी की दया है । ठीक है । मैं तो और बूढ़ा हो गया हूँ और जो कुछ लिख सकता था लिख चुका और मित्रों ने मुझे आसमान पर भी चढ़ा दिया । लेकिन तुम्हारे साथ यह क्या व्यवहार । भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानी बहुत सुंदर थी और इन चतुरसेन को क्या हो गया है कि 'इस्लाम का विष-वृक्ष' लिख डाला । इसकी एक आलोचना तुम लिखो और वह पुस्तक मेरे पास भेजो । मैंने चतुर्वेदी जी से प्रस्ताव माँगी है । इस कम्युनल प्रोपेगेंडा का जोरों से

मुकाबला करना होगा और यह आयम भले आदमी भी इन कामों से धन कमाना चाहता है।

यहाँ एक कवि-सम्मेलन खत्म हुआ। आज दूसरा है। शीघ्र पत्र लिखो। कहानी पीछे भेजना।

२५

तुम्हारा—
धनपतराय

प्रिय जैनेंद्र

सरस्वती प्रेस,
१ अगस्त १९३३

तुम्हारा पत्र मिला। (बच्चे) का हाल सुनकर चिंता हुई। अब तो अच्छा हो रहा होगा। इधर मैं भी स्वस्थ नहीं हूँ लेकिन काम किये जाता हूँ।

आजकल हिन्दी में अजीब बीमारी है। जिसकी पुस्तक की बुरी आलोचना कर दो वह लड़ने पर तैयार हो जाता है। इसलिए मैंने इरादा किया है कि कहानी और उपन्यासों की आलोचना करना ही छोड़ दूँ। जिस की तारीफ़ कर सकूँगा उसकी आलोचना करूँगा जिसकी तारीफ़ न कर सकूँगा उसे किनारे रख दूँगा। 'सरस्वती' ने तो यह (लेख) छापा ही था अब 'सुधा' और 'माधुरी' भी टिप्पणियाँ करते जाते हैं।

पुस्तकों की खपत बहुत कम है। फिर भी 'प्रश्न' की भी पुस्तकें भिजवा देना। 'हस्त रेखा' की आलोचना अच्छी हो तो करवा देना।

बच्चा अच्छा होगा। भगवती को आशीर्वाद कहना। बेटी अच्छी है और सभी चले आ रहे हैं।

२६

तुम्हारा—
धनपतराय

प्रिय जैनेंद्र

जागरण कार्यालय
१ सितम्बर १९३३

तुम्हारा पत्र मिला। हाँ भाई तुम्हारी कहानी

सितम्बर में तुम्हारी और 'प्रभय' की की दोनों ही आ रही हैं। जुलाई में क्रांतिकारी की माँ नाम की कहानी 'हंस' में छपी थी उस पर सरकार ने जमानत की धमकी दी।

आजकल इतनी मंदी है कि समझ में नहीं आता काम कैसे चलेगा। मजदूरों को वेतन चुकाने में कठिनाई पड़ रही है। इसलिए तुम्हारे पास कुछ न भेज सका। जिनके जिम्मे बाकी है वह साँस ही नहीं लेते। रुपये मिलते ही महावीर के काम के लिए भी रुपये भेजूँगा और तुम उन्हें ताकीद कर देना कि मेरठ और दो-तीन शहरों का दौरा करते और एजेंटों से बातचीत करते हुए आवें। यहाँ आने पर मैं उन्हें बिहार की ओर भेजूँगा। 'मेस्मेरीज्म' तुम्हारे आदेशानुसार कार्यालय से पहले ही मँगाये देता हूँ।

मेरा भी इतने छोटे से काम में हार नहीं मानना चाहता। 'आमरण' अब तक नक्शा देता यदि मैं 'हंस' और 'मुक्त' निकाल सकता इसकी सामग्री और खबर बना सकता इसमें दो-चार दिन दे सकता। लेकिन अब यह काम अब समय से लेना पड़ेगा। मैं चाहता हूँ कि तुम यह समझो कि तुम्हीं यह पत्र निकाल रहे हो और इसके नुकसान में नहीं नफे में भी उतने ही शरीक हो जितना मैं। मैं तो चाहता हूँ कि यहाँ कार्यालय इतना सम्पन्न हो जाये कि हमें किसी प्रकाशक का मुँह न देखना पड़े। हम दोनों मिलकर इसे सफल न बना सके तो खेद की बात होगी। 'स्टेट्समैन' 'नेशनल काल' और कितने ही अंग्रेजी पत्र यहाँ मिल सकते हैं उनमें से Informative सामग्री दी जा सकती है। दो चार नोट लिखना मुश्किल नहीं। हाँ इच्छा होनी चाहिए। मैटर अच्छा होने पर इस पर जनता की निगाह जमेगी। मैं एक पृष्ठ चित्रों के देने की फिक्र में भी हूँ। पुस्तकें लगातार लिखते रहना अपने बस की बात नहीं है। कभी-कभी महीनों काम नहीं होता और न पुस्तकों से इतने रुपये मिल सकते हैं कि उन पर depend किया जा सके। यह भी तो चिन्ता रहती है कि कोई ऊटपटांग चीज न लिख दी जाय। समाचारपत्र तो दूकान है। एक बार चल निकले तो उससे थोड़े परिश्रम में आमदनी हो सकती है और तब पुस्तक भी लिखी जा सकती है। यह (ठीक बात) है कि मेरी उम्र एक नये व्यवसाय में पड़ने की नहीं है, लेकिन मैं उम्र को पौरुषस्वास्थ्य का बाधक नहीं बनाना चाहता। तुम कम से कम दो कालम का एक लेख अवश्य दे दिया करो। किसी मामले पर टिप्पणियाँ करना चाहो तो वह भी बेरंग मुहब्बत तक मुझे दे दो।

समाचारपत्रों की आमदनी का दारोमदार विज्ञापनों पर है। मैंने बिड़ला से मिलने को कहा था। अपनी गरज से मत मिलो मेरी गरज से मिलो पत्र दिखाओ

उनकी चर्चा करो। और उनसे जैराव तो कुछ माँगते नहीं। विज्ञापन भिजा देने का अनुरोध करो। यह कह सकते हो कि इस पत्र को घाटा हो रहा है, और थोड़े से सहारे से यह बहुत उपयोगी हो सकता है। उनके पास कई मिलें हैं एकाध पृष्ठ का विज्ञापन उनके लिए तो कुछ नहीं है लेकिन मेरे और तुम्हारे लिए वह बावन रुपये महीना का सहारा है। भाई, यह संसार चुपके से रामभरोसे बैठनेवालों के लिए नहा है। यहाँ तो अंत समय तक (लगना) और लड़ना है। उनसे कुछ मदद पा सकते हो। यहाँ जैनू और मेरे जैसे शर्मीले आदमियों का गुजारा नहीं। उनके लिए तो कोई स्थान ही नहीं। तुम अपने में यह ऐब न आने दो। है भी नहीं। मैं तो किसी काम का नहीं हूँ। अखबार निकालना मेरी (हठधर्मी) है। कुछ (जिद्दी) हूँ और हार नहीं (मानना) चाहता। खेती करता तो उसमें भी इसी तरह चिमटता।

यहाँ वर्षा कम हुई। घर के और सब लोग मजे में हैं। दिलीप तो अच्छा है। भगवती से मेरा आशीर्वाद कहना।

भवदीय

धनपतराय

२७

सरस्वती प्रेस

१ सितम्बर १९३३

प्रिय जैनेंद्र

पत्र मिला। कहानी फिर न भेजी। जून का अंक छप रहा है। तीन दिन के अन्दर कहानी आ जानी चाहिए।

'चित्रपट' देखा। अच्छा है। बेटी अच्छी हो रही है। दस दिन में यहाँ आ जायगी। × × × तैयार हो रहा है। बड़े रूप की बात है। कब देखूँगा? 'प्रेम की वेदी' की जिल्द बन रही है।

सोमवार को भेजा जायगा।

तुम्हारा —

धनपतराय

२८

सरस्वती प्रेस बनारस सिटी

२७ सितम्बर १९३३

प्रिय जैनेंद्र

तुम बिगड़ रहे होगे कि पत्र क्यों नहीं लिखा। मैंने सोचा था महावीर के

लिए ग्राहक सूची से एक प्रोग्राम बनाकर कुछ रुपये के साथ पत्र लिखूँगा। पर न सूची देखने का अवसर मिला न रुपये कहीं से आये और मैं एक सप्ताह के लिए प्रयाग चला गया। वहाँ से आया तो घर के लोग प्रयाग चले गये। मैं प्रेस न आ सका। 'चाँद' के लिए एक कहानी लिखनी थी इधर-उधर के झंझट में रह गया। महावीर आ गये हैं। अभी मेरा विचार है उन्हें आसपास के शहरों में भेजने का। जरा बाहर जाने का अभ्यास हो जाय तो सी० पी० बिहार की ओर भेजूँ। आज कल न जाने क्यों पुस्तकों की बिक्री बंद है। अब अजमेर में जो मेला लगनेवाला है, उसके कारण दो एक × × × मिले हैं। 'हंस' का काशी अंक निकल रहा है। सितम्बर के अंक में फिर देर हो गयी। अब अक्टूबर के पहले सप्ताह में जायगा। दो दिन से प्रेस बंद है। अज्ञेय की यह कहानी बहुत अच्छी थी। उनकी कविताओं के विषय में यहाँ यह राय है कि भाव तो उत्कृष्ट हैं पर हाथ मँजा हुआ नहीं है। लोग कहते हैं कविताओं से उनकी कहानियाँ और गद्यकाव्य बढ़कर हैं।

धनपतराय

२६

जागरण कार्यालय,
२४ अक्टूबर १९३३

प्रिय जैनेन्द्र

मालूम नहीं महावीर ने तुम्हारे पास कोई खत लिखा था या नहीं यहाँ तो उनकी कोई खबर नहीं। जिस दिन यहाँ से गए उसके तीसरे दिन प्रयाग से खत आया था फिर कुछ न मालूम हुआ कहाँ से गए या कहाँ हैं। आज चौबीस दिन हो गए, कपड़े-लत्ते सब यहीं हैं। पुस्तकें जो वह दिल्ली से लाए थे सब यहीं रखी हुई हैं। विचित्र आदमी हैं। अगर ईश्वर न करे, कहीं बीमार हो गए तो एक कार्ड तो लिख देना था। मुझे तो मालूम होता है वह सफल न हुए, और शर्म के मारे चुप साधे बैठे हैं। इस काम में सफल होने के लिए बड़े अनुभव और बेहयाई की जरूरत है और आदमी भी ऐसा चाहिए जो गर्मी-सर्दी भूख-प्यास सह सके। इतना बड़ा कार्यालय तो है नहीं कि अपने एजेंटों को अच्छा अलाउंस या वेतन दे सके और जितना वह दे सकता है उससे रोज परदेश में नहीं रहा जा सकता। होटल तो छोटे शहरों में होते नहीं और अक्सर पूरियों पर गुजारा करना पड़ता है। महावीर का स्वास्थ्य शायद इन दिक्कतों को न झेल सके।

तुमने कई बार रुपये के लिए लिखा है। मैं दिल मसोसकर रह गया। जो कुछ आमदनी होती है वह ऊपर उड़ जाती है। वेतन तो पूरा नहीं पड़ता। कागज के कई सौ रुपये बाकी पड़े हुए हैं। खर्च पाँच सौ रुपये महीने का आमदनी कुल मिलाकर चार सौ रुपये से ज्यादा नहीं। मैं अपनी खामियों को समझ रहा हूँ। अपनी शक्तियों को देख रहा हूँ। पर यह आशा है कि शायद कुछ हो जाय। हिम्मत बाँध हुए हूँ। इधर एक महाशय फिर एक लिमिटेड प्रकाशन संघ खोलने का विचार कर रहे हैं। मैं भी शरीक हो गया। कुछ लोगों ने हिस्से लेने का वचन भी दिया। मगर वह ऐसे प्रामव हुए कि कुछ पता ही नहीं कहाँ हैं। अक्टूबर का 'हंस' काशी अंक होगा। मगर बीस फाम का। निकालना पड़ा और नवम्बर का अंक भी उसमें मिलाना पड़ेगा। इन दोनों अंकों से नाक में दम है। मगर प्रथा ऐसी चलती है कि मोटों के साथ दुबल भी पिसे जा रहे हैं। 'चाँद' और सरस्वती' विशेषांक निकाल सकते हैं। 'हंस' में दम नहीं है, पर फिर भी शहीदों में शामिल होना चाहता है। मैंने सोच लिया है जनवरी तक और देखूँगा। अगर उस वक्त 'जागरण' कुछ ढंग पर न आया तो इसे बंद कर दूँगा। जी तो चाहता है कि 'हंस' का दाम बढ़ाकर पाँच रुपये कर दूँ और एक सौ पृष्ठों का निकालूँ और तुम उसका सम्पादन करो। मैं अलग बैठकर पुस्तकें लिखूँ। ज्यादा काम भी तो नहीं कर सकता। लेकिन शायद मेरी कामनाएँ सब यों ही रह जायेंगी। मुश्किल तो यह है कि व्यवसाय में जितना मैं कच्चा हूँ उतने ही तुम भी कच्चे हो। वरना क्या बात है कि अल्पमचरण तो सफल हों और हम लोग असफल रहें। उपन्यास लिखता था वह भी बंद है। लेकिन अब ज्यादा प्रतीक्षा न करूँगा। जनवरी तक और देखता हूँ। तुम्हारी सलाह न मानी वरना इतना बाध्य क्यों उठाता। लेकिन कोई काम बंद करने बदनामी होती है और वही भाव हो रहा हूँ।

'हंस' का विशेषांक निकल रहा है। शायद कुछ रुपये बच जायेंगे। उस वक्त जो भी कुछ हो सकेगा तुम्हारे पास भेजूँगा। मैं तुमसे सच कहता हूँ प्रेस और पत्रों पर मैं मरा जा रहा हूँ। कुछ लेखों से कुछ रायल्टियों से कुछ उर्दू पुस्तकों से अपना गुजर कर रहा हूँ। लेकिन बहुत देख चुका अब यह तमाम बंद करूँगा।

घर में सब लोग कुशल से हैं। 'कर्मभूमि' का उर्दू अनुवाद जामिया मिल्लिया से शायद निकल जाय।

और क्या लिखूँ। आशा है तुम प्रसन्न हो।

सप्रेम तुम्हारा
धनपतराय

३०

सरस्वती प्रेस
२८ नवम्बर १९३३

प्रिय जैनेन्द्र

तुम्हारा पत्र अभी मिला। प्रयाग से तुमने क्या बात में पत्र लिखा था। बात यह है कि मैं कई दिन प्रेस नहीं आया। काम प्रायः बंद था। अब सब काम ठीक हो गया है।

'जागरण' का भार मेरे सर से उतरा जा रहा है। यहाँ से बा० सम्पूर्णानन्द जी उसे अर्द्ध-साप्ताहिक रूप में निकालने जा रहे हैं। आशा है दो-तीन दिन में सब बात तय हो जायगी। 'हंस' के भी अब तीन फार्म और रह गए हैं। अब यदि हम अंक को छः रुपये की वी० पी० करें तो भय होता है कि बहुत से पत्र वापस आवें। इस अंक पर लगभग आठ सौ रुपये से अधिक खर्च हो गए। जागरण के ग्राहक तो अब 'हंस' में मिलने से रहे 'हंस' के ग्राहकों पर ही संतोष करना पड़ेगा। मगर एक हजार पाठकों में से आधे निकल गए तो मुश्किल पड़ जायगी। इसलिए मैं फिर दुविधा में पड़ गया हूँ। प्रसाद जी की राय है कि 'जागरण' के आकार का अर्द्ध-मासिक निकाला जाय और छः रुपये दाम रखा जाय। इसमें तुम्हारी क्या राय है। यहाँ लोगों की राय में बिना चित्रों का पत्र बड़ी मुश्किल से चलेगा। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। नुकसान से भी डरता हूँ, सहने की शक्ति नहीं रही। अगर 'जागरण' मेरा रास्ता छोड़ता है तो अभी 'हंस' रह जायगा। उसमें थोड़े से और पृष्ठ बढ़ाकर ज्यों का त्यों निकालता रहूँगा।

जैसी तुम्हारी राय है वैसी ही मेरी राय है। लेकिन जनता की राय शायद ऐसी नहीं। वह तो चित्र चाहती है। साहित्यिक पाठकों की संख्या इतनी है या नहीं जो हमारे पत्र का आदर करें इस विषय में बड़ा मतभेद हो रहा है। जो कुछ भी हो मैं एक सप्ताह के अन्दर निश्चय कर सकूँगा। इस विषय पर फिर जल्द ही लिखूँगा।

धनपतराय

३२

सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी
१२ दिसम्बर १९३३

प्रिय जैनेन्द्र

कल एक पत्र लिख चुका हूँ। प्रसाद जी के एक मित्र यह जानने के लिए

बड़े उत्सुक हैं कि 'जागरण' निकल रहा है या नहीं और यदि नहीं निकल रहा है तो क्यों? पहले अंक में उसका कैसा स्वागत हुआ? क्या उसके संचालक उसे निकालना चाहते हैं? अगर किसी कारण से वे न निकालना चाहते हों तो क्या वे उसके निकालने का अधिकार किसी दूसरे को देंगे?

कृपा कर के इसका जवाब लौटती डाक से देना। यह महाशय दिल्ली से एक पत्रिका निकालने की बात सोच रहे हैं और 'जागरण' मिल जाय तो उसे ही ले लेंगे।

भवदीय —
धनपतराय

३२

सरस्वती प्रेस,
१६ दिसम्बर १९३३

प्रिय जैनेन्द्र

तुम्हारा पत्र कई दिन हुए मिल गया था। उसके पहलेवाला इलाहाबाद का पत्र भी कागजों में खोजने से मिल गया।

'जागरण' साबिक दस्तूर चल रहा है। बा० सम्पूर्णानन्द को शायद उनके मित्रों ने मदद नहीं दी। अब मैं उसको बन्द करने की फिक्र में हूँ। उसके पृष्ठ घटा दिये हैं। इस रूप में शायद इससे ज्यादा नुकसान नहीं है। फिर भी झंझट तो है ही।

'हंस' की तुम्हारी स्कीम साहस चाहती है, और जो इस वक्त हालत है उसमें यह स्कीम बड़ी मुश्किल से चलेगी। कागजवालों के काफी रुपये बाकी हैं और कोई (नयी) चाल चलने की हिम्मत नहीं पड़ती। नयी स्कीम के अनुसार तुरन्त ही तीन हजार रुपये महीने का खर्च बढ़ जाता है। पहले से पाठकों को कुछ कहा भी नहीं गया और एक बार के कहने से कोई असर भी न पड़ेगा। बार-बार कहने की जरूरत है। इसलिए इन छः महीनों में तो हमें जमीन तैयार करनी चाहिए। अभी मुझे कोई स्कीम पेश करने का मुँह भी तो नहीं है। अक्तूबर-नवम्बर का संयुक्त अंक अभी नहीं निकला। आज छः दिसम्बर भी हो गई। अभी पाँच-छः दिन से कम न लगेंगे। ऐसी दशा में पाठकों से सहानुभूति-सहयोग की आशा मैं नहीं करता। आधे वी० पी० नहीं लौट आवें भय तो यह है। सारा दारोमदार वी० पी० पर है। अगर इसमें कुछ बोझ हलका होगा तो फिर

साहस करेगा। दिसम्बर का अंक अधिक से अधिक दस तक निकाल देना चाहता हूँ। यह सब हो जाय तो अप्रैल से आकार बढ़ाने की बात चले।

महावीर अभी पटने में ही है। उसने पुस्तकों के आर्डर भेजे थे पर सब बाहर की पुस्तकें हैं और कितनी ही यहाँ मिलती भी नहीं। और उन पर कमीशन भी बहुत कम मिलता है। मैंने उनसे पूछा है क्या कमीशन देने का वचन दे चुके हैं। जवाब आने पर पुस्तकें जमा करके भेजी जायेंगी।

'सेवासदन' के विषय में तुमने पूछा। बम्बई की एक कम्पनी से कुछ बातचीत की थी। उसी का यह तुमार बाँध दिया। उन्होंने मुझे सात सौ पचास आफर भी किया था। मैंने सात सौ पचास ही बहुत समझा मंजूर कर लिया लेकिन रुपये नहीं मिले।

'कर्मभूमि' के अनुवाद के चार सौ रुपये एक गुजराती प्रकाशक से तय हुए थे। दीवाली के बाद रुपये भेजने का वादा था। मगर वह भी चुप साध गया। दो खत भी लिखे जवाब नदारद।

और भी कई जगह से रुपया मिलने की आशा थी। पर कहीं से कोई खबर नहीं है। इससे कोई Roky काम करते और भी हिचकता हूँ।

और तो कोई नई बात नहीं है। खटर पटर चला जाता है।

तुम्हारा
धनपतराय

३३

जागरण आफिस
१४ जनवरी १९१४

प्रिय जैनेन्द्र

नहीं जानता तुमसे किन शब्दों में क्षमा माँगूँ और अपनी चुप्पी का क्या बहाना करूँ। जागरण अंक निकला चार सौ वी०पी० गये एक सौ पचहत्तर वसूल हुए, दो सौ पच्चीस वापस आये। बस बधिया बैठ गयी। मेरा अन्दाजा था कि तीन सौ वी० पी० जरूर वसूल होंगे। इस वापसी का नतीजा यह कि कागज वाले को तेरह सौ में कुल तीन सौ दे सका। एक हजार पूरे उसके सर पर सवार है। 'जागरण' के कातबवालों का भी एक हजार रुपये से कुछ ऊपर ही चढ़ा हुआ है, जो-जो आशाएँ सोची थीं, वे सब गायब हो गईं। ऐसी माली हालत में क्या कोई जवाब सोचूँ क्या करूँ। तुम्हें मालूम होगा कुछ दिनों से लीडर प्रेसवालों से इस सारे संकट को मिटा

देने का प्रस्ताव था। बीच में वह प्रस्ताव स्थगित कर दिया था। पर अब ऐसी परिस्थिति आ पड़ी है तो अब इसके सिवा कोई राह नहीं है कि किसी तरह इस झगड़े से गला छुड़ाकर आप निकलूँ। लीडर को एक प्रस्ताव लिख भेजा है, वे यहाँ १८ को आनेवाले हैं। आशा करता हूँ कि उस दिन यह मामला तय हो जायगा। पहले इरादा था कि हंस उन्हें दे दूँ और प्रेस चलाता रहूँ। लेकिन सारी विपत्ति की जड़ तो यह प्रेस है। न जाने किस बुरी साइत में उसकी बुनियाद पड़ी थी। दस हजार रुपये और ग्यारह साल की मेहनत और परेशानियाँ अकारथ हो गयी। इसी प्रेस के पीछे कितने मित्रों से बुरा बना कितनों से वायदा खिलाफी की कितना बहुमूल्य समय जो लिखने-पढ़ने में कटता बेकार प्रूफ देखने में कटा। मेरी जिन्दगी की यह सबसे बड़ी गलती है।

महावीर प्रसाद ने कुछ किताबें बेची। १५०) आये भी व फिर पटना वापस गये और इधर कुछ हाल-हवाल नहीं मिला। मालूम हुआ दिलीप के काम में शरीक हैं। तीन सौ की नयी किताबें बुकसेलरों को दे चुके हैं। वसूल भी कर पाते हैं या वह भी डूबता है, राम जाने।

लाहौर में मेरे लगभग १   ) उर्दू किताबों के बाकी थे। बरसों के तकाजे के बाद अब मालूम हुआ कि उनसे रुपये वसूल नहीं हो सकते। नालिश करने पर शायद कुछ निकले।

एक खुशखबरी यही है कि सेवासदन का फिल्म हो रहा है। उस पर मुझे ७५०) मिले। अगर इस तंगी में यह रुपये न मिल जाते तो न जाने क्या दशा होती ईश्वर ही जाने। लेकिन तंगी में जब कोई रकम हाथ आ जाती है तो वे सारी जरूरतें जो मुँह दबाये पड़ी थीं यकायक चीख मारने लगती हैं। किसी के पास कपड़े नहीं हैं, किसी के पास जूते नहीं हैं। किसी की लड़की की शादी के लिए कुछ देना चाहिए। मगर वह रुपये दो-चार दिन में हवा हो जाते हैं। वही यहाँ हो रहा है। उसी में तुम्हारा भी थोड़ा-सा हिस्सा है।

लीडर से अगर बातचीत तय हो गयी तो मैं प्रस्ताव करूँगा कि वह तुम्हें 'हंस' का एडिटर बना दें। वे लोग इसे ज्यादा शान के साथ निकाल सकेंगे और तुम्हें अपने विचारों को कार्यरूप में लाने का अवसर मिल जायगा। मैं एकान्त में बैठकर कुछ थोड़ा-बहुत लिख लिया करूँगा। इस झमेले में तो लिखना एक तरह से बन्द ही हो गया। तब तुम्हारी पुस्तकें प्रेस से निकलेंगी और उन पर रायल्टी मिलेगी।

और क्या लिखूँ। बारह दिन बम्बई रहा। प्रेमी जी से मिला। उनके यहाँ भोजन किया। बेचारे बहुत बीमार थे। मर कर जिये। अब भी

हैं। इसके बाद जो पत्र लिखूँगा उसमें यहाँ के development का पूरा वृत्तान्त होगा। भुवनेश्वर जी खूब लिखते हैं और साहित्य के रसिक हैं।

तुम्हारा—
धनपतराय

३५

सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी।
१६ अप्रैल १९३४

प्रिय जैनेन्द्र

पत्र लिखने ही जा रहा था कि तुम्हारा खत मिल गया। मैंने × × × × जी को पत्र लिखा था और जिस रूप में उन्होंने स्कीम को मेरे सामने रखा था वह मुझे इस वजह से पसंद आयी थी कि उसमें × × × की कोई परेशानी नहीं थी। जमा-जमाया काम था। केवल जिम्मेदारी मेरे सर से हट जाती थी लेकिन उनका जो जवाब आया है वह कुछ संतोष के लायक नहीं है। और। मैं तो (इस काम) से तंग आ गया हूँ और कोई सहयोगी खोज रहा हूँ। केवल साहित्यिक सहयोगी नहीं बल्कि कारोबारी सहयोगी भी। अगर तुम्हें साहित्यिक और किसी बिजनेसमैन या कारोबारी का सहयोग प्राप्त हो जाय तो मैं अपने सर से बोझ टालकर हट जाऊँ। अगर वात्स्यायन जी भी मिल जायें तो और भी अच्छा। डरता यही हूँ कि यहाँ से (भागकर) दिल्ली पहुँचूँ और वहाँ भी यही रोना रहे तो अफसोस हो कि नाहक आये।

देशबन्धु जी वाले प्रोपोजल को क्यों तुमने अस्वीकार कर दिया। अगर उनके (कागज) की शर्तों पर काम किया जाय तो कोई वजह नहीं कि हमें धोखा हो। किसी की Personality से क्यों झिझक? हमें तो काम करने के लिए वह योग चाहिए। वह जहाँ से भी मिले उसे ले लो। देशबन्धु बिजनेसमैन हैं, इसमें तो सन्देह है ही नहीं।

सीडरबालों ने अभी तक कोई जवाब नहीं दिया। यही २० तारीख उनके फैसले की है। अगर डाइरेक्टरों ने अनुकूल राय दी तो काम हो जायगा। इसी लिए अभी तक मैंने अप्रैल का 'हंस' प्रेस में नहीं दिया। उनका जवाब मिल जाने पर 'हंस' प्रेस में जायगा।

अलीगढ़ में चक्कर खाने के सिवाय और कुछ न हुआ। हमारी स्कीम को लोगों ने पसंद तो बहुत किया मगर उन दिनों युनिवर्सिटी बन्द थी और Old

Boys Association के जल्से हो रहे थे। इससे मुझे बोलने का अवसर न मिला। उन लोगों ने जिस तरह मेरा स्वागत किया उससे मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। मुझे मालूम हुआ कि वहाँ कितनी ही मुस्लिम लड़कियाँ परदा नहीं करतीं और वे सब मेरी नयी से नयी उर्दू प्रकाशित किताब 'गबन' पढ़ चुकी थीं। मैंने पुलाव और गोश्त खाया उन्हीं के दस्तरख्वान पर और यहाँ आकर दो-तीन दिन चूरन खाना पड़ा। और क्या लिखूँ, काम चला जा रहा है। 'हंस' के लिए कुछ लिख भेजो। अगर यहाँ से निकला तो दे दूँगा। प्रयाग से निकला तो वहाँ भेज दूँगा।

महावीर प्रसाद का कोई पत्र नहीं आया। चार महीने हो गये। कई सौ की पुस्तकें इधर-उधर डाल दी हैं। न कुछ पता मिला कि माल बेहानी करता। कुछ किताबें पटने में डाल दी हैं, कुछ कहीं। उन्हीं किताबों के लिए पटने से यहाँ आये थे। यहाँ से प्रयाग गये थे। फिर पटने गये थे। अच्छी-अच्छी किताबें जमा की लेकिन वह खामोश हो गये। रिलीफ तक तो बहुत अच्छा है, लेकिन कुछ अपनी जिम्मेदारी का खयाल भी तो होना चाहिए। मेरे रुपये 'चाँद' पर आते हैं, कुछ उनसे तकाजा करता लेकिन अब उल्टे मैं उनका देनदार हूँ। तुम उन्हें एक पत्र लिखकर ताकीद कर दो कि जो पुस्तकें न बिक सकी हों उनका हिसाब लिख भेजें। हिसाब बड़ा गोलमाल है। १) से ऊपर की पुस्तकें उनके पास होंगी। आशा थी कुछ ऊपर से आयेगा तो कागज का बिल कम होगा मगर व्यर्थ।

जगपत राय को मैंने खत लिखा। उसने जवाब नहीं दिया। मैंने यहाँ तक लिखा था कि थोड़ा-थोड़ा दे दो लेकिन जब कोई पत्रों का जवाब ही न दे तो क्या किया जाय। अगर तुम जाओ तो पत्र दिखाकर उनसे साफ़-साफ़ जवाब लेना वह किस तरह सफाई चाहते हैं। ८०) का मामला है। यहाँ मेरे सर पर कर्ज है और वहाँ एक-एक आसामी इतनी-इतनी रकमें दबाये बैठा है। क्या वह यही चाहता है कि हम लोग अदालत में आमने-सामने खड़े हों। भला आदमी खत का जवाब नहीं देता। मजबूर होकर रजिस्टर्ड नोटिस देना पड़ेगा। शेष कुशल।

तुम्हारा—
धनपतराय

३६

हंस आफ़िस,
१० अप्रैल १९३४

प्रिय जैनेन्द्र

तुम्हारा पत्र ऐसे इन्तजार की हालत में मिला। तुमसे सलाह करने की एक खास जरूरत आ पड़ी है। अभी न बताऊँगा। जब आओगे तभी इस विषय में बातें होंगी। मगर अब तुम्हें क्यों Suspense की हालत में रखूँ। बम्बई की एक फ़िल्म कम्पनी मुझे बुला रही है। वतन की बात नहीं कंट्रैक्ट की बात है। ८ [illegible]) साल। मैं उस अवस्था को पहुँच गया हूँ जब मेरे लिए हाँ के सिवा कोई उपाय नहीं रह गया कि या तो वहाँ चला जाऊँ या अपने उपन्यास को बाजार में बेचूँ। मैं इस विषय में तुम्हारी राय जरूरी समझता हूँ। कम्पनीवाले हाजरी की कोई कैद नहीं रखते। मैं जो चाहे लिखूँ, जहाँ चाहे लिखूँ उनके लिए चार-पाँच सीनरियो तैयार कर दूँ। मैं सोचता हूँ क्यों न एक साल के लिए चला जाऊँ। वहाँ साल भर रहने के बाद कुछ ऐसा कंट्रैक्ट कर लूँगा कि मैं यहाँ बैठे-बैठे तीन चार कहानियाँ लिख दिया करूँ और चार-पाँच हजार रुपये मिल जाया करें। उससे 'जागरण' और 'हंस' दोनों मजे से चलेंगे और पैसों का संकट कट जायगा। फिर हमारी दोनों की चीजें जागरण से निकलेंगी लेकिन तुम यहाँ आ जाओगे तो फ़ौरन राय होगी। अभी तो मन डोल रहा है।

तुम्हारी स्कीम मुझे बिलकुल पसन्द है। खूब पसंद है। लीडर से जवाब मिल गया वे लोग हिन्दी काम का नहीं बढ़ाना चाहते। उनके जवाब के इंतजार में अप्रैल का 'हंस' २२ तक रुका रहा। २७ को जवाब मिला तब लेख जुटाने गए और अब अप्रैल और मई का हंस एक साथ छप कर १५-२० मई तक रवाना होगा।

लीडरवालों से बात चीत इस आधार पर की कि 'हंस' का और पुस्तकों का मूल्य जोड़ लिया जाय और उतने हिस्से मुझे लीडर कम्पनी में मिल जायँ। 'हंस' के लिए मैंने दो हजार माँगे थे हालाँकि इस पर मैं ७ [illegible]) से ज्यादा झोंक चुका हूँ। पुस्तकों का मुआमला साफ़ है। पुस्तकों की असली लागत निकाल ली जाय। 'जागरण' को चलाना मंजूर हो तो इसे चलाया जाय। अन्यथा [illegible] पत्र बना दिया जाय। रहा यह प्रेस यहाँ रहे या कहीं और मुझे इसमें कोई एतराज नहीं। हाँ काम ऐसे हाथों में हो जो महज dreamers न हों जैसा मैं हूँ और तुम हो बल्कि कुछ व्यावसायिक बुद्धि भी रखते हों। कम्पनी में भी

सुभीता है क्योंकि प्रेस चला-चलाया है। यहाँ लोगों से बड़ी आसानी से सहयोग मिल सकता है। कुछ बँधे-बँधाए ग्राहक भी हैं। सम्भव है चल जाने देख कर यहाँ कुछ लोग भी उसमें लगाने पर तैयार हो जायें। अगर हम तीन आदमी और कृष्ण चन्द्र जी ही मिल जायें तो क्या कहना। मैं हर तरह से सहयोग देने को तैयार हूँ। शेष कुशल है, बच्चे मजे में हैं।

बच्चों को आशीर्वाद

तुम्हारा
धनपतराय

३७

सरस्वती प्रेस
८ मई १९३४

प्रिय जैनेन्द्र

मले आदमी मकान छोड़ा था तो डाकिए से इतना तो कह दिया होता कि मेरी चिट्ठियाँ इस पते पर भेज देना। बस बोरिया-बिस्तरा सँभाला और चल खड़े हुए। मैंने तुम्हारे जवाब में एक बड़ा-सा Detailed खत लिखा था। वह शायद मुर्दा चिट्ठियों के दफ्तर में पड़ा होगा। लीडरवालों से सौदा ठीक नहीं हुआ। वे लोग हिन्दी का काम आम की बात नहीं समझते और कारोबार बढ़ाना नहीं चाहते। 'हंस' को (रोके) रहा। मगर अब अप्रैल और मई का (संयुक्त अंक) निकल रहा है। तुम्हारी कहानी का इन्तजार है।

मैं वात्स्यायन जी के प्रस्ताव को दिल से स्वीकार करता हूँ। अगर ५०००) और वात्स्यायन जी और तुम आ मिलो तो बहुत बड़ा काम हो जाय। मैं हर तरह स तैयार हूँ। यही चाहता हूँ कि जो काम शुरू किया गया है वह बंद न हो उसकी उपयोगिता बढ़े और वह एक संस्था बन जाए। तुमने आने की बात लिखी थी। बहुत जरूरी । लिखा-पढ़ी से तय न होगी। मेरी तरफ से बिल्कुल झिझक नहीं है। हाँ अगर काशी से काम चले तो कई तरह से सुभीता है। यहाँ प्रेस चला-चलाया है। कुछ पत्रों का प्रचार बढ़ जाय और आमदनी ज्यादा हो जाय तो प्रेस को बाहरी काम करने की ज्यादा फुरसत ही न रहेगी और प्रेस को बढ़ाना पड़ेगा। 'हंस' अगर २ ० छपे और 'जागरण' ३००० तो प्रेस को और कोई काम करने की जरूरत नहीं। अपनी किताब साल भर में ५।६ फार्म छाप लेगा। हाँ बिजली लगा दी जाय तो ज्यादा काम हो

छपेगा। यहाँ सहयोग भी काफी मिल सकता है। बस एक Private Limited Company बना लो। हम तीनों अपने-अपने हिस्से का काम करें। अवस्थानुसार काम बाँट लो। मैं इसमें बीच में पड़ूँगा। आगे बढ़ो। लेकिन कुछ निश्चय हो गया हो तब। मुफ्त में किराया देने के पक्ष में मैं नहीं हूँ। मुलाकात तो पत्रों से ही हो जाती है और पत्र न भी आये तो भी मैं तुम्हें अपने समीप पाता हूँ।

मुझे एक बम्बई की कम्पनी बुला रही है। क्या सलाह है? मुझे तो कोई हरज नहीं मालूम होता अगर वेतन सात-आठ सौ मिले। साल-दो साल करके चला आऊँगा। मगर अभी मैंने जवाब नहीं दिया है। उसके दो तार आ चुके हैं। प्रसाद जी की सलाह है आप बम्बई न जायें। तुम्हारी भी अगर यही राय है तो मैं न जाऊँगा। जौहरी जी कहते हैं जरूर जाइए और चिरसंगिनी दरिद्रता भी छूटती है, चलो। जीवन का यह भी एक अनुभव है।

महावीर का कोई पत्र नहीं। एक बम्बई के सज्जन भी × × × से यहाँ आए थे। महावीर से उनका सम्पर्क रहता था। वह तो उनसे कुछ Impressed नहीं हुए।

मुझे कल बुखार आ गया। आज भी थोड़ा है। मगर यों चंगा हूँ। चिन्ता की बात नहीं।

और तो कोई नई बात नहीं। × × ने सलाह-मशविरा × ×वाले मुआमले को तूल दिया। और तुम्हारी × × मुझे पसंद आई।

तुम्हारा
धनपतराय

३८

अजन्ता सिनेटोन लि०, परेल, बम्बई
१५ जून १९३४

प्रिय जैनेन्द्र

कार्ड मिला। मैं कुछ ऐसा परेशान रहा कि इच्छा होने पर भी पत्र न लिख सका। १ को आ गया मकान ले लिया दादर में होटल में खाता हूँ और पड़ा हूँ। यहाँ दुनिया दूसरी है यहाँ की कसौटी दूसरी है। अभी तो समझने की कोशिश कर रहा हूँ इस विषय की किताबें पढ़ रहा हूँ। लिखा कुछ नहीं। जुलाई में घर के लोग मुन्नू को छोड़कर, आ जायेंगे। साल भर किसी तरह काटूँगा आगे देखी जायगी।

तुमने तो कहानी लिखने की कसम खा ली। 'हंस' में कुछ न लिखा। महीने में दो तीन कहानियाँ लिखना तुम्हारे लिए क्या मुश्किल है। एक 'हंस' को दे दो एक 'भारती' को दे दो और एक 'चाँद' या 'विशालभारत' को। भाई! आइडियलिस्ट बनने से काम न चलेगा। चिड़ियाँ उड़ती आसमान पर हैं लेकिन भोजन के लिए धरती पर ही आती हैं। जुलाई के लिए कहानी अवश्य भेजो। यहाँ वर्षा हो गई और बड़ा अच्छा मौसम है।

हाँ! 'हंस' के लिए कुछ साहित्यिक नोट क्यों नहीं लिख दिया करते। हिन्दुस्तान टाइम्स में सारी दुनिया की पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं उनमें साहित्योपयोगी चीज़ें मिल सकती हैं। छ-सात पृष्ठों की कहानी तीन चार पृष्ठों की टिप्पणियाँ। इतना 'हंस' के लिए करते जाओ और माहवार हिसाब साफ कर दिया करूँगा। आज नहीं तो कल यह पत्र तुम्हारे हाथ में आयगा ही। शेष कुशल।

धनपतराय

३९

अजंटा सिनेटोन लि०, परेल, बम्बई १२
१ जुलाई १९३४

प्रिय जैनेन्द्र

पत्र मिला था। आशा है तुमने अपनी और 'अज्ञेय' जी की कहानियाँ भेज दी होंगी। अगर नहीं भेजी हों तो अब जुलाई नंबर के लिए जल्द से जल्द भेज दो। विलम्ब भी उन कारणों में एक है जो 'हंस' को उठने नहीं देते।

मैं मज़े में हूँ। एक स्टोरी लिख डाली। बन रही है। दूसरी शुरू कर रहा हूँ। तुम्हारे ज़ेहन में कोई प्लाट हो तो एक खुलासा भेज दो। यहाँ कई डाइरेक्टरों से जान-पहचान हो गई है। संभव है कहीं निकल जाय। बहुत से वाहियात लोगों की चीज़ें निकलती हैं तो फिर तुम्हारी क्यों न निकलेंगी?

रात-दिन वर्षा। नाकों दम है। महावीर पहुँच गया या नहीं? प्रवासी लाल ने लिखा था कोई हिसाब नहीं दिया। ज़रा याद दिला देना। कागज़ का पेट तो भरना ही चाहिए।

सप्रेम
धनपतराय

४०

अजंता सिनेटोन, परेल बम्बई १२
१ अगस्त १९३४

प्रिय जैनेन्द्र

पत्र मिला। मैं २१ को बनारस गया था। ३१ को वापस आया। बेटी और उसकी माँ को लेता आया। लड़कों को प्रयाग कायस्थ पाठशाला में भरती कर दिया। तुम्हारा लेख कहानी 'अज्ञेय' जी की कहानी और मेरी कहानी सब छप रही है।

सिनेमा के लिए कहानियाँ लिखना मुश्किल हो रहा है, लेकिन जरूरत ऐसी कहानियों की है जो जैसी भी आ सकें जो ऐक्टरों के लिए सुलभ हो। कितनी ही अच्छी कहानी हो अगर योग्य पात्र न मिलें तो वह कौन खेलेगा। अद्भुत की जरूरत मैं नहीं समझता। मेरी दोनों कहानियाँ साधारण हैं। अगर तुम (कोई) चीज लिखो तो यहाँ (कुछ प्रबंध) हो सकता है। पहले सिनापसिस ही लिख भेजो। उससे कहानी के प्लाट का अंदाजा हो जायगा।

'जागरण' (सोशलिस्ट) पेपर हो गया है। काशी में था सम्पूर्णानन्द से जो बातें हुई उनसे मालूम हुआ कि वह एक (पत्र) निकालना चाहते हैं। बड़ा अच्छा है किसी तरह (निकल) जाय तो मेरे सर से एक बला टले। तुमने 'अज्ञेय' जी के साथ पत्र निकालने का विचार क्यों छोड़ दिया।

मैं सकुशल हूँ।

तुम्हारा
धनपतराय

४१

अजंता सिनेटोन परेल बम्बई १२
८ सितम्बर १९३४

प्रिय जैनेन्द्र

आशा है तुम कुशल से हो। आजकल क्या कर रहे हो? मिलने पत्र की क्या खबर है। मैं तो जैसे (अपाहिज) हो गया हूँ। 'हंस' के लिए एक चीज लिखना भी मुश्किल है। तुमने अपनी कहानी और मि अज्ञेय की भेज दी होगी। सितम्बर का अंक १५ तक निकाल देने का इरादा है। एक दिन प्रेमी जी के बेटे हेमचन्द आए थे। अच्छी-अच्छी पुस्तकों के बहुत सस्ते एडिशन निकालने की स्कीम सोच रहे हैं। चार पाँच आने में हम काम की किताब देंगे और हम

हजार के एडिशन निकालेंगे। देखें स्कीम पूरी होती है या यूँ ही रह जाती है। मैंने सुना है जोशी बन्धुओं ने 'विश्वमित्र' से संबंध तोड़ लिया है।

अगर तुमने अपनी कहानी न भेजी हो तो अब अवश्य भेज दो।

और तो कुशल है।

आपका—

धनपतराय

४२

सरस्वती प्रेस सिनेटोन बम्बई १२,

२६ सितम्बर १९३४

प्रिय जैनेन्द्र

अभी तुम्हारा पत्र मिला। जवाब दे दिया है। ग्राहक पते दर्ज किये। मैं तुम्हारी राय के बगैर कभी यह सौदा न करता। बात यों है कि प्रेस में आग तो है ही। तीन महीनों की प्रेसवालों की मजदूरी बाकी पड़ी है। जून की तो अगस्त में दे रहे थे। और जुलाई अगस्त के लिए अक्तूबर का वायदा था जब हंस के वी० पी० जायेंगे। इसी बीच में प्रेसवालों ने प्रेस कमचारी संघ का जोर पाकर हड़ताल कर दी। मैंने सोचा तीन महीने की मजदूरी १००) से कम न होगी। कागजवालों के भी २००) देने हैं। क्यों न हंस और स्टाक किसी को देकर उससे रुपये ले लो और सब बकाया चुकाकर प्रेस से हमेशा के लिये पिंड छुड़ा लो। तभी दो-तीन जगह पत्र लिखे। एक पत्र ऋषभ जी को भी लिखा। स्टाक लेना तो सबने स्वीकार किया पर हंस पर कोई न राजी हुआ। इस बीच में हड़ताल टूट गयी। एक महीने का वेतन लेकर सब काम करने आ गये। अब दो महीने का नवम्बर में देंगे। कागजवालों को भी कुछ रुपये दे दिये। 'जागरण' बन्द कर दिया। अब आशा है काम साधारण तौर पर चलता रहेगा। 'हंस' के वी० पी० जाएँगे। अगर १० वसूल हो जायें तो मजूरी पाक हो जाए और कुछ कागजवालों को भी दे दूँ। 'जागरण' में कम से कम ३०) की बचत थी। महज घोड़कर। 'हंस' का अक्तूबर अंक निकल रहा है। तुम्हारी और 'अज्ञेय' जी की कोई कहानी अब तक नहीं आयी। क्यों? जल्द से जल्द भेजो ता इस मास 'हंस' का ठीक करके अगले साल से ५) का कर दूँ। दाम बढ़ाने के पहले साल भर तक पत्र को ठीक समय पर और अच्छे ढंग में निकालना चाहिए। अगर एक हजार ग्राहक ५) के हो जायें तो फिर उधर से निश्चिन्त हो जाऊँ। दिल्ली में कई महिलाएँ भी लिखती हैं। एकाध से हंस के

लिखो लेख भी ।

यहाँ कांग्रेस में आ रहे हो न ? कांग्रेस तो अब बेजान-सी चीज होती जा रही है । मगर तमाशा तो रहेगा ही ।

एक दिन हिमांशु राय से मिला था । वह कोई स्टोरी चाहते थे । पौराणिक हो या सामाजिक । अगर कोई स्टोरी खयाल में हो तो उसका दो पेज का Synopsis लिख भेजो । मैं उनसे जाकर मिलूँगा और दे दूँगा । अगर जँच गयी तो बड़ा काम हो जायगा ।

शेष कुशल । बच्चों को प्यार । भगवती देवी से मेरा आशीर्वाद कहना । और कहानी जरूर लिख जरूर लिखना । प्रसाद जी से भी कहानी माँगी है । शायद वे भी दें ।

तुम्हारा—
धनपतराय

४३

अजंटा सिनेटोन, परेल, बम्बई १२
२८ नवम्बर १९३४

प्रिय जैनेन्द्र,

इधर बहुत दिनों से तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला । आशा है अब तुम स्वस्थ हो गये हो । प्रवासीलाल जी से मालूम हुआ तुम्हारी कोई कहानी 'हंस' के लिए आयी है । बड़ी खुशी हुई ।

साहित्य सम्मेलनवालों ने मुझसे उपन्यास कला पर एक लेख लिखने को कहा है जो साहित्य परिषद् में पढ़ा जाय । मैंने तो लिख दिया मुझे ऐसे ग्रन्थों की उपयोगिता में विश्वास नहीं । जिनमें प्रतिभा है वे आप लिखने लगते हैं जैसे बतख का बच्चा तैरने लगता है । जिनमें प्रतिभा नहीं उन्हें लाख कला का उपदेश कीजिये कुछ नहीं कर सकते ।

रूपनारायण अग्रवाल को तो जानते हो । वही युवक जो दिल्ली में कई बार मुझसे मिलने आया था जिसके घर एक दिन मैं खाना खाने भी गया था । परसों उसका पत्र मिला । तपेदिक हो गया और लखनऊ के टी० बी० अस्पताल में पड़ा है । कोई सहायक नहीं कोई हमदर्द नहीं । ऐसे मेहनती और प्रतिभा के धनी आदमी कम होंगे । वार एंड पीस रिजरेक्शन वेनिटी फेयर आदि पुस्तकों के अनुवाद कर डाले लेकिन रिजरेक्शन के सिवा कोई पुस्तक न छपी प्रकाशकों के पास पड़ी हुई हैं और आज वह गरीब मर रहा है । यह है अभागे साहित्य-

सेवियों का ह्रास।

प्रथम में 'लेखक संघ' का विवरण तुम्हें मिला होगा। बहुत से साहित्यिक उसमें मिल गये हैं, लेकिन कोई दिमाग़वाला आदमी अभी नहीं नज़र आता। यू हमारे यहाँ दिमाग़वाले आदमी हैं ही कितने। तुम इस संघ में आ मिलो और ऐटिट्यूड ट्रस्ट को तो शायद कुछ हो। मेरा नाम सभापति के लिए पेश किया गया है। मेरे जैसा सभापति जिस संस्था का हो वह क्या होगी। मैंने डा० भगवान दास पं० वेंकटेशनारायण तिवारी या पं नरेन्द्रदेव जी का नाम प्रोपोज किया है।

फ़िल्मी हाल क्या लिखूँ। 'मिल' यहाँ पास न हुआ। लाहौर में पास हो गया और दिखाया जा रहा है। मैं जिस इरादे से आया था उसमें एक भी पूरे होते नज़र नहीं आते। ये प्रोड्यूसर जिस ढंग की कहानियाँ बनाते आये हैं उसकी लीक से जौ भर भी नहीं हट सकते। वल्गैरिटी को यह लोग एंटरटेनमेंट वैल्यू कहते हैं। अद्भुत ही में इनका विश्वास है। राजा-रानी उनके मंत्रियों के षड्यंत्र नक़ली लड़ाई, बोसे-बाज़ी यही इनके मुख्य साधन हैं। मैंने सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं, जिन्हें शिक्षित समाज भी देखना चाहे लेकिन उनको फ़िल्म करते इन लोगों को संदेह होता है कि चले या न चले। यह साल तो पूरा करना है ही। इक़रार हो गया था। क़र्ज़ा पटा दूँगा। मगर और कोई लाभ नहीं। उपन्यास के अंतिम पृष्ठ लिखने बाकी हैं उधर मन ही नहीं जाता। यहाँ से छुट्टी पाकर अपने पुराने अड्डे पर आ बैठूं। वहाँ धन नहीं है मगर संतोष अवश्य है। यहाँ तो जान पड़ता है कि जीवन नष्ट कर रहा हूँ।

सेठ गोविन्द दास जी यहाँ आये हुए हैं। उनकी भी सिनेमा कम्पनी खुली है। महावीर कहाँ है?

और सब कुशल है।

सप्रेम

धनपत

४४

१८६ सरस्वती सदन, दादर, बम्बई १४

७ फरवरी १९३५

प्रिय जैनेन्द्र

तुम्हारा पत्र मिला। हाँ इधर मैंने तुम्हें कोई पत्र न लिखा। ऋषभ जी आये थे। उनसे तुम्हारी खैरियत का हाल मिल गया था। कुछ ऐसा व्यस्त तो

नहीं रहता। हाँ काम नहीं करता। सात बजे उठता हूँ। साढ़े आठ पर घूम कर आता हूँ। नाश्ता करता हूँ। नौ बजे अखबार पढ़ता हूँ। कभी घण्टा भर कभी इससे ज्यादा समय लग जाता है। कभी कोई मिलने आ जाता है। ग्यारह बज जाता है। नहा-खाकर स्टूडियो जाता हूँ। कुछ काम हुआ तो किया नहीं उपन्यास पढ़ा। पाँच बजे लौटता हूँ। हिन्दी के पत्रों-पत्रिकाओं को उलटता-पलटता हूँ। चिट्ठी-पत्र लिखता हूँ खाता हूँ और सो जाता हूँ। यही दिनचर्या है। एकाध कहानी महीने में लिखता हूँ और दो-एक पृष्ठ के नोट 'हंस' के लिए। बस।

'मजदूर' तुम्हें पसन्द न आया। यह मैं जानता था। मैं इसे अपना कह भी सकता हूँ नहीं भी कह सकता। इसके बाद एक रोमांस आ रहा है। वह भी मेरा नहीं है। मैं उसमें बहुत थोड़ा-सा हूँ। 'मजदूर' में भी मैं इतना थोड़ा-सा आया हूँ कि नहीं के बराबर। फ़िल्म में डाइरेक्टर सब कुछ है। लेखक कलम का बादशाह क्यों न हो यहाँ डाइरेक्टर की अमलदारी है और उसके राज्य में उसकी हुकूमत नहीं चल सकती। हुकूमत माने तभी वह रह सकता है। वह यह कहने का साहस नहीं रखता मैं जनरुचि को जानता हूँ। इसके विरुद्ध डाइरेक्टर जोर से कहता है आप नहीं जानते मैं जानता हूँ जनता क्या चाहती है और हम जनता की इसलाह करने नहीं आए हैं। हमने व्यवसाय खोला है, धन कमाना हमारी गरज है। जो चीज जनता माँगेगी वह हम देंगे। इसका जवाब यही है 'अच्छा साहब। हमारा सलाम लीजिए। हम घर जाते हैं।' वही मैं कर रहा हूँ। मई के अंत में काशी में अपना उपन्यास लिख रहा होगा। और कुछ मुझ में नयी कला न सीख सकने की भी शिकस्त है। फ़िल्म में मेरे मन को संतोष नहीं मिला। संतोष डाइरेक्टरों को भी नहीं मिलता लेकिन वे और कुछ नहीं कर सकते झख मारकर पड़े हुए हैं। मैं और कुछ कर सकता हूँ चाहे वह बेगार ही क्यों न हो इसलिए चला जा रहा हूँ। मैं जो प्लाट सोचता हूँ उसमें आदर्शवाद घुस आता है और कहा जाता है उसमें Entertainment Value नहीं होता। इसे मैं स्वीकार करता हूँ। मुझे आदमी भी ऐसे मिले जो न हिन्दी जानते हैं और न उर्दू। अंग्रेज़ी में अनुवाद करके उन्हें कथा का मर्म समझाना पड़ता है और काम कुछ नहीं बनता। मेरे लिए अपनी वही पुरानी लाइन भली है। जो चाहा लिखा।

'हंस' बदस्तूर चला जाता है। पूरे दो वर्ष तक ८००) मास की नजर कर चुका हूँ। व्यापार जानता नहीं खोल बैठा दुकान घाटा आप होगा। न किसी ऐसे आदमी का सहयोग ही पा सका जो व्यापार जानता हो।

जयराम जी आये थे। वह ऐसी कोई आयोजना बना रहे हैं जिसमें तुम हम

वह और अन्य कुछ लोग मिलकर एक लिमिटेड फर्म बना लें। ऐसे ही एक सज्जन कहते हैं, मैं अपनी दुकान उठाकर प्रयाग लाऊँ। मेरी समझ में कुछ नहीं आता। जैसे चलता हूँ वैसे चला जाता हूँ।

लेखक संघ की नियमावली तुम्हें मिली होगी। काम की बात कोई नहीं। सहयोग सिद्धांत पर प्रकाशन किया जाय और साहित्य का प्रचार बढ़ाया जाय तभी लेखकों को रोटी मिल सकती है। जब तक प्रचार नहीं बढ़ता न प्रकाशक ही पनप सकेगा न लेखक ही। मगर Cooperative Publication के लिए धन चाहिए। मगर संघ यह न कर सके तो कुछ न कर सकेगा।

तुम्हारी कई चीजें पढ़ीं। 'ग्रामोफोन का रिकार्ड' तो हाल में पढ़ा है। वह दिमाग में है। पुरानी शराब चमकदार शीशी में ज्यादा मोहक हो गयी है। मगर वह औरत मर क्यों चली गयी यह मेरी समझ में नहीं आया। शायद वह पढ़ी लिखी थी। मगर पढ़ी-लिखी औरतों को समय काटने का रोग नहीं होता। यह रोग तो उन अंग्रेजी या नयी रोशनी की देवियों का है, जिनके लिए जीवन में पल दिन कुछ न कुछ कंपन और धमकनी चाहिए जो पल भर भी घर में नहीं बैठ सकतीं। मगर इस तरह सभी औरतों का समय काटना दूभर हो जाय और मनमोहन की बैरिस्टरों की दुनिया में कमी है ही नहीं तब तो सभी आत्माएँ विश्वात्मा में मिल जायें और कहीं वह (मर्यादा) रहे ही नहीं जो मनुष्य को मनुष्य बनाये हुए है। खुलासा यह है कि इस कहानी का क्या मतलब है यह मैं न समझ सका। शायद कोई मतलब समझने की बात ही मेरी भूल है। एक युवती के मनोभावों का गहरा सजीव चित्रण है। बस।

मद्रास गया था वहाँ से मैसूर और बंगलौर भी गया। अपना यात्रा-वृत्तांत लिख रहा हूँ। कुछ नोट तो किया नहीं। जो कुछ याद है वही लिखता हूँ। हिन्दी का प्रचार बढ़ रहा है, यह देखकर खुशी हुई। जो लोग राष्ट्र की ओर कोई सेवा नहीं कर सकते वे इसी खयाल में मगन हैं कि वे राष्ट्र भाषा सीख रहे हैं। मुझे वह प्रदेश बड़ा सुन्दर लगा। गाँवे कसबे का घर-घर प्रचार है। मोहल्ले-मोहल्ले स्त्रियों के समाज हैं और प्राय सभी में हिन्दी की कक्षायें हैं। मैं बुद्धू की तरह माला पहनकर रह गया। बोल न सकने की कमी उस वक्त मालूम हुई। जनता समझती है कि हिन्दी का एक बड़ा लेखक है जाने क्या-क्या मोती उगलेगा और यहाँ है कि कुछ समझ में नहीं आता क्या कहूँ। खैर। निप भला रहा। प्रेमी जी भी साथ थे। वे बेचारे भी इसी मरज में मुब्तिला हैं।

और क्या लिखूँ, मेरा जीवन यहाँ भी वैसा ही है, जैसा काशी में था। न किसी से दोस्ती न किसी से मुलाकात। मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक। स्त्रियों

नहीं रहता। हाँ काम नहीं करता। सात बजे उठता हूँ। साढ़े आठ पर घूम कर आता हूँ। नाश्ता करता हूँ। नौ बजे अखबार पढ़ता हूँ। कभी घण्टा भर कभी इससे ज्यादा समय लग जाता है। कभी कोई मिलने आ जाता है। ग्यारह बज जाता है। नहा-खाकर स्टूडियो जाता हूँ। कुछ काम हुआ तो किया नहीं उपन्यास पढ़ा। पाँच बजे लौटता हूँ। हिन्दी के पत्रों-पत्रिकाओं को उलटता-पलटता हूँ। चिट्ठी-पत्र लिखता हूँ खाता हूँ और सो जाता हूँ। यही दिनचर्या है। एकाध कहानी महीने मे लिखता हूँ और दो-एक पृष्ठ के नोट 'हंस' के लिए। बस।

'मजदूर' तुम्हें पसन्द न आया। यह मैं जानता था। मैं इसे अपना कह भी सकता हूँ नहीं भी कह सकता। इसके बाद एक रोमांस आ रहा है। वह भी मेरा नहीं है। मैं उसमे बहुत थोड़ा-सा हूँ। 'मजदूर' में भी मैं इतना थोड़ा-सा आया हूँ कि नहीं के बराबर। फिल्म में डाइरेक्टर सब कुछ है। लेखक कलम का बादशाह क्यों न हो यहाँ डाइरेक्टर की अमलदारी है और उसके राज्य में उसकी हुकूमत नहीं चल सकती। हुकूमत मान कर ही वह रह सकता है। वह यह कहने का साहस नहीं रखता मैं जनरुचि को जानता हूँ। इसके विरुद्ध डाइरेक्टर जोर से कहता है, आप नहीं जानते मैं जानता हूँ जनता क्या चाहती है और हम जनता की इसलाह करने नहीं आए हैं। हमने व्यवसाय खोला है, धन कमाना हमारी गरज है। जो चीज जनता माँगेगी वह हम देंगे। इसका जवाब यही है 'अच्छा साहब। हमारा सलाम लीजिए। हम घर जाते हैं।' यही मैं कर रहा हूँ। मई के अंत मे काशी में बैठा उपन्यास लिख रहा होगा। और कुछ मुझ मे नयी कला न सीख सकने की भी सिफ़त है। फ़िल्म में मेरे मन को संतोष नहीं मिला। संतोष डाइरेक्टरों को भी नहीं मिलता लेकिन वे और कुछ नहीं कर सकते झख मारकर पड़े हुए हैं। मैं और कुछ कर सकता हूँ चाहे वह बेगार ही क्यों न हो इसलिए चला जा रहा हूँ। मैं जो प्लाट सोचता हूँ उसमें आदर्शवाद घुस आता है और कहा जाता है उसमें Entertainment Value नहीं होता। इसे मैं स्वीकार करता हूँ। मुझे आदमी भी ऐसे मिले जो न हिन्दी जानते हैं और न उर्दू। अंग्रेजी में अनुवाद करके उन्हें कथा का मर्म समझाना पड़ता है और काम कुछ नहीं बनता। मेरे लिए अपनी वही पुरानी लाइन मजे की है। जो चाहा लिखा।

'हंस' बदस्तूर चला जाता है। जून से अब तक ८०) प्रेस की नजर कर चुका हूँ। व्यापार जानता नहीं खोल बैठा दुकान घाटा आप होगा। न किसी ऐसे आदमी का सहयोग ही पा सका जो व्यापार जानता हो।

अनुपम भी आये थे। वह ऐसी कोई आयोजना बना रहे हैं जिसमें तुम हम

वह और अन्य कुछ लोग मिलकर एक लिमिटेड फर्म बना लें। ऐसे ही एक सज्जन कहते हैं, मैं अपनी दुकान उठाकर प्रयाग आऊँ। मेरी समझ में कुछ नहीं आता। जैसे चलता है वसे चला जाता हूँ।

लेखक संघ की नियमावली तुम्हें मिली होगी। काम की बात कोई नहीं। सहयोग सिद्धांत पर प्रकाशन किया जाय और साहित्य का प्रचार बढ़ाया जाय तभी लेखकों को रोटी मिल सकती है। जब तक प्रचार नहीं बढ़ता न प्रकाशक ही पनप सकेगा न लेखक ही। मगर Cooperative Publication के लिए धन कहाँ है। अगर संघ यह न कर सके तो कुछ न कर सकेगा।

तुम्हारी कई चीजें पढ़ीं। 'ग्रामोफोन का रिकार्ड' तो हाल में पढ़ा है। वह दिमाग में है। पुरानी शराब चमत्कार सीढ़ी से ज्यादा मोहक हो गयी है। मगर वह औरत घर क्यों चली गयी यह मेरी समझ में नहीं आया। शायद वह बेपढ़ी लिखी थी। मगर अपढ़ी-लिखी औरतों को समय काटने का रोग नहीं होता। यह रोग तो उन अंग्रेजी या नयी रोशनी की देवियों का है, जिनके लिए जीवन में रात दिन कुछ न कुछ कंपन और सनसनी चाहिए, जो चाय भर भी घर न नहीं बैठ सकती। अगर इस तरह सभी औरतों का समय काटना दूभर हो जाय और मनमोहन की बैरिस्टरी की दुनिया में कमी है ही नहीं तब तो सभी आत्माएँ विश्वात्मा में मिल जायँ और कहीं वह (मर्यादा) रहे ही नहीं जो मनुष्य को मनुष्य बनाये हुए है। खुलासा यह है कि इस कहानी का क्या मतलब है, यह मैं न समझ सका। शायद कोई मतलब समझने की बात ही मेरी भूल है। एक युवती के मनोभावों का गहरा सजीव चित्रण है। बस।

मद्रास गया था वहाँ से मैसूर और बंगलौर भी गया। अपना यात्रा-वृत्तांत लिख रहा हूँ। कुछ नोट तो लिया नहीं। जो कुछ याद है वही लिखता हूँ। हिन्दी का प्रचार बढ़ रहा है, यह देखकर खुशी हुई। जो लोग राष्ट्र की और कोई सेवा नहीं कर सकते वे इसी ख्याल में मगन हैं कि वे राष्ट्र भाषा सीख रहे हैं। मुझे वह प्रदेश बड़ा सुन्दर लगा। गाने बजाने का घर-घर प्रचार है। मोहल्ले-मोहल्ले स्त्रियों के समाज हैं और प्रायः सभी में हिन्दी की क्लासेज हैं। मैं बुद्ध की तरह माला पहनकर रह गया। बोल न सकने की कमी उस वक्त मालूम हुई। जनता समझती है कि हिन्दी का एक बड़ा लेखक है जाने क्या-क्या मोती उगलेगा और यहाँ है कि कुछ समझ में नहीं आता क्या कहूँ। खैर। ट्रिप अच्छा रहा। प्रेमी जी भी साथ थे। वे बेचारे भी इसी मरज में मुबतिला हैं।

और क्या लिखूँ, मेरा जीवन यहाँ भी वैसा ही है, जैसा काशी में था। न किसी से दोस्ती न किसी से मुलाकात। मुस्का की दौड़ मस्जिद तक। स्टूडियो

गये घर आ गये। हिन्दी के दो-चार प्रेमी कभी-कभी आ जाते हैं। बस।

भगवती देवी का मेरा आशीर्वाद कहना।

तुम्हारा—
धनपतराय

४५

७ दरियागंज
१ मार्च १९३५

बाबू जी

पत्र का उत्तर देना जान-बूझकर टालता रहा। उसका कारण था। एक जगह से कुछ सुनने की आशा थी और सोचता था वहाँ से पत्र आ जाय तभी आपको लिखूँ। अब सुना है आपकी कम्पनी टूट गयी और अब इस पत्र को यदि पाएँगे भी तो आने की तैयारी में। ऐसी क्या बात हुई यह शायद आप खुलासा लिखेंगे ही। क्या आप बनारस आ रहे हैं? क्या वहाँ से इस ओर आवेंगे? मेरी कल्पना है कि बनारसीदास जी आपको इस ओर मिलेंगे। वह फिर शान्ति निकेतन में उसी तरह का जमाव करने की धुन में हैं। क्या आप जावेंगे।

इस से एक कहानी (एक रात) आपको मिली होगी। जरा लंबी हो गयी। लेकिन गौर से पढ़ें और मुझे अपनी राय लिखें। और वह छपनी भी चाहिए।

आपके पत्र में 'ग्रामोफ़ोन का रेकार्ड' कहानी का जिक्र था। उस स्त्री के खिसकने के चारों ओर जो एक वायव्य और वातावरण कहानी में भर दिया गया है उसमें क्या स्त्री की ओर से Self-deception की गंध आपको बिल्कुल नहीं मिली? उसे वहाँ से बिल्कुल अनुपस्थित करने का मेरा अभिप्राय न था। बल्कि मुझे मालूम होता है वह ध्वनि है। वह ध्वनि न हो तो संपूर्ण रूप नितांत Justified ठहरता है। लेकिन वह मेरा अभिप्राय नहीं है। मेरा तो इष्ट मात्र इतना है कि हम कहानी में उस नारी के स्खलन पर घृणा से न भर जायँ प्रत्युत हमें करुणा हो और वह नारी हमारी सहानुभूति से सर्वथा वंचित न हो जाय। 'विश्वात्मा आदि-आदि' बातों के समावेश की इतनी ही सार्थकता है। कहानी में यह तो स्पष्ट ही है कि नारी में अपराध-चेतना Guilty Conscience हो जाती है। फिर यह Guilty Conscience ही उसे अपने पति के प्रेम और संरक्षण की छाया के नीचे से हटकर चले जाने को लाचार करती है। लेकिन क्या वह अपना अभिमत हृदय बाहर की ओर चलने दे? यह वह नहीं कर सकती इसी से

पति से झगड़ा मोल लेने को उतावली और तत्पर वह दिखायी देती है। मैं समझता हूँ इन मेरी ऊपर की बातों के प्रकाश में वह कहानी आपको यथासंभव का समर्थन करती न जान पड़ेगी जैसी कि इस समय आपको लगी है।

और आप अपने सम्बन्ध में खुलासा लिखियेगा। अभी तक किसी भी भाँति 'हंस' के बारे में वे पुरानी बातें सोचना नहीं छोड़ सका हूँ। मैं अब भी यही सोचता हूँ कि 'हंस' का सम्पादन आप बिलकुल मुझ पर छोड़ दें। एक Organ का बड़ी सख्त जरूरत जान पड़ती है। कहानी महीने में कितना लप सकती है, मुश्किल से तीन। तीन कहानियाँ मेरा कुछ भी समय नहीं भरती और न तीन कहानियों का Production कोई मन म Purpose की भाँति बन पाता है। उस Purpose को सामने पा लें उसी के सहारे कोई बड़ी किताब उपन्यास आदि हाथ में ली जा सकती है अन्यथा खाली खाली-सा लगता है। अभी यों भी जितने हिन्दी म पत्र हैं मन कोई भी नहीं पढ़ता। एक बढ़िया ऊँचा स्टैण्डर्ड पत्र की कमी हिन्दी में खलती ही है।

मैं इधर मध्य मास मे आपकी ओर जरा सैर करने के मंसूबे बनाने में लगा था कि आप ही चल दिए।

बर्मा जायें और माँजी से मिलें तो मेरा प्रणाम कहिएगा और कहिएगा कि जैनेन्द्र को आपका पत्र मिला है और वह साहस संग्रह कर लेगा तब उन्हें उत्तर लिखेगा। पत्र दीजिएगा।

आपका
जैनेन्द्र

४६

प्रयाग,
४ मई १९३५

प्रिय जैनन्द्र

मैं तो इंदौर जाते-जाते रह गया। सबसे वायदे कर लिये थे एक भी पूरा न कर सका। इस उम्मीद स कि तुमसे इंदौर में गपशप होगी तुम्हें खत भी नहीं लिखा। जब पूरा भोजन मिलने की आशा हो तो पानी पी-पीकर क्यों भूख को दुखद बनाया जाय। लेकिन कष्ट तो प्रेमी जी के न आने और कुछ नातेदारियों में जाकर मिलने-मिलाने के कारण सारा प्रोग्राम भ्रष्ट हो गया। अब बुन्नू को चेचक निकल आयी है, और २७ से वह पड़े हुए हैं। हम भी उसके साथ हैं

यात्रा करने के लायक हो जाय तो मात को यहाँ से उसे ले कर चले जायें। चेचक हल्की है। यहीं कुशल है। दाने मुरझा गए हैं। मगर अभी सफर करने में गर्मी लगने से मुमकिन है उनके अच्छे होने में ज्यादा समय लग जाय।

परसों श्री कन्हैयालाल मुंशी के पत्र से मालूम हुआ कि सम्मेलन ने राष्ट्र साहित्य-बोर्ड-निर्माण के संबंध में एक प्रस्ताव पास किया है। यह तो मुश्किल न था मगर उस प्रस्ताव को कार्य रूप देने का भार किस पर सौंपा गया? मुंशी साहब से तुम्हारी क्या बातचीत हुई और कार्यक्रम का क्या ढंग रहेगा? 'हंस' तो इस काम के लिए यहाँ तक तैयार है कि अन्य प्रान्तीय लेखकों से पत्र-व्यवहार करके उनसे हिन्दी में लेख और कहानियाँ लिखवा कर छापे मगर क्या इतना ही उस संस्था को सजीव बनाने के लिए काफी होगा? (विस्तार से) लिखना। मैंने 'भारत' में तुम्हारे भाषण की रिपोर्ट पढ़ी बहुत अच्छी है।

मैंने इरादा किया है कि जून से हंस को और प्रेस को प्रयाग लाऊँ और खुद भी यहीं रहूँ। काशी में न तो काम है और न साहित्यकारों का सहयोग। यहाँ जितने हैं, वह सभी सम्राट हैं कोई कवि-सम्राट कोई आलोचना-सम्राट कोई प्रहसन-सम्राट। यह गौरव तो काशी ही को है कि यहाँ सभी सम्राट मौजूद हैं मगर सम्राटों की सम्राटों से पटेगी? शिष्टाचार की बात और है हार्दिक सहयोग की बात और। मुझे डर लग रहा है कि कहीं तुम भी साल छ महीने में सम्राट हो जाओ तो मेरा काम ही तमाम हो जाय। फिर तुमसे कोई लेख माँगने का साहस भी न कर सकूँ। इसलिए अब प्रयाग आ रहा हूँ जहाँ सम्राट कम हैं।

अगर कोई कहानी भेज सको तो बहुत अच्छा मगर उस आखिरी कहानी की तरह पूरा उपन्यास नहीं।

और क्या लिखूँ। अभी श्री तो नहीं आए थे। हाँ सम्मेलन पर अपने Impressions लिख दो तो 'हंस' में निकाल दूँ। तुम्हारी क्या सलाह है 'हंस' को बिलकुल कहानी पत्र बना दूँ, और आधी अनुवादित और आधी मौलिक कहानियाँ दिया करूँ?

माता जी को मेरा प्रणाम कहना और भगवती को आशीर्वाद।

तुम्हारा—
धनपतराय

४७

७ दरियागंज
७ मई १९३३

बाबू जी

पत्र मिला। कितनी मुद्दत बाद मिला है। इन्दौर में मैंने पहली बात यह पूछी कि आप आये हैं? पता लगा नहीं आये। तब आशा थी। लेकिन प्रेमी जी जो स्टेशन पर ही मिल गये थे बोले — आप आ न सकेंगे तार देना ठिठुक गया। इससे रह गया। अगर मैं जानता कि आप इन्दौर जाने के लिए उद्यत बैठे हैं तो जरूर आपको बुला ही लिया जाता। वहाँ आपका मिलने को बहुत ही जी तरसता रहा।

हाँ मुंशी जी वहाँ मिले थे। बातें भी हुईं। जो आशा था वह तो न हुआ। उसका भी इतिहास है। एक सीधा सादा-सा प्रस्ताव मंजूर हुआ है। कमेटी बनी है जिसमें मुंशी संयोजक हैं। अब सब उन पर है।

काम का क्या ढंग हो। आप आने में कष्ट तो बहुत पड़ता है लेकिन पाँच आदमियों का मिल सभा चाहिए तब काम आगे बढ़ सकता है। गांधी जी मुंशी काकासाहब आप और मैं ये सब लोग वर्धा में हों यथाशीघ्र सुविधानुसार मिल लें लेकिन यह मुंशी पर है। उनका पत्र आया था। लेकिन मैंने इधर उनका जवाब भी नहीं दिया है, अब दूँगा।

यह भी बात हुई थी कि अपना अपना पत्र न निकालकर आपसे 'हंस' ही देने के लिए कहा जाय। मैं समझता हूँ इसमें आपके लिए भी प्रतिकूल कुछ नहीं है। जब तक इस सम्बन्ध में आगे बातें हों आप 'हंस' में विशेष परिवर्तन न कीजिए।

आपकी काशी छोड़ने की बात तो समझ में आती है। साहित्यिक प्रायः का Egotist होता है। इसमें उस बेचारे का दोष उतना क्यों कहिये क्योंकि वह तो Egotism का शिकार होता है। काशी में मैंने यह देख लिया है। पर प्रयाग में भी ऐसा नहीं होगा ऐसी आशा आपको किस बल पर होती है? किन्तु फिर प्रश्न है प्रयाग भी नहीं तो क्या किया जाय। इसका उत्तर मेरे पास नहीं है। दिल्ली — मैं एकाएक नहीं कह सकता क्योंकि कुछ आर्थिक भी सवाल है। इन्दौर में मेरे मन में आया था कि प्रेमी जी का कारोबार भी कुछ Institution की शक्ल में नहीं है न आपका ही तब क्यों न दोनों को मिलाकर एक सम्मिलित (Limited) फर्म की शक्ल में डाल दिया जाये और चलाया जाय। लेकिन यह सब दौड़-धूप के बिना कैसे हो। यह कौन करे? मैं इधर बहुत

Handicapped हो रहा हूँ चलना-फिरना भी सरल नहीं होता। फिर भी यह देखता हूँ कि आगे कोई रास्ता नहीं है। जानता नहीं आप बम्बई से कितना पैसा जमा करके आये हैं। लेकिन जितना भी मुझे दीखता है सब इस कारोबार म ही भुँकेगा।

मैंने प्रवासीलाल जी को लिखा था कि मैटर की जब जरूरत हो वो रोज का नोटिस देकर मुझे लिख दें। सोलह सफे तक की गारण्टी मैंने दी थी। अब मेरा इसमें दोष नहीं है कि वह वसूल न किया जाय। जब क्लर्क पास हो तो मैटर देने मे कठिनाई क्या होनी है। इधर दस दिनों से क्लर्क नहीं था इससे काम सब ठप्प था। अब है तो मैटर की क्या चिन्ता।

कहानी भेज रहा हूँ।

हाँ साहित्य परिषद् (इन्दौर) में मैं बोला था पर 'भारत' म तो भाषण की कचूमर था। लगभग आध घण्टे तो मैं बोला हूँगा। और 'भारत' म जो था उसका तो अर्थ भी कुछ न बनता था हाँ ध्वनि उसम मुझे अवश्य अपनी ही जान पड़ी। जान पड़ता है हास्टइएड की रिपोर्ट उसकी दी गयी है। आप उन्हें लिखिये न कि यदि रिपोर्ट हो तो उसकी प्रति वह आपको भेज दें मैं भी यहाँ से लिखूँगा। यहाँ सम्मेलन के बारे म एक ने Interview ली थी। वह मैं कल या परसों आपको भिजवा दूँगा।

इलाहाबाद में क्या आपने मकान आदि पक्का कर लिया है ? यदि किसी की बात किसी तरह भी व्यवहार्य जान पड़े और सब बन्दोबस्त Shift का न हुआ हो तो उस पर सोचियेगा। मैं आपका बहुत कुछ लगभग सभी कुछ बोझ हलका कर सकता हूँ ऐसा मुझे लगता है।

और आप पत्र देने के बारे में ऐसा प्रमाद न किया कीजिये। इस बीच आपके पत्र न पाने से सच जानिये मुझे बहुत सोच रहा।

बाकी ठीक ही-सा है।

आपका
जैनेन्द्र

४८

सरस्वती प्रेस,
१४ मई १९३६

प्रिय जैनेन्द्र

तुम्हारी कहानी छपा हुआ भाषण और सम्मेलन पर प्रश्नोत्तर सब मिले।

अन्धकार'। पत्र तैयार हो गया है। अगले महीने काम आएँगे।

बम्बई से क्या आया? कुल ६३००) मिले। इसमें १५) लड़कों ने लिये १००) लड़की ने ५ ०) प्रेस ने। इस महीने में बम्बई का काम बड़ी किफ़ायत से भी २५) से कम न हो सका। यहाँ से कुल १४०) लेकर अपना-सा मुँह लिये चले आये। अब ये यहाँ से प्रेस के उठाने में काम हो जायेंगे। प्रयाग में शायद यहाँ से अच्छी तरह काम चले। लेकिन सब के दो-एक सज्जन कुछ मदद करेंगे। एकेडमी से कुछ काम मिल जायगा और बाहर का कुछ काम मिलने की उम्मीद है। अगर यह विचार पूरा हो गया तो यह बला सर से टल गयी। इसके सिवा मुझे तो कोई दूसरा उपाय नहीं सूझता। अगर दो एक साझेदार मिल जायें जो दस-पाँच हजार रुपये लगायें और काम अपने हाथ में ले लें मुझसे केवल ऊपरी सलाह का काम लेते रहें तो और भी अच्छा। यही लिमिटेड ही सही। इन सभी बातों के लिए प्रयाग अच्छा स्थान है। बनारस तो केवल × × × जानता है। अगर ऐसी कोई सूरत निकल आवे तो मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम लोग साथ रहो। अभी तो यह हाल है कि आज प्रेस पर मकान के किराये की नालिश हुई है। १० ०) बाकी है। जिस कार्यालय में मजदूरों की मजदूरी और मकान का किराया भी न निकल सके उसकी हालत का अनुमान कर सकते हो। किस देर है? प्रवासीलाल जी से जो हो सकता है करते हैं। इससे ज्यादा एक आदमी और क्या कर सकता है? अगर वह ज्यादा दौड़-धूप कर सकते तो शायद दशा इतनी खराब न होती। लेकिन जो काम उससे नहीं हो सकता तो शायद उन्हें उसके लिए मजबूर भी तो नहीं किया जा सकता।

मैंने मि० के० एम० मुंशी को पत्र लिखा है। देखो। क्या जवाब देते हैं।

इधर चुन्नू को चेचक निकली थी। उन्हें प्रयाग से यहाँ लाये। यहाँ बन्नू को भी निकल आई और आ दिन से वह पड़ा हुआ है। मैं तो बाहर गया भी नहीं। घर बैठा-बैठा केवल चिट्ठी-पत्र लिख लेता हूँ।

प्रयाग के मुझे कुछ सभाओं की राय है कि हंस केवल कहानियों का पत्र बना दिया जाय। तुम्हारी क्या राय है? इस विषय में शायद हमारी बातचीत हो चुकी है। लेकिन याद नहीं आता कि तुमने क्या राय दी थी।

शेष कुशल है।

तुम्हारा

४९

२ मई १९३५

बाबू जी

पत्र मिला। मैंने तो समझा था कि आपने चिट्ठी लिखी है उससे तुरन्त ही कहानी की जरूरत होगी सो भेज दी थी। डर है वह अगले महीने तक पुरानी न हो जाय क्योंकि बम्बई से छपनेवाले संग्रह में भी उसे भेजा है।

'हंस' कहानियों का ही हो इसमें क्या बुरा है बल्कि एक Specialization की दिशा ही बनेगी लेकिन इतनी अच्छी कहानियाँ मिलेंगी? और तब जब कि 'हंस' की हालत पैसा देने की नहीं है? न 'हंस' स्टाफ ही अच्छा रख सकता है। मेरा तो खयाल है कि मुंशी की स्कीम कुछ बने तो हंस छोड़कर आप छुटिये। छूटना आप झंझट से होगा। क्योंकि तब भी पत्र तो सम्पादन के लिहाज से आपका ही होगा। मुझसे पूछें तो मेरे मन में यह भी है कि कहूँ कि 'हंस' का सम्पादन मुझे दे दें।

इलाहाबाद जा ही रहे हैं तो जाकर देखिये। मुझे तो वहाँ का ज्यादा भरोसा नहीं होता। भारतीय जी को मैं नहीं जानता। अच्छा ही है कि उनसे आपको सहायता मिले। बम्बई से पाये पैसे में से इतना भी बचा कि एक तजुर्बा किया जाय तो क्या बुरा है। वहाँ कहाँ जमने का ठीक किया है।

इस चेचक से मुझे बड़ा डर लगता है। अब बन्नू की क्या हालत है जरूर लिखियेगा। क्या Acute case है? यों तो आठ-आठ रोज में दाने मुरझा जाते और झड़ने लगते हैं, क्या वहाँ Epidemic हो पड़ा था क्या चेचक का?

यहाँ यों सब ठीक-ठाक है। इधर आप मुद्दत से नहीं आये। कभी दो रोज की छुट्टी निकाल सकेंगे कि यहाँ आवें? गर्मी खूब पड़ने लगी है। पहाड़ याद आता है लेकिन जाना कहाँ होता है। अम्माँ जी को मेरा प्रणाम।

आपका
जैनेन्द्र

५०

बनारस
२७ सितम्बर १९३५

प्रिय जैनेन्द्र

तुम्हारा कार्ड मिला। चिन्ता हो रही थी कि क्यों कोई पत्र नहीं आ रहा

है। माता जी बीमार हैं यह तो बुरी खबर है। अब तो तुम वहाँ पहुँच गये। शीघ्र लिखना उनकी तबियत का क्या हाल है।

नमक का रोग तुमने बुरा पाल लिया। दिल्ली के लेखकों को ही मुश्किल पड़ रही है बालकों के लिए कहाँ से प्रबन्ध हो। मेरी आमदनी तो समाचार-पत्रों से प्राय बन्द हो गई। इस महीने में कुल ३५) का काम किया। 'चाँद' में एक कहानी लिखी मगर रुपये वह भी नहीं दे रहे हैं। कहते हैं 'चाँद' की माली हालत खराब है और मैंने कभी कुछ नहीं लिखा। हंस तो अपना है, और अपने तो बैठे हैं ऐसे कभी नहीं।

रुपये के विषय में मैं क्या लिखूँ। तुमने कुछ टेढ़ा-सीधा काम किया भी। मैं तो पाँच महीने में एक पैसा भी न कमा सका। बम्बई से थोड़े से पैसे लाया था वह पाँच महीने में खा गया और कुछ कर्ज चुका दिया। और ऐसा था ही क्या। अब इसी चिन्ता में घुल रहा हूँ कि आगे क्या होगा। 'कर्मभूमि' और 'गबन' दोनों करीब-करीब समाप्त हैं। मुझे कौड़ी न मिली। उन्हें दोबारा छपवाने की चिन्ता असह्य हो रही है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम यहाँ आकर 'काम रथ' को पाक्षिक रूप में निकालो और वह वास्तव में 'जागरण' के नाम को चरितार्थ करे।

मेरा खयाल है बत्तीस पृष्ठों का पाक्षिक पत्र जिसका दाम) हो और तुम्हारे सम्पादकत्व में निकले तो ६ महीने में उसमें कुछ न कुछ निकलने लगेगा। मैंने जो तखमीना किया है उसके हिसाब से प्रति संख्या १०) खर्च पड़ेगा और आमदनी का अनुमान ११) प्रति संख्या है। १ • बचेगा। मगर ६ महीने बाद तो आशा है कि उससे ६) ७) माहवार निकलने लगें। जब प्रचार बढ़ेगा और
२ तक पहुँच जायगा तब तो और भी मिल सकते हैं। मुझे केवल कागज और पोस्टेज खर्च करना पड़ेगा। इतनी आमदनी विज्ञापनों से हो सकती है।

लेकिन अभी तो तुम परेशान हो माता जी अच्छी हो जायें तो इस विषय पर कुछ सोचना पड़ेगा। पत्रों में आमदनी के भरोसे पर तो एकादशी के सिवा और कुछ नहीं है। 'भारत' की दशा अच्छी नहीं है। 'चाँद' का हाल कह ही चुका। अब रहे 'विशाल भारत' 'माधुरी' और 'सरस्वती'। इनमें २) महीना मिलना भी मुश्किल है।

'हंस' शायद परसों तक तैयार हो जाय।

भवदीय

५२

हंस कार्यालय, बनारस।
९ दिसम्बर १९३५

प्रिय जैनेन्द्र

कल तुम्हारा पत्र मिला। मुझे यह शंका पहले ही थी। इस मर्ज से शायद ही कोई बचता है। पहले ऐसी इच्छा थी कि दिल्ली आऊँ लेकिन मेरे दामाद तीन दिन से आये हुए हैं और शायद बेटी आ रही है। फिर यह भी सोचा कि तुम्हें समझाने की तो कोई बात है ही नहीं। यह तो एक दिन होना ही था। हाँ जब यह सोचता हूँ कि वह तुम्हारे लिये क्या थीं और तुम उनके काम में आज भी लड़के से बने फिरते थे तब जी चाहता है तुम्हारे गले मिलकर रोऊँ। उनका वह स्नेह। वह तुम्हारे लिए जो कुछ थीं वह तो थीं ही मगर उनके लिए तो तुम प्राण थे। आँख थे। सब कुछ थे। कितने ही भाग्यवानों को ऐसी माता मिलती है। मैं देख रहा हूँ तुम दुःखी हो और चाहता हूँ यह दुःख आधा-आधा बाँट लूँ अगर तुम दो। मगर तुम दोगे नहीं। इसे तो तुम सारे का सारा अपने सबसे निकट स्थान में सुरक्षित रखोगे।

काम से छुट्टी पाते ही अगर आ सको तो जरूर आ जाओ। मिले बहुत दिन हो गये। मन तो मेरा भी आने को चाहता है, लेकिन मैं आया तो तीसरे दिन रस्सी तुड़ाकर भागूँगा। तुम — मगर अब तो तुम भी मेरे जैसे हो भाई। अब वह बेफिक्री के मजे कहाँ।

और सच पूछो तो मेरी ईर्ष्या ने तुम्हें अनाथ कर दिया। क्यों न ईर्ष्या करता मैं सात वर्ष का था जब माता जी चली गयीं। तुम २७ के होकर माताबाले बने रहे। यह मुझसे कब देखा जाता। अब जैसे हम वैसे तुम। बल्कि मैं तुमसे अच्छा हूँ। मुझे माता की सूरत भी याद नहीं आती। तुम्हारी माता तुम्हारे सामने है और बोलती नहीं मिलती नहीं।

महात्मा जी तो वहाँ होंगे?

और तो सब ठीक है। चतुर्वेदी जी ने कलकत्ते बुलाया था कि आकर नगूची जापानी कवि का भाषण सुन जाओ। यहाँ नोगूची हिन्दू यूनीवर्सिटी आये उनका व्याख्यान भी हो गया मगर मैं न जा सका। धरम की बातें सुनते और पढ़ते उम्र बीत गयी। ईश्वर पर विश्वास नहीं आता कैसे श्रद्धा होती। तुम आस्तिकता की ओर जा रहे हो। जा नहीं रहे पक्के भक्त बन रहे हो। मैं संदेह से पक्का नास्तिक होता जा रहा हूँ।

बेचारी भगवती अकेली हो गयी।

'सुनीता' आगे कहाँ रास्ते में रह गयी। यहाँ कहीं बाजार में भी नहीं। चित्रपट के पुराने अंक उठाकर पढ़े पर मुश्किल से तीन अध्याय मिले। तुमने बड़ा ज़बरदस्त Ideal रख दिया। महात्मा जी के एक साल में स्वराज्य पानेवाले आन्दोलन की तरह। मगर तलवार पर पाँव रखना है।

तुम्हारा
धनपतराय

५२

हंस कार्यालय, बनारस।
२४ दिसम्बर १९३५

प्रिय जैनेन्द्र

'सुनीता' पढ़ गया। आधी दूर तक तो कुछ रस न आया लेकिन पिछला आधा सुन्दर है। नारीत्व का जो आदर्श तुमने रखा है वही उसका आदर्श है। नारी केवल गृहिणी क्यों हो, गृहिणी से अलग भी उसका जीवन है। अगर उसमें गृहिणीत्व से आगे बढ़ने की सामर्थ्य है तो वह क्यों न आगे बढ़े। सुनीता के मन में इस नये क्षेत्र में आने से जो संघर्ष हुआ है वह उसके रक्त में सने हुए गृहिणी जीवन के अनुकूल है। मगर तुम्हारा हरिप्रसन्न अंत में आकर मुझे कुछ × × × होता जान पड़ता है। शायद मुझे भ्रम हो। लेकिन श्रीकान्त से छिपकर यह कृत्य क्यों किया गया? इसमें मुझे नैतिक दुर्बलता का भय होता है। श्रीकान्त की पूरी अनुमति से यह काम किया जा सकता था। श्रीकान्त जैसा उदारचेता मनुष्य सुनीता के इस नये मार्ग में बाधक न होता और होता तो सुनीता को अपने निश्चय पर दृढ़ रहना और उसके नतीजे (बर्दाश्त कर) लेना चाहिए था। हरिप्रसन्न ने सुनीता को Seduce किया कुछ ऐसा साबित होता है। सुनीता ब्रह्मचारिणी बने इसमें कोई हर्ज नहीं, नहीं यह गौरव की बात है। उसके लिए भी और देश के लिए भी। लेकिन हरिप्रसन्न के मन में यह कुत्सित भावना क्यों? ब्रह्मचारिणी के पद से गिराकर उसे व्यभिचारिणी के पद पर क्यों लाना चाहता है? अगर सुनीता विवाहित न होती, अगर वह प्रेम सत्या के साथ निभाता तो कोई बात न थी। लेकिन जब श्रीकान्त और सुनीता में एक समझौता हो चुका है और वह समझौता उन्हें स्वीकार है तो फिर यह व्यवहार क्यों? अगर सुनीता हरिप्रसन्न को जी से चाहती है, तो उसे अपने पति से स्वयं कह देना चाहिए था। यह धोखा और फरेब क्यों? मगर सुनीता कहीं भी हरिप्रसन्न को चाहती नहीं दिखलाती थी। विद्रोह या असंतोष की वहाँ गंध भी नहीं, फिर वह क्यों हरिप्रसन्न के सामने इस तरह

५२

हंस कार्यालय, बनारस।
१ दिसम्बर १९३५

प्रिय जैनेन्द्र

कल तुम्हारा पत्र मिला। मुझे यह शंका पहले ही थी। इस मर्ज से शायद ही कोई बचता है। पहले ऐसी इच्छा थी कि दिल्ली आऊँ लेकिन मेरे दामाद तीन दिन से आये हुए हैं, और शायद बेटी आ रही है। फिर यह भी सोचा कि तुम्हें समझाने की तो कोई बात है ही नहीं। यह तो एक दिन होना ही था। हाँ जब यह सोचता हूँ कि वह तुम्हारे लिये क्या थीं और तुम उनके दामन में आज भी लड़के से बने फिरते थे तब जी चाहता है तुम्हारे गले मिलकर रोऊँ। उनका वह स्नेह। वह तुम्हारे लिए जो कुछ थीं वह तो थीं ही मगर उनके लिए तो तुम प्राण थे। जीवन थे। सब कुछ थे। विरले ही भाग्यवानों को ऐसी माता मिलती है। मैं देख रहा हूँ तुम दुःखी हो और चाहता हूँ यह दुःख आधा-आधा बाँट लूँ मगर तुम दो। मगर तुम दोगे नहीं। इसे तो तुम सारे का सारा अपने सबसे निकट स्थान में सुरक्षित रखोगे।

काम से छुट्टी पाते ही अगर आ सको तो जरूर आ जाओ। मिले बहुत दिन हो गये। मन तो मेरा भी आने को चाहता है, लेकिन मैं आया तो तीसरे दिन रस्सी तुड़ाकर भागूँगा। तुम — मगर अब तो तुम भी मेरे जैसे हो भाई। अब वह बफिक्री के मजे कहाँ!

और सच पूछो तो मेरी ईर्ष्या ने तुम्हें अनाथ कर दिया। क्यों न ईर्ष्या करता मैं सात वर्ष का था जब माता जी चली गयीं। तुम २७ के होकर माँवाले बने रहे। यह मुझसे कब देखा जाता। अब जैसे हम वैसे तुम। बल्कि मैं तुमसे अच्छा हूँ। मुझे माता की सूरत भी याद नहीं आती। तुम्हारी माता तुम्हारे सामने है और बोलती नहीं मिलती नहीं।

महात्मा जी तो वहाँ होंगे?

और तो सब ठीक है। चतुर्वेदी जी ने कलकत्ते बुलाया था कि आकर नोगूची जापानी कवि का भाषण सुन जाओ। यहाँ नोगूची हिन्दू यूनीवर्सिटी आये उनका व्याख्यान भी हो गया मगर मैं न जा सका। अध्यात्म की बातें सुनते और पढ़ते उम्र बीत गयी। ईश्वर पर विश्वास नहीं आता कैसे श्रद्धा होती। तुम आस्तिकता की ओर जा रहे हो। जा नहीं रहे पक्के भक्त बन रहे हो। मैं संदेह से पक्का नास्तिक होता जा रहा हूँ।

बेचारी भगवती अकेली हो गयी।

'सुनीता' आगे कहाँ रास्ते में रह गयी। यहाँ कहीं बाजार में भी नहीं। चित्रपट के पुराने अंक उठाकर पढ़े पर मुश्किल से तीन अध्याय मिले। तुमने बड़ा जबरदस्त Ideal रख दिया। महात्मा जी के एक साल में स्वराज्य पानेवाले आन्दोलन की तरह। मगर तलवार पर पाँव रखना है।

तुम्हारा

धनपतराय

५२

हंस कार्यालय, बनारस।

२४ दिसम्बर १९३५

प्रिय जैनेन्द्र

'सुनीता' पढ़ गया। आधी दूर तक तो कुछ रस न आया लेकिन पिछला आधा सुन्दर है। नारीत्व का जो आदर्श तुमने रखा है वही सच्चा आदर्श है। नारी केवल गृहिणी क्यों हो गृहिणी से अलग भी उसका जीवन है। अगर उसमें गृहिणीत्व से आगे बढ़ने की सामर्थ्य है तो वह क्यों न आगे बढ़े। सुनीता के मन में इस नये क्षेत्र में आने से जो संघर्ष हुआ है वह उसके रक्त में सने हुए गृहिणी जीवन के अनुकूल है। मगर तुम्हारा हरिप्रसन्न अन्त में आकर मुझे कुछ × × × होता जान पड़ता है। शायद मुझे भ्रम हो। लेकिन श्रीकान्त से छिपकर यह कृत्य क्यों किया गया? इसमें मुझे नैतिक दुर्बलता का भय होता है। श्रीकान्त की पूरी अनुमति से यह काम किया जा सकता था। श्रीकान्त जैसा उदारचेता मनुष्य "सुनीता के इस नये मार्ग में बाधक न होता और होता तो सुनीता को अपने निश्चय पर दृढ़ रहना और उसके नतीजे (बर्दाश्त कर) लेना चाहिए था। हरिप्रसन्न ने सुनीता को Seduce किया कुछ ऐसा भासित होता है। सुनीता ब्रह्मचारिणी बने इसमें कोई हर्ज नहीं वहीं यह गौरव की बात है। उसके लिए भी और देश के लिए भी। लेकिन हरिप्रसन्न के मन में यह कुत्सित भावना क्यों? ब्रह्मचारिणी के पद से गिराकर उसे व्यभिचारिणी के पद पर क्यों लाना चाहता है? अगर सुनीता विवाहित न होती अथवा यह प्रेम कन्या के भाव निभाता तो कोई बात न थी। लेकिन जब श्रीकान्त और सुनीता में एक समझौता हो चुका है और वह समझौता उन्हें स्वीकार है तो फिर यह व्यवहार क्यों? अगर सुनीता हरिप्रसन्न को जी से चाहती है, तो उसे अपने पति से स्पष्ट कह देना चाहिए था। यह धोखा और फरेब क्यों? मगर सुनीता कहीं भी हरिप्रसन्न को चाहती नहीं दिखायी देती। विद्रोह या असंतोष की कहीं गंध भी नहीं फिर वह क्यों हरिप्रसन्न के सामने इस तरह

मस्त हो जाती है। क्या हरिप्रसन्न का Personal Magnetism उस पर असर करता है। अगर ऐसा है तो यह भी हरिप्रसन्न की नीचता और लापरवाही है मित्र के साथ दगा है। उस मित्र के साथ जो उसे अपने भाई से भी प्रिय रखता हो? क्रान्तिकारी नीति में विवाह तुच्छ वस्तु हो सकती है। मगर इस सामाजिक (बन्धन) का महत्व क्यों भूल जायें। स्त्री पत्नी रहते हुए भी अभिनेत्री बन सकती है, और अगर पति दुराचार करे तो उसे ठोकर मार सकती है। लेकिन इस तरह एक युवक के पंजे में फँस जाना न उस क्रांतिकारी युवक को शोभा देता है न नारी को।

अगर मेरे समझने में गलती हो तो सुधार देना।

मेरे 'कर्मभूमि' का उर्दू एडिशन जामिया मिल्लिया ने निकाला है।

हो सके तो काशी नम्बर 'हंस' के लिए कुछ लिखना।

तुम्हारा
धनपतराय

५३

हंस कार्यालय
बनारस कैंट
१ जून १९३६

प्रिय जैनेन्द्र

तुम दिल्ली कब पहुँच गये? मैं तो समझ रहा था अभी चिरगाँव में ही हो। हाँ वह राष्ट्रभाषावाला कटिंग था तो मगर न जाने कहाँ रह गया। मिल नहीं रहा है।

'गोदान' निकल गया। जल्द तुम्हारे पास आयगा। खूब मोटा हो गया है ६० से (ऊपर) गया। अपना विचार लिखना।

परिषद् तो साबिक दस्तूर (सिमट) रहा है। परिषद् का निर्माण हो जाने से इसमें कुछ नया जीवन तो आया नहीं।

आजकल 'हंस' में २५०) महीने की कमी पड़ रही है। १००) का खर्च और १५) की आमदनी। सोचा था काका साहब के आने से इसकी दशा सँभलेगी मगर अभी तो कोई फल नहीं हुआ। आज जून की संख्या निकल गयी कल भेजी जायगी।

हाँ सीरियल माफिक शौक से लिखो। मुझे डर नहीं है कि 'हंस' की माली

हालत खराब है। खैर। लिखना शुरू करो। कुछ न कुछ करना चाहिए। बेकार बैठने से कैसे काम चलेगा। मैं ऐसा करूँगा कि दो हजार हर महीने छापता जाऊँ। इस तरह (सबके) प्रकाशन में सुविधा हो जायगी। पुस्तक बहुत कम खर्च में तैयार हो जायगी। हाँ यह चाहता हूँ कि मंत्री जी का उपन्यास खत्म हो जाय तो शुरू करो।

तुम्हारा
धनपतराय

५४

बनारस कैंट
२२ जून १९३५

प्रिय जैनेन्द्र

यह अंक तो अगस्त में जायगा। घर में आया और हिन्दी के चारों अंक भर गये। राष्ट्रभाषावाला लेख क्या कोई प्रिंट था? आज नहीं आ रहा है तब आया। यहाँ तो मिलता ही नहीं।

'हंस' का पैसेवाला भार कम्पनी पर है मुझ पर नहीं। हाँ कम्पनी इसके खर्च से × × × हुई है। ४ जुलाई को वर्धा में भारतीय परिषद् की कार्य कमेटी की बैठक है। इसमें फैसला किया जायगा कि 'हंस' का क्या किया जाय। शायद मैं भी जाऊँ। आज भी बम्बई में काका और मुंशी बैठे कुछ सलाह कर रहे हैं। मुझे तार दिया था लेकिन अभी बम्बई जाता और फिर वर्धा। वर्धा जाना ही मुश्किल हो रहा है। तबीयत भी अच्छी नहीं है।

[illegible] का यह (रोग) किसी तरह दूर हो जाय तो क्या कहना। काम मिलने-मिलाने का है और यहाँ किसी को फुरसत नहीं। जब तक कोई एक आदमी पीछे न पड़ जाय तो जीवन कहाँ से आये।

आज 'गोदान' भेज रहा हूँ। पढ़ना और अच्छा लगे तो कहीं 'अर्जुन' या 'विशाल भारत' या 'हंस' में आलोचना करना। अच्छा न लगे तो मुझे लिख देना आलोचना मत लिखना ...

५५

बनारस,
५ जुलाई १९३५

प्रिय जैनेन्द्र

'सुनीता' मैं छापूँगा। जिस वक्त तुम यहाँ आओगे टाइप कराके काम चालि

का निश्चय किया जायगा।

४ को वर्धा में भारतीय साहित्य परिषद् की मीटिंग है। हंस लिमिटेड हंस को परिषद् के हाथ सौंपेगा। छपाई आदि का प्रबन्ध काका खुद करेंगे मेरा केवल नाम रहेगा सम्पादकों में। यहाँ छापने में उन लोगों के विचार से खर्च ज्यादा पड़ता है।

अब तक कम्पनी ने मुझे कुल १४) दिये हैं। मगर मुझे झंझट से निजात मिल जायगी।

(लोपामुद्रा) समाप्त हो गई। अगस्त में तुम्हारा उपन्यास जा सकता है। मुंशी को एक पत्र लिख दो। अगर 'हंस' यहाँ रहा तो कोई बात नहीं लेकिन वहाँ गया तो वे लोग फैसला करेंगे। मैं तो जनवरी से एक और पत्र निकालूँगा। तुम आओगे तो सारी बात तय होंगी। भगवती को साथ लाना। मैं १५ दिन से दस्तों में मुब्तिला हूँ।

तुम्हारा
धनपतराय

५६

बनारस
१६ अगस्त १९३३

प्रिय जैनेन्द्र

कहानियाँ और पत्र ठीक-ठीक पहुँच गये। धन्यवाद। ठाकुर श्रीनाथ सिंह की कहानी प्राणरक्षा कुतूहलपूर्ण थी और अत्युक्तियों से भरी हुई। मैंने हंस में एक टिप्पणी दी है। यह लोग सस्ती ख्याति के पीछे पड़े हैं और समसमीक्षक पर कालिमा उसके लिए राजमार्ग है। मुझे उम्मीद है कि श्रीनाथ सिंह इस शरारत को दोहराएँगे नहीं।

मुझे यह जानकर अफसोस हुआ कि तुम्हारे मामले काफी परेशान कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि रंगभूमि का कारबार ठीक से नहीं चला। साहित्यिक उद्योग से तुम आशा भी और क्या कर सकते थे? हर जगह वही पुरानी कहानी है। लेखकों की स्थिति इतनी निराशाजनक है कि भविष्य की बात सोचकर कलेजा थाम लेना पड़ता है। तुम मुझसे जागरण बन्द करने को कहते हो। एक से ज्यादा मरतबा उसके बारे में सोच चुका हूँ। लेकिन चूँकि मैं उस पत्र पर करीब तीन हजार का घाटा उठा चुका हूँ उसे बन्द कर देने में मुझे कठिनाई हो रही है।

साहित्य सृष्टि अनिश्चित-सी चीज है। उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अलावा इसके उसके लिए मानसिक शान्ति और वातावरण की शान्ति अपेक्षित है जो कि वर्तमान स्थितियों में हाथ नहीं आती। प्रेस को चलाना ही पड़ेगा। मैंने अपने भाई का रुपया उसमें लगा दिया है और अपनी जिम्मेदारियों से अब नहीं बच सकता। यहाँ पर काम बहुत कम है। थोड़ा-बहुत जो है वह ज्यादा सस्ते प्रेस हथिया लेते हैं। प्रेस का काम देता है। जागरण से औसतन करीब चार सौ रुपये वसूल होते हैं। इसका मतलब है कि उससे प्रेस का खर्चा निकल जाता है। जागरण में जो कागज इस्तेमाल होता है उसकी कीमत लगभग डेढ़ सौ रुपये होती है। यह रकम हर महीने हंस से और किताबों की बिक्री से पूरी करनी पड़ती है। बिक्री अगर संतोषजनक होती तो सब ठीक-ठीक रहता। हमने 'फाँसी' 'अपराजिता' 'बिखरे फूल' और 'प्रेम की वेदी' छापी है। अब हम 'प्रतिज्ञा' छाप रहे हैं और उसके खतम होते ही 'कायाकल्प' शुरू करेंगे। इस तरह तुम देखोगे कि जहाँ तक कमाने की बात है हम घाटे में काम कर रहे हैं। लेकिन रुपये का सम्पूर्ण अभाव है। कोई भी किताब नहीं बिक रही है मेरे एक-दो संग्रह जो स्कूलों में मंजूर हैं वही किसी तरह स्थिति को सम्हाले हुए हैं। कर्मभूमि भी काफी अच्छी बिक रही है। जागरण बड़े मजे में मुनाफे की चीज हो सकती है अगर मैं धीरज के साथ उसमें लगा रह सकूँ। उससे अगर मुझे महीने में सौ रुपये की भी आमदनी हो जाय तो मैं सन्तुष्ट हूँ। मुझे उम्मीद है कि दूसरे वर्ष के अन्त तक वह मेरे लिए बोझ न रह जायगा।

'कायाकल्प' के खत्म होते ही मैं तुम्हारे सैरसीन हाथ में लूँगा। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी सब रचनाएँ प्रकाशित करूँ और तुमको तुम्हारी छोटी-मोटी चिन्ताओं से मुक्त कर दूँ।

तुमने 'माया' का अनुवाद शुरू किया है, बहुत अच्छी बात है। विश्व का नग्न इतिहास समाप्त हो गया है। अब मैं फिर अपना 'गोदान' उठाऊँगा।

मुझे उम्मीद है कि मैं बहुत जल्द ही तुमको कुछ भेजूँगा। जहाँ तक महावीर की बात है अगर तुम सोचते हो कि वह अच्छा सेल्समैन हो सकता है और अच्छा बिजनेस ला सकता है तो मुझे उसको अपने पास रखकर खुशी होगी। मेज पर बैठकर करने लायक कोई काम नहीं है। उसको बिहार, राजपूताना आदि का दौरा करना पड़ेगा। अगर वह अच्छा काम करता है तो कोई वजह नहीं है कि वह क्यों हमारा स्थायी सेल्समैन न बने। शुरू में मैं उसके कमीशन के लिए छूट देने को तैयार हूँ और करीब छः महीने तक का दाम उसको दूँगा। अगर वह महीने में दो सौ रुपये की बिक्री कर सके या हंस और जागरण के

बीस-बीस ग्राहक ला सके और एक सौ रुपये की किताबें बेच सके तो उसकी तनख्वाह और सफर खर्च निकल आयेगा और वह एक कमाऊ आदमी साबित होगा बोझ नहीं बनेगा। अगर तुम सन्तुष्ट हो कि वह इतना सब कर सकता है तो तुम उसको मेरे पास भेज दो या रखे रहो जब तक कि मैं तुमको रुपया नहीं भेजता।

तुम मेरी कुछ मदद क्यों नहीं करते ? साप्ताहिक पत्र को मुनाफे की चीज बनाया जा सकता है और अब भी एक-दो ऐसे पत्र हैं। अगर हम और भी अच्छी सामग्री दे सकें और विज्ञापन हासिल करने के लिए अपना कुछ जोर लगा सकें तो हम अपने प्रकाशनों को आगे बढ़ा सकते हैं और फिर प्रकाशकों की टोह में जाने की जरूरत न होगी। दुनिया बेधड़क उत्साही लोगों के लिए बनी है जो अपने मौकों का अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं। तुम रोजमर्रा की चीजों पर टिप्पणियों के रूप में कालम दो कालम बड़े मजे में लिख सकते हो। बड़े अफसोस की बात है कि इतना सब दिमाग रखकर भी हम एक साप्ताहिक को कामयाबी के साथ नहीं चला सकते। तुम मिस्टर बिरला से मिलो और उनको हम लोगों के काम का महत्व समझाओ और बतलाओ कि हम कैसी-कैसी परेशानियाँ उठाते हैं। वह एक बड़े विज्ञापनदाता हैं। वह अपनी कपड़े की मिलों जूट केट उद्योग और बीमे के व्यवसाय का विज्ञापन करते हैं। हमको भी अपना संरक्षण वह क्यों नहीं दे सकते ? अगर तुम सोचते हो कि सुख-सुविधा और धन-सम्पत्ति अपने आप आ जायगी और लक्ष्मी तुम्हारी प्रतिभा के कारण तुम पर इतनी रीझ जायेगी कि आकर तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ेगी तो तुम धोखे में हो। या तो संन्यासी हो जाओ और सांसारिक अभिलाषाएँ त्याग दो। गृहस्थ होकर जब कि एक परिवार का बोझ हमारे कंधों पर है हमें कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। जब मेरे जैसा एक टूटा-फूटा बुड्ढा आदमी जिसके सर पर भार कि तुमसे ज्यादा बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं अकेले दम इतना सब कर सकता है तो फिर तुम्हारे जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति तो चमत्कार कर सकता है।

शुभकामनाएँ लो। हम सब कुशलपूर्वक हैं।

सस्नेह —

तुम्हारा

धनपतराय

बनारसीदास चतुर्वेदी

५७

विशाल भारत कार्यालय
९१ अपर सरकुलर रोड कलकत्ता
२८ मई १९२८

श्रीमान् प्रेमचन्द जी

सादर वन्दे।

'माडर्न रिव्यू' के जून के अंक में जो दो तीन दिन बाद निकल जायेगा आपकी कहानी छप गयी है। हार्दिक बधाई देता हूँ। मुझे इससे उतना ही हर्ष हुआ है जितना अपनी ही किसी रचना के प्रकाशित होने से होता।

कहानी की भाषा को ठीक कराने के लिए मुझे मि० ऐण्ड्रूज को कष्ट देना पड़ा था यद्यपि करेक्शन उन्हें थोड़े ही करने पड़े। पर उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और बड़ी प्रसन्नतापूर्वक यह काम कर दिया। श्री रामानन्द बाबू से भी मैंने यह कह दिया था कि यदि वे ठीक समझें तो छाप दें नहीं तो मुझे वापिस दे दें। पहले उनका सन्देश आया था 'प्रेमचन्द जी की सर्वोत्तम कहानी हम पहले छापना चाहते हैं और यह कहानी अपने योग्य होने पर भी प्रेमचन्द की कीर्ति के प्रति न्याय नहीं करती। इस पर मैंने यही कहला भेजा कि आप इसे न छापिये दूसरी मैं चुनकर भिजवाऊँगा। रामानन्द बाबू के सुयोग्य पुत्र अशोक चटर्जी ने जो केम्ब्रिज के बी० ए० हैं मुझसे कहा है कि मैं स्वयं आपकी गल्प का अनुवाद करूँ और वे (अशोक बाबू) उसे ठीक कर लेंगे। पर मुझे आपकी कहानियों का अनुवाद करने की हिम्मत नहीं पड़ती क्योंकि जैसी बढ़िया हिन्दी आप लिखते हैं मैं उतनी तो क्या उसका दसवाँ हिस्सा अच्छी अंग्रेजी नहीं लिख सकता।

कृपया एक काम कीजिए। 'नवनिधि' इत्यादि कहानियों की अपनी सभी पुस्तकें मुझे भेज दीजिए। श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह जी का पता भी बतलाइये।

श्री रामानन्द बाबू अशोक बाबू 'प्रवासी' के उप-सम्पादकगण इत्यादि सभी सज्जन आपकी रचनाओं को पढ़ने के लिए उत्सुक हैं और मेरी सम्मति में 'बेस्ट स्टोरीज' का पहले अनुवाद होना चाहिए। इसीलिए मैंने रामानन्द बाबू से

कहला भेजा था कि उसे आप पहले न छापें पर फिर उन्होंने स्वयं ही छाप दी। यह भी एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। मैं यह नहीं चाहता था कि मेरी सिफारिश से आपकी रचना छपे। You don t stand in need of my recommendation

मुझे अत्यन्त खेद होता यदि वे केवल इसी कारण से कि मैं कह रहा हूं आपकी कहानी छापते।

मैं उस दिन का स्वप्न देख रहा हूं जब कि किसी हिन्दी गल्प लेखक की कहानियों का अनुवाद रशियन जर्मन फ्रेंच इत्यादि भाषाओं में होगा। यदि आप ही को यह गौरव प्राप्त हो तब तो बात ही क्या है। मेरे हृदय में आपके प्रति श्रद्धा इसलिए है कि आप दूसरी भाषाओं को कुछ देकर हिन्दी का माथा ऊंचा कर सकते हैं। बंगला इत्यादि से दान लेते-लेते हमारा गौरव अब नहीं रहा।

आशा है कि आप सकुशल हैं।

भवदीय

बनारसीदास चतुर्वेदी

श्री सुदर्शन जी के विषय में लिखूंगा।

अकेला होने से काम करते-करते तंग आ जाता हूं।

मि० एण्ड्रूज ने मुझसे कहा था कि प्रेमचन्द जी को लिख भेजना कि अंग्रेजी में उनकी गल्प के अनुवाद के प्रकाशित होने पर मैं उनका अभिवादन करता हूं। वे विलायत चले गये हैं।

आप स्वयं अपनी किसी ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली गल्प का अंग्रेजी अनुवाद क्यों न भेजें।

५८

११ अपर सरकुलर रोड कलकत्ता

१७ अक्टूबर १९२८

प्रिय प्रेमचन्द जी

पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। मैं बीस तारीख को घर जा रहा हूं और आपको सूचना दूंगा कि हमारी मुलाकात का सबसे अच्छा तरीका क्या होगा। लौटते वक्त मैं इलाहाबाद में रुकने का इरादा रखता हूं इसलिए शायद मेरा लखनऊ आना मुमकिन न हो पर मैं कोशिश करूंगा।

मैं सुन्दरलाल जी को एक दिन के लिये फीरोजाबाद आने को कह रहा हूं। वे आपकी रचनाओं के बहुत बड़े प्रशंसक हैं और आपके असाम्प्रदायिक

विचारों को विशेष रूप से पसंद करते हैं। आपने देखा होगा कि मैंने अपने पत्र में एक भी चीज साम्प्रदायिकता के समर्थन में नहीं छापी। इतना ही नहीं मैं बहुत बार उसकी तीव्र आलोचना कर चुका हूँ। पहले अंक में ही मैंने लिखा था कि साम्प्रदायिकता एक ऐसा पाप है जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। मुझे बड़ी खुशी है कि इस प्रश्न पर हम दोनों बिलकुल सहमत हैं। सुन्दरलाल जी के विचार तो इस प्रश्न पर और भी दृढ़ हैं। अगर वे फ़ीरोज़ाबाद आना मंजूर कर लेते हैं तो मैं आपसे भी आने की प्रार्थना करूँगा और अगर आप नहीं आ सकते तो फिर मैं लखनऊ आने की कोशिश करूँगा।

हमारे जनवरी के स्वराज्यांक के लिये आपको एक कहानी लिखनी होगी। कृपया उसे महीने भर के अंदर भेज दें। प्रेमाश्रम के ढंग की कोई चीज बहुत अच्छी रहेगी। लेकिन मैं अपनी बात आपके ऊपर लादना नहीं चाहता। आप कलाकार हैं और जो मन चाहे लिखने के लिये आपको स्वतंत्र छोड़ना ही ठीक है। ताराचंद राय को आपकी कहानी 'मंत्र' बहुत अच्छी लगी पर उनका ख़याल है कि कहानी 'एक विलम तमाखू का भी रवादार न हुआ' के साथ ख़त्म हो जाना चाहिये थी और मैं उनसे सहमत हूँ। आप क्या चेखोव या दूसरे किसी लेखक की कुछ कहानियाँ अनुवाद के लिये सुझायेंगे। तुर्गनेव का 'मूमू' हम लोग इस अंक में छाप रहे हैं।

आपका

बनारसी दास

गुप्त जी पर निगम का लेख जिसकी आपने सिफ़ारिश की थी सचमुच बहुत सुन्दर है—जितने लेख उनके बारे में लिखे गये हैं सबसे अच्छा।

क्या आप कुछ उर्दू या हिन्दी लेखकों या कवियों के संस्मरण लिखने की कृपा करेंगे?

५६

विशाल भारत कार्यालय

९१ अपर सरकुलर रोड कलकत्ता

१० जून १९२८

प्रिय प्रेमचंद जी

कृपया अपनी सब पुस्तकें—मेरा मतलब उपन्यासों और कहानियों से है—

मेरे मित्र—

Mr Tarachand Roy
Professor of Hindi
Berlin University
Hohenzollerndamm 161 b
Berlin — Wilmersdorf
Germany

को भेज दें।

मिस्टर राय को जर्मन भाषा पर अद्भुत अधिकार है। यहाँ पर मैं इतना और जोड़ दूँ कि टैगोर की संपूर्ण जर्मनी भाषा में वही उनके दुभाषिये थे। मिस्टर राय हमारे सर्वश्रेष्ठ लेखकों की कहानियों का अनुवाद करना चाहते हैं और मैं उनसे कह रहा हूँ कि आप ही से शुरू करें। आपकी कहानियों को जर्मन में देख कर मुझे कितनी खुशी होगी जो मैं उस भाषा का एक शब्द भी नहीं जानता। मिस्टर राय को आप के एक संक्षिप्त जीवन-वृत्त की भी जरूरत होगी। प्रोफेसर गौवर्धाना मुझको अच्छा नहीं लगता। उसमें आत्मीयता नहीं है। क्या आप मुझे अपने जीवन के बारे में कुछ नोटस देने की कृपा करेंगे? अपने मौलवी साहब के कमरे से शुरू कीजिये—वही मौलवी जिन्हें आप इतना प्यार करते थे। मैं कुछ निजी ढंग की छोटी-मोटी घटनाएँ चाहता हूँ। मैं बहुत से लेखकों से ज्यादा अच्छा स्केच लिख सकता हूँ क्योंकि मुझे यह काम पसंद है। आपके बारे में मैंने कुछ बातें टीप रखी थीं लेकिन वह कहीं इधर उधर हो गयी है। इसलिये आपको मुझे पूरे नोट्स देने पड़ेंगे। मिस्टर धीड ने विद्वान आलोचक की तरह लिखा है। मेरे पास उनकी विद्वत्ता नहीं है। मैं आपको आदमी के रूप में जानना चाहता हूँ। कृपया मुझे अपना एक अच्छा चित्र भेज दें। अगर आपके पास अपनी कहानी पुस्तकों और उपन्यासों की अतिरिक्त प्रतियाँ हों तो कृपया मुझे सबकी एक-एक प्रति भेज दें। रंगभूमि आपने मुझे लखनऊ में दी थी।

मैं १९१५ से ही आपकी कहानियों का एक तुच्छ प्रशंसक रहा हूँ। उस समय मैं डीएम कालेज इंदौर में छः साल से अध्यापक था और मैंने आपकी एक पुस्तक 'नवनिधि' पाठ्यक्रम में रखी थी। मिस्टर राय ने मुझको लिखा है कि अब तक किसी हिन्दी पुस्तक का अनुवाद जर्मन भाषा में नहीं हुआ। लिहाजा आपकी कहानियाँ पहली चीज होंगी। है न और की बात? मैं आपकी कहानियों को जर्मन में देखने के लिये अधीर हो रहा हूँ। उन्हें देख कर किसी को उतनी खुशी न होगी जितनी कि मुझे।

आपका तुच्छ प्रशंसक
बनारसी दास चतुर्वेदी

आपको मेरा आखिरी खत मिला ? मोहन सिंह का लेख अब तक नहीं निकला।

६०

विशाल भारत कार्यालय
१२।२ अपर सरकुलर रोड कलकत्ता
१३ नवम्बर १९३९

प्रिय प्रभाकर जी

प्रणाम। घासलेट साहित्य के विरुद्ध जो आन्दोलन मैं कर रहा था उसकी मैंने अब इतिश्री कर दी है और अन्तिम लेख 'घासलेट-विरोधी आन्दोलन का उपसंहार' विशाल भारत में लिख रहा हूँ। इस अवसर पर मैं आपकी सम्मति इस आन्दोलन के विषय में चाहता हूँ। मैंने सुना था कि आपने 'भारत' में मेरे समर्थन में एक चिट्ठी लिखी थी। क्या उसकी प्रतिलिपि आपके पास है ? मैंने रस थोड़ी थी पर वह का र्व।

श्रीयुत सुन्दरलाल जी से मैं अभी प्रयाग में मिला था। उन्होंने मुझसे कहा तुमने इस गन्दे साहित्य के विरुद्ध आन्दोलन उठाकर सचमुच बहुत अच्छा काम किया। किसी न किसी को यह काम करना ही चाहिए था। यद्यपि इससे प्रारम्भ में घासलेटी लेखकों को कुछ विज्ञापन अवश्य मिला फिर भी यह काम बहुत आवश्यक था।

मेरा विश्वास है कि आपकी इस आन्दोलन में मेरे साथ सहानुभूति थी। साहित्यिक दृष्टि से घासलेटी साहित्य सचमुच अत्यन्त भयंकर है। मुझे खेद है कि 'प्रताप तथा 'कर्मवीर' जैसे राष्ट्रीय पत्रों ने इस आन्दोलन को बिलकुल ignore किया। कृपया विस्तार पूर्वक अपनी सम्मति इस विषय में भेजिये। मैं उसे अपने लेख में उद्धृत करूंगा।

विनीत
बनारसीदास चतुर्वेदी

६२

१०२।२ अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता
११ मई १९१०

प्रिय प्रभाकर जी

प्रणाम। कृपापत्र अभी मिला। मैं आपकी कठिनाइयों से भलीभांति

इस पत्र संबंधी न

परिचित हूँ। इसलिये बुरा नहीं मानता। जब कभी आपको अवकाश मिले विशाल भारत के लिए कोई कहानी लिखिये।

सुन्दरलाल जी वाला स्केच आपको पसन्द आया यह पढ़कर मुझे हर्ष हुआ। मेरा उनका साक्षात् परिचय तो सन् १९१८ में हुआ था पर वैसे अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने उनके 'कर्मयोगी' से बहुत लाभ उठाया था। मेरे ऊपर उनकी बड़ी कृपा है बल्कि यों कहना चाहिए कि उन्हीं का भेजा हुआ मैं आज यहाँ 'विशाल भारत' में काम कर रहा हूँ।

आपके पत्र के विषय में क्या लिखूँ। अंक आते ही आफिस के अन्य मित्र पढ़ने के लिए ले गये और मुझे अभी तक नहीं मिला। अब पढ़कर अवश्य लिखूँगा।

'हंस' के लिए अवकाश मिलने पर जरूर कुछ लिखना चाहता हूँ लेकिन एक शर्त पर, वह यह कि आप अपना चित्र मुझे भेज दें और किसी से biographical notes लिखवा दें। साथ ही इन प्रश्नों के उत्तर भी दें। मैं किसी अंग्रेजी पत्र (सम्भवत लीडर) में आप पर कुछ लिखना चाहता हूँ।

१—आपने गल्प लिखना कब प्रारम्भ किया?

२—अपनी कौन-कौन सी गल्प आपको सर्वोत्तम लगती है?

३—आपकी लेख-शैली पर देशी या विदेशी किन-किन गल्प लेखकों की रचना का प्रभाव पड़ा है?

४—आपको अपने ग्रन्थों व रचनाओं से क्या मासिक आय हो जाती है?

५—हिन्दी में गल्प-साहित्य की वर्तमान प्रगति के विषय में आपके क्या विचार हैं?

६—आपकी रचनाओं का अनुवाद किन-किन भाषाओं में हुआ है?

७—आपकी आकांक्षाएँ क्या-क्या हैं?

मैं एक बार आपकी गल्प पढ़ जाना चाहता हूँ और फिर उसके विषय में अपनी ओर से कुछ लिखना चाहता हूँ। इन प्रश्नों का उत्तर जरा विस्तार पूर्वक चिट्ठी के रूप में मुझे दीजिये। मैं प्रतीक्षा करूँगा। उत्तर आने पर मैं 'हंस' के लिए कोई लेख आपकी सेवा में भेजने का प्रयत्न करूँगा। शर्त मैंने इसलिए रक्खी है कि आपसे चित्र माँगते-माँगते वर्षों बीत गये पर आपने अभी तक न भेजा, इसलिए हताश होकर [illegible] पर उतर आया हूँ।

कृपा बनी रहे

विनीत

बनारसीदास चतुर्वेदी

पुनश्च

एक अपना अच्छा चित्र आप 'विशाल भारत' के लिए specially खिंचवा दीजिए और उसका बिल मेरे नाम भेज दीजिए। चित्र की तीन प्रतियाँ भेजिये। यह arrangement ठीक रहेगा 'कमल' के २६ रु० वि० भा० से मिलवा दूँगा। तकाजा कर रहा हूँ।

६२

सरस्वती प्रेस काशी

३ जून १९३२

प्रिय भाई साहब वंदे।

आप का पत्र कई दिनों से आया हुआ है। पहले तो कई बरातों में जाना पड़ा फिर नैनीताल जाने की ज़रूरत पड़ गयी। पहली तारीख को वहाँ से आया तो यहाँ कांग्रेस की उलझनों में पड़ा रहा। शहर पर फौज का कब्ज़ा है। अमीनाबाद में दोनों पार्कों में सिपाही और गोरे डेरे डाले पड़े हुए हैं। १४४ धारा लगा हुई है पुलिस लोगों को गिरफ्तार कर रही है और कांग्रेस तो १४४ धारा तोड़ने की फ़िक्र में है। इस नई पालिसी ने लोगों की हिम्मत तोड़ दी है।

आप मुझसे मेरा चित्र माँगते हैं। एक चित्र कुछ दिन हुए खिंचवाया था। वह लाहौर भेज दिया। वहाँ से ब्लाक मँगवाकर कहानियों के एक संग्रह 'पाँच फूल' में छापा। उसी की एक प्रति फाड़कर भेज रहा हूँ। अगर इससे काम चल जाय तो क्यों नई तसवीर खिंचवाऊँ। मैं तो समझता हूँ यह काफ़ी अच्छी है। अगर ज़रूरत होगी तो इसका ब्लाक भेज दूँगा हालाँकि ठीक नहीं कह सकता ब्लाक प्रेस में है या नहीं क्योंकि 'जोश्वा' ने माँगा था। अगर वहाँ चला गया होगा तो वहाँ से आने पर भेज दूँगा। हाँ अगर बिलकुल नई तसवीर दरकार हो तो मुझे तुरन्त लिखिए, खिंचवाकर भेज दूँ।

मेरे विषय में आपने जो प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर यों है—

१—मैंने १९०७ में गल्प लिखना शुरू किया। सब से पहले १९०८ में मेरा 'सोज़े वतन' जो पाँच कहानियों का संग्रह है ज़माना प्रेस से निकला था पर उसे हमीरपुर के कलेक्टर ने मुझसे लेकर जला डाला था। उनके ख़याल में वह विद्रोहात्मक था हालाँकि तब से उसका अनुवाद कई संग्रहों और पत्रिकाओं में निकल चुका है।

२—इस प्रश्न का जवाब देना कठिन है। दो सौ से ऊपर गल्पों में कहाँ

तक चुनूँ लेकिन स्मृति से काम लेकर लिखता हूँ—

१—बड़े घर की बेटी २—रानी सारन्धा ३—नमक का दरोगा ४—सौत ५—आभूषण ६—प्रायश्चित ७—कामना तरु ८—मन्दिर और मसजिद ९—घासवाली १०—महातीर्थ ११—सत्याग्रह १२—लांछन १३—सती १४—लैला १५—मन्त्र।

'मंजिले मकसूद' नामक उर्दू कहानी बहुत सुन्दर है। कितने ही मुसलमान मित्रों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है, पर अभी तक उसका अनुवाद नहीं हो सका। अनुवाद से भाषा-सारल्य गायब हो जायगा।

३—मेरे ऊपर किसी विशेष लेखक की शैली का प्रभाव नहीं पड़ा। बहुत कुछ पं० रतननाथ दर सरशार और कुछ डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर का असर पड़ा है।

४—आय की बात न पूछिए। पहले की सब किताबों का अधिकार प्रकाशकों को दे दिया। प्रेम पचीसी सेवासदन सप्त सरोज प्रेमाश्रम संग्राम आदि के लिए एकमुश्त तीन हजार रुपये हिन्दी पुस्तक एजेंसी ने दिया। नवनिधि के लिए शायद अब तक दो सौ रुपये मिले हैं। रंगभूमि के लिए अट्ठारह सौ रुपये दुलारेलाल ने दिये। और संग्रहों के लिए सौ दो सौ मिल गये। कायाकल्प आजाद-कथा प्रेमतीर्थ प्रेमप्रतिमा प्रतिज्ञा मैंने खुद छापा पर अभी तक मुश्किल से १( ) रुपये वसूल हुए हैं। और प्रतियाँ पड़ी हुई हैं। फुटकर मासिकों में लेखों से शायद २५ रुपये माहवार हो जाती हो। मगर इतनी भी नहीं होती। मैं अब 'हंस' और 'माधुरी' के सिवा कहीं लिखता ही नहीं। कभी-कभी 'विशाल भारत' और 'सरस्वती' में लिखता हूँ। बस हाँ अनुवादों से भी अब तक शायद दो हजार से अधिक न मिला होगा। आठ सौ रुपये में रंगभूमि और प्रेमाश्रम दोनों का अनुवाद दे दिया था। कोई छापनेवाला ही न मिलता था।

५—हिन्दी में गल्प साहित्य अभी अत्यन्त प्रारम्भिक दशा में है। कहानी लिखनेवालों में सुदर्शन कौशिक जैनेन्द्र कुमार, उग्र प्रसाद राजेश्वरी प्रसाद नजर आते हैं। मुझे जैनेन्द्र और उग्र में मौलिकता और माधुर्य के चिह्न मिलते हैं। प्रसाद जी की कहानियाँ भावात्मक होती हैं realistic नहीं। राजेश्वरी अच्छा लिखते हैं मगर बहुत कम। सुदर्शन जी की रचनाएँ सुन्दर होती हैं पर गहराई नहीं होती और कौशिक जी अक्सर बात को बेजरूरत बढ़ा देते हैं। किसी ने अभी तक समाज के किसी विशेष अंग का विशेषरूप से अध्ययन नहीं किया। उग्र ने किया मगर बहुत कम। मैंने कृषक समाज को लिया मगर अभी कितने ही ऐसे समाज पड़े हैं जिनपर रोशनी डालने की जरूरत है। साधुओं के समाज को

किसी ने स्पष्ट तक नहीं किया। हमारे यहाँ कल्पना की प्रधानता है, अनुभूत की नहीं। कारण यह है कि अभी तक साहित्य को हम व्यवसाय के रूप से नहीं ग्रहण कर सके। मेरा जीवन तो आर्थिक दृष्टि से असफल है और रहेगा। 'हंस' निकालकर मैंने किताबों की बचत का भी वारा-न्यारा कर दिया। सो शायद इस मास चार सौ भी मिल जाते पर अब आशा नहीं।

६—मेरी रचनाओं का अनुवाद मराठी गुजराती उर्दू तामिल भाषाओं में हुआ है। सब का नहीं। सबसे ज्यादा उर्दू में उसके बाद मराठी में। तामिल और तलगू में कई सज्जनों ने मुझसे आज्ञा माँगी जो मैंने दे दी। अनुवाद हुआ या नहीं मैं नहीं कह सकता। जापानी में तीन-चार कहानियों का अनुवाद हुआ है जिसके महाशय मसाकाम ने मुझे अभी कई दिन हुए ५) रुपये भेजे हैं। मैं उनका आभारी हूँ। दो-तीन कहानियों का अंग्रेजी में अनुवाद हुआ है। बस।

७—मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बँगले की मुझे हविस नहीं। हाँ यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार ऊँची कोटि की पुस्तकें लिखूँ पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है। मुझे अपने दोनों लड़कों के विषय में कोई बड़ी लालसा नहीं है। यही चाहता हूँ कि वह ईमानदार, सच्चे और पक्के इरादे के हों। विलासी धनी खुशामदी सन्तान से मुझे घृणा है। मैं शान्ति से बैठना भी नहीं चाहता। साहित्य और स्वदेश के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहता हूँ। हाँ रोटी-दाल और तोला भर घी और मामूली कपड़े मयस्सर होते रहें।

बस आपके प्रश्नों का जवाब हो गया। मेरे जन्म आदि का ब्योरा आपके ही पत्र में छप चुका है अब आप अपना वचन पूरा कीजिए और इस के लिए कुछ लिख भेजिए। जैसा ही स्केच हो जैसा पं० सुदर्शन जी का था तो क्या कहना। शेष सकुशल है। आशा है आप भी सकुशल होंगे।

भवदीय
धनपतराय

६३

सरस्वती प्रेस काशी
१८ जून १९३२

प्रिय बनारसीदास जी वन्दे।

लीजिए इरशाद की तामील कर रहा हूँ। जो कुछ याद आया लिखा।

उस वक्त जानता कि यह लेख लिखना पड़ेगा तो शर्मा जी का एक-एक वाक्य नोट कर लेता।

'हंस' का स्वदेशांक निकलने जा रहा है। पत्र सेवा में पहुँचेगा। अब की तो निराश न कीजिएगा।

भवदीय
धनपतराय

६४

सरस्वती प्रेस बनारस
१ अक्टूबर १९३२

प्रिय बनारसीदास जी

बनारस से बाहर होने के कारण आपके पत्रों का जवाब देने में मुझे देर हो गयी। आप चाहते हैं कि मैं आपके लिए एक कहानी लिखूँ। मैं इन दिनों जुग फास म बुरी तरह फँसा हुआ हूँ। अकेले दम 'जागरण' निकाल रहा हूँ। मेरा सारा वक्त उसी में चला जाता है। तो भी मैं एक कहानी लिखने की कोशिश करूँगा।

मैंने निराला का लेख नहीं पढ़ा। मुझे लगता है कि आप इन छोटी- छोटी बातों को लेकर खामखाह इतना परेशान होते हैं। लोग व्यर्थ ही हमको वाद-विवाद में खींचने की कोशिश करते हैं। अपनी तरफ से उन्हें न्योता क्यों दिया जाय?

आपको 'कंकाल' पसन्द नहीं आया। इसका मुझे खेद है। मैं बड़ी उदार रुचि का आदमी हूँ और आलोचना-बुद्धि मुझमें बहुत कम है। 'कंकाल' में मुझको सच्चा आनन्द मिला। और मैं पुस्तक से भी अधिक उस आदमी का प्रशंसक हूँ। वह बहुत खुले हुए और स्पष्टवादी आदमी हैं।

अपने कहानी-अंक के लिए आप हिन्दी के जाने-माने लेखकों से चीजें माँगिये जैसे जैनेन्द्र सुदर्शन कौशिक प्रसाद द्विज हिन्दू हॉस्टल प्रयाग के वीरेश्वर सिंह। इनके अलावा आप चाहें तो गुजराती बँगला उर्दू और मराठी कहानीकारों को भी अपनी-अपनी भाषा में एक कहानी लिखने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं। फिर उसमें योरप और अमेरिका के आधुनिक कहानीकारों के अनुवाद होने चाहिए। कहानी के मूल सिद्धांतों पर एक लेख भी बेजा न होगा।

शुभकामनाओं के साथ

आपका
धनपतराय

मूल पत्र अंग्रेजी में

६५

सरस्वती प्रेस बनारस
१४ नवम्बर १९३२

प्रिय बनारसीदास जी नमस्ते ।

कृपापत्र के लिए धन्यवाद । मैंने सदा आपको अपना सबसे सच्चा दोस्त समझा है और आप मेरे साहित्यिक सलाहकारों मे से एक हैं जिसकी आलोचना की मैं सबसे ज्यादा कदर करता हूँ क्योंकि वह सहानुभूतिपूर्ण होती है और न्याय-बुद्धि पर आधारित होती है । आलोचकों का मूल्यांकन जैसा कि आप खुद जानते हैं लेखकों के लिए बहुत संतोष की चीज नहीं होती और वह तो सजग मित्र ही है जिसको कि वह सदा अपनी आँखों के सामने रखता है । आपने जो-जो कुछ मेरे लिए किया है उन सब का हवाला देने की तकलीफ आपने नाहक की । मैं उन चीजों को सारी जिन्दगी नहीं भूल सकता । जब कोई मौका आया है म आपकी तरफ से हमेशा लड़ा हूँ । और मैं जिस रूप म आपको देखता हूँ उस रूप मे मैंने आपको पेश करने की कोशिश की है । मैं इस बात से इन्कार नही करता कि साहित्यिकों में कुछ ऐसे लोग हैं जो आपकी अवहेलना करते हैं और आपकी सच्ची लगन के लिए आपको अपना उचित प्राप्य नही देते । इतना ही नहीं कुछ लोग उससे भी बहुत आगे चले जाते हैं । मगर किसकी बुराई करनेवाले लोग नही हैं । खुद मेरे चारों तरफ बुरा-भला कहनेवाले लोग जमा हैं जो मुझ पर चोट करने का एक भी मौका हाथ से न जाने देंगे । दुर्भाग्य की बात है कि हमारे साहित्यिक कर्मियों म विचारों की उदारता और सौहार्द का भाव नही है । एक जमात ऐसे लोगों की है जिन्हें किसी की कीर्ति का ध्वंस करने में आनन्द आता है जिस कीर्ति को बनाने मे दूसरे आदमी को बरसों लगे हैं । मगर उससे क्या ? हमें अपना अन्तःकरण स्वच्छ रखना चाहिए । और यही असली चीज है । ऐसा लगता है कि आप मजाक में की गयी छीटेकशी को बड़ा ज्यादा महत्व देते हैं । मैं मानता हूँ कि मैंने बुद्धिराज का लेख नहीं पढ़ा और न बेपढ़ी लाँ का । आपको पता ही होगा बेपढ़ी लाँ ने 'जागरण' म मेरी अच्छी खबर ली है । मगर मैंने उसको बड़ी दिलेरी के साथ कबूल किया । आदमी गमगीन तब हो जाता है जब नियत पर शक किया जाने लगता है । यह मैं कभी किसी हालत में बर्दाश्त नहीं कर सकता । साफ दिल से की गयी छींटाकशी का आपको बुरा न मानना चाहिए अगर आप इतने तुनुकमिजाज हो जायेंगे तो आप अपनी बुराई करनेवालों को और प्रोत्साहन देंगे कि वह आपको चुटकी काटें ।

मुस्कराते हुए चेहरे के साथ उनका सामना कीजिए। एक समय ऐसा था जब किसी की एक अभिमानपूर्ण चोट से मैं रात की रात जागता रह जाता था आँखों की नींद उड़ जाती थी। मगर अब वह हालत गुजर चुकी है और मैं अपने आप को पहले से कहीं ज्यादा अच्छी तरह जानता हूँ। मतभेद सदा रहेंगे लेकिन उसकी चिन्ता हम क्यों करें। सब लोग मेरी प्रशंसा नहीं करते और न यही कहा जा सकता है कि मैंने जो कुछ लिखा है सब का सब निर्दोष है। आपको 'कंकाल' अच्छा नहीं लगता मुझको लगता है। बात खतम। प्रसाद जी बहुत अच्छे आदमी हैं अनायास उनसे मुहब्बत हो जाती है। अब जब कि मैं उन्हें पास से देख रहा हूँ तो मैं पाता हूँ कि साल भर पहले मैं उनके बारे में जो सोचता था वह उसके काफी विपरीत है। गलतफहमियाँ घनिष्ठ सम्पर्क से ही दूर हो सकती हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपकी ज्यादा से ज्यादा कद्र करता हूँ। कोई चीज उसको हिला नहीं सकती। वातावरण में जो ईर्ष्या और संकीर्णता व्यापी हुई है उसकी सफाई के लिए मैं क्या कुछ न कर दूँगा। हम विचारों की उदारता से काम लेना चाहिए। आप इस सिद्धान्त को मुझसे ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं।

'कर्मभूमि' आपको निश्चय ही भेंट की जायगी। दो सौ प्रतियाँ जिनकी जिल्द बँधी थी चली गयी। नयी प्रतियों की जिल्दबंदी हो रही है। अब बस चन्द दिनों की बात है।

मैं इस महीने के अन्त तक आपको अपनी कहानी दूँगा।

आपकी 'जागरण' वाली समालोचना बहुत अच्छी है।

धन्यवाद—

आपका

धनपतराय

६६

सरस्वती प्रेस बनारस

१३ फरवरी १९३२

प्रिय बनारसीदास जी वन्दे।

आपके अत्यन्त सुन्दर पत्र के लिए धन्यवाद। आपके साथ जो दिन गुजरे उनकी मधुर स्मृति मैं सदैव सँजोकर रखूँगा। मेरी कितनी इच्छा है कि प्रेम

कुछ दम बंदेवा में

अवसर बार-बार आयें।

मैंने आपके कहानी अंक की समालोचना लिखी है। लेकिन स्थानाभाव के कारण मुझे उसको छोटा करना पड़ा। आपकी 'स्टाम्प्स' मुझको सबसे ज्यादा पसन्द आयी। और मुन्शी को नहीं बल्कि बनारसीदास और दूसरों को भी। इसलिए नहीं कि आपने उसमें मेरी तारीफ की है बल्कि इसलिए कि वह सचमुच बहुत अच्छे और सुथरे ढंग से लिखी गयी है। मैंने आपकी 'समाधि' आनन्दपूर्वक पढ़ी। आप साधु को उसमें क्यों ले आये? कहानी और ज्यादा अच्छी बनती अगर आप अपने व्यंग्यात्मक स्वर में पत्नी की सहायता के साथ एक सम्पादक के जीवन के कष्टों और आपदाओं का चित्रण कर सकते।

आपकी समालोचना पाकर श्रीमती प्रेमचंद को बहुत ही खुशी होगी। साहित्यिक संसार से अब तक उन्हें न्याय नहीं मिला है क्योंकि मैं उनके ऊपर छाया हुआ हूँ या इसलिए कि हो सकता है कुछ अक्लमन्दों का यह खयाल हो कि मैं ही उन कहानियों का असल लेखक हूँ। मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि मैं उनके साहित्यिक बनाव-संवार के लिए जिम्मेदार हूँ मगर कल्पना और लेखन पूरी तरह उन्हीं का होता है। एक-एक पंक्ति में एक सच्चर्यपरायणा नारी बोलती है। मेरे जैसा शान्त स्वभाव का व्यक्ति इस प्रकार के भीषण नारी-परक कथानकों की कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं उनका चित्र आपको भेज सकता हूँ। उन्हें कोई आपत्ति न होगी। जहाँ तक उनके हाथ की घड़ी की बात है जब कोई साहसी पत्रकार उनको पैसे देने लग जायगा वे आप ही उसका बन्दोबस्त कर लेंगी या हो सकता है कि कोई उन्हें भेंट में दे दे।

आप अब भी माह में कलकत्ता आने के लिए तैयार हैं? कोई मौका होना चाहिए। सिर्फ तमाशबीनी के लिए आना और दूसरों से उसका खर्च उठाने की उम्मीद करना मजाक की बात है। जब ऐसा कोई अवसर होगा तो आप मुझको सपत्नीक वहाँ पायेंगे।

हजार-हजार अफसोस कि केवल लापरवाही के कारण व म स्वदेशांक अब तक नहीं भेजे जा सके। अब पैकेट तैयार है और कल भेज दिया जायगा।

शुभकामनाओं के साथ।

आपका

धनपतराय

पुनश्च —पंच परमेश्वर सप्त सरोज की एक कहानी है। आप कृपया हिन्दी पुस्तक एजेन्सी से एक प्रति देने के लिए कहें। वे खुश होंगे।

मूल पत्र अंग्रेजी में

६७

सरस्वती प्रेस काशी
११ अप्रैल १९३३

प्रिय बनारसीदास जी वंदे ।

आपको तो मैंने कलकत्ता पत्र लिखा था । आज जवाब आया कि आप यहाँ हैं । आप ही कुछ लिखेंगे ? दो-एक पृष्ठ सही । जगह रिजर्व रख छोड़ी है ।

गुप्त जी को मेरा नमस्कार कहियेगा ।

आपका
धनपतराय

६८

सरस्वती प्रेस बनारस
१७ जुलाई १९३३

प्रिय भाई

मैं अनुमान लगाने की कोशिश कर रहा था कि यह मनीराम कौन हो सकता है और इस सज्जन के बारे में मेरे मन में एक हल्का-सा संदेह था । तो अब बात साफ हो गयी । यह महाशय आजकल कहानियाँ लिख रहे हैं और हिन्दी की दुनिया में एक तहलका मचाने की कोशिश कर रहे हैं । मगर अब तक उनकी कोशिशें नाकाम-सी मालूम पड़ती हैं ।

'इस्लाम का विष-वृक्ष' मैंने नहीं देखा है । मगर 'चित्रपट' में उसका जो *विज्ञापन निकल रहा है उससे मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ कि वह क्या है ।* यह साम्प्रदायिकता फैलाने की एक बेहद शरारतभरी और नीच कोशिश है और उसका पर्दाफ़ाश करना ही होगा । किताब पढ़ने के बाद मैं खुद उसके बारे में लिखने की सोच रहा था और अब जब कि आपने इस मामले को उठा लिया है मैं दिलोजान से आपके साथ हूँ । इसकी परवाह मत कीजिये कि हम लोग अल्पमत में हैं । हमारा लक्ष्य पवित्र है । जुलाई का हंस पूरा हो गया है, इसलिए मैं अपना नोट जागरण में दे रहा हूँ । मगर आप मेरे पास किताब भेज दें तो मैं इस विषय पर एक पूरा सम्पादकीय लिखूँ ।

एक बात और । मेरे पास आपका एक जीवनवृत्त है और मैं उसे हंस में देना

मूल पत्र अंग्रेज़ी में

चाहता हूँ। क्या आप मुझे अपना ब्लाक या अगर ब्लाक न हो तो अपनी सबसे नयी तसवीर भेज सकते हैं? बहुत कृतज्ञ हूँगा।

सस्नेह

आपका
धनपतराय

६९

सरस्वती प्रेस बनारस
६ अगस्त १९३५

प्रिय बनारसीदास जी

जागरण में जो मखौलिया नोट निकला था उसका मुझे बिलकुल पता न था। सच कहता हूँ सरस्वती में जो सब मुलाकात लिखी गयी थी उस पर मैंने एक क्षण के लिए विश्वास नहीं किया। मैं फौरन समझ गया कि शुरू से लेकर आखिर तक वह बदमाशी है। उस आदमी ने आपमें और सारी दुनिया में रार पैदा करने की कोशिश की है। मगर माफ कीजिएगा। आपको भी चाहिए कि ऐसे बेईमान स्वार्थसेवियों से बच कर रहें। कभी कोई ऐसी बात न कहिये जो आप पूरी संजीदगी से कहना न चाहते हों। मैं इस इण्टरव्यू के बारे में 'हंस' में एक नोट लिखने जा रहा हूँ। आपको अदालत में इस मामले को उठाना चाहिए। परिस्थिति का यही तकाजा है। जब उसने साफ-साफ तौर पर यह नहीं कहा कि वह किसी पत्र के लिए इण्टरव्यू ले रहा है और आपको उस इण्टरव्यू की कापी नहीं दिखायी तब वह कैसे इस तरह की भयानक बातें आपके मुँह में डालकर आपकी ख्याति को ऐसी अपूरणीय क्षति पहुँचा सकता है।

क्या आप यह चाहेंगे कि मैं उस पत्र का अनुवाद छाप दूँ, जो आपने लिखा है?

आपका
प्रेमचंद

७०

सरस्वती प्रेस, बनारस
१८ अगस्त १९३५

प्रिय बनारसीदास जी

कृपापत्र के लिए धन्यवाद। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि विशाल भारत

अपनी मुसीबतों से उबर आया और अब उसे कोई खतरा नहीं है। बधाई।

मैंने 'हंस-वाणी' में एक टिप्पणी लिखी है। एक-दो रोज में आपके पास पहुँचेगी। द्वितीय अंक से शुरू होगा। आपको पसन्द आयेगी। मैंने पूरी सच्चाई और सद्भाव से लिखा है। आपको उसका स्वर पसन्द आया या नहीं लिखियेगा।

बड़े दुख की बात है कि अब तक मेरी जमायी हुई कोई चीज अपने पैरों पर नहीं खड़ी हो सकी। 'हंस' पर मुझे बहुत घाटा नहीं आता मगर 'जागरण' असह्य होता जा रहा है। मैं सोच-सोचकर हैरान हुआ जाता हूँ कि कैसे इस परिस्थिति से बाहर निकलूँ। हर महीने मुझे कोई दो सौ रुपये का घाटा आता है। यह चीज कब तक चल सकती है? एक बार उसको शुरू करने की गलती कर चुकने पर अब उसको बन्द करने के रास्ते में अपना अहम् आड़े आता है। लोग कैसे हँसेंगे और खिल्ली उड़ायेंगे। अगर मुझे कुछ अच्छे विज्ञापन मिल जाते तो मैं घसीट ले जाता। इसमें आप मेरी कुछ मदद कर सकते हैं? बंगाल केमिकल खूब इस्तहार कर रहा है। 'जागरण' में विज्ञापन देने के लिए उनसे कहा जा सकता है। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा अगर आपका कोई मित्र यह विज्ञापन हमारे लिए हासिल कर सके। फिर बिरला बन्धु हैं और उनकी चूर्ण की चीजें हैं। वे भी अब विज्ञापन करते हैं। उनसे आप मेरी ओर से प्रार्थना कर सकते हैं। अगर मुझे सिर्फ सौ रुपये महीने की आमदनी हो जाय तो स्थिति सम्हाली जा सकती है। अपनी निजी आवश्यकताओं की मुझे चिन्ता नहीं है। अपनी पुस्तकों और लेखन से मुझको खाने भर को मिल जाता है। मगर इन पत्रों को कैसे चलाऊँ यही समस्या है। अगर मुझमें यह साहस होता कि इनको बंद कर सकता तो मैं इन सारी परेशानियों से बच जाता मगर वह साहस नहीं जुटता। यह अपनी अयोग्यता की एक खुली स्वीकृति होगी जिससे मैं अपनी शक्ति भर बचना चाहता हूँ। मैंने आपको दोस्त जानकर अपना दिल आपके सामने खोल दिया है और मुझे आशा है कि यह बात आप ही तक रहेगी। अगर आपको ऐसा कुछ ख्याल हो कि मैं आप पर बहुत भारी बोझ डाल रहा हूँ तो आप कोई चिन्ता न करें।

आशा है आप सानन्द हैं।

आपका
धनपतराय

मूल पत्र अंग्रेजी में

७२

सरस्वती प्रेस बनारस
२४ अगस्त १९३९

प्रिय भाई,

धन्यवाद। आप अपना लेख के लिए तीन-चार-पाँच पेज ले लें। उसकी कोई बात नहीं है। आप अपनी बात कहिये इस क्रम को ख्याल में मत लाइए। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि हम लोग जो काम उठाने जा रहे हैं आप उसके विस्तार क्रम को समझ रहे हैं।

आपके अत्यन्त मैत्रीपूर्ण परामर्श के लिए मैं सचमुच आपका कृतज्ञ हूँ। उस आदमी के खिलाफ मेरे मन में जरा भी बुराई नहीं है। सच तो यह है कि मुझे उसके लिए दुख है। लेकिन हिन्दी पाठक इतने उथले और आलोचना-बुद्धि से रहित हैं कि वे उटपटाँग से उटपटाँग बात को जो बार-बार उनके कान में डाली जाती है मान लेने के लिए हरदम तैयार रहते हैं। मगर आगे से मैं अपने ऊपर अधिक संयम रखूँगा।

'भविष्य किसका है' एक बड़ा विषय है और मैंने कभी उसके बारे में सोचा नहीं। इतने लिखनेवाले हैं कि उनमें से कुछ को विशेषरूप से गिनाने के लिए चुनना जरा कठिन है। साहित्य केवल कहानी नहीं है। उसमें नाटक है कविता है आलोचना है, कहानी है, उपन्यास है, निबन्ध है। इनको उन्हें इस तरह विषयानुसार लेना पड़ेगा। माधुरी के दो अंकों में साल भर से ज्यादा हुआ उमर खय्याम पर जो लेख निकला था उससे अधिक सुन्दर आलोचना हिन्दी में मेरे देखने में नहीं आयी। लेखक का नाम शायद रामश्याम तिवारी था। जिन दिनों मैं सम्पादक था उन दिनों भी माधुरी में एक बड़ी उदात्त आलोचना कालिदास के 'ऋतुसंहार' पर निकली थी। लेखक का नाम मैं भूल गया हूँ लेकिन वह वही सज्जन हैं जो आजकल मथुरा म्युजियम के क्युरेटर हैं। नन्ददुलारे वाजपेयी में भी अद्भुत व्याख्यात्मक-विश्लेषणात्मक शक्ति है। नाटक हमारे पास बहुत ही कम हैं। रोमांटिक स्कूल के प्रसाद हैं, बुद्धिवादी स्कूल के पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र हैं हास्यरस के जी० पी० श्रीवास्तव हैं। सबसे नया आदमी इस लाइन में भुवनेश्वर है जिसने हाल ही में अपने छोटे-छोटे एकांकियों का संग्रह 'कारवाँ' के नाम से छपाया है। मेरे देखने में भुवनेश्वर सबसे अधिक प्रतिभा-सम्पन्न है, मगर वह अपनी प्रतिभा को आलस्य बेसिर-पैर के सपने देखने सिगरेट पीने और इश्कबाजी

में बर्बाद न कर दे। उसमें अभिव्यक्ति की अद्भुत शक्ति है, खासकर व्यंग्य और शॉ का रंग लिये हुए। मिश्र जी को मैं पसन्द नहीं कर सका। उनके पास विचार हो सकते हैं मगर अभिव्यक्ति की क्षमता और शक्ति नहीं है। मिलिन्द और हरिकृष्ण प्रेमी हैं, दोनों में नाटकीय शक्ति है पर नाटक की आधुनिक पकड़ और सूझ-बूझ नहीं है।

उपन्यासकारों में—वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, निराला, सियारामशरण गुप्त, प्रसाद, प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि हैं। मैं समझता हूँ कि इनमें वृन्दावनलाल वर्मा सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं। यों उन्होंने अब वकालत शुरू कर दी है और लिखना शायद बन्द कर दिया है।

कहानीकारों में चुनाव और भी अधिक कठिन है—जैनेन्द्र सबसे अलग अपनी एक हस्ती रखते हैं। नये लोगों में अज्ञेय, चन्द्रगुप्त, कमला देवी, सुभद्रा, उषा मित्रा, सत्यजीवन, भुवनेश्वर, जनार्दन झा, जनार्दन राय, नागर, अंचल, ग्वाल, राधाकृष्ण, वीरेन्द्र कुमार (जिन्होंने हंस में 'चूनरी के अंचल में' लिखा था) और भी बहुत से नाम हैं। इनमें अज्ञेय, वीरेन्द्र कुमार, सत्य जीवन में सबसे अधिक सम्भावनाएँ हैं।

हास्य-रस के लिखनेवालों में अन्नपूर्णानन्द बेजोड़ हैं मगर वह बहुत ही कम लिखते हैं। जगदीश झा भी योग्य लेखक हैं मगर उनमें प्रतिभा की स्फूर्ति या अन्तर्दृष्टि बहुत नहीं है। साहसिक आख्यानों के क्षेत्र में पं० श्रीराम शर्मा अकेले हैं।

सृजनशीलता ही असल चीज है, मूल स्रोत। सृजनशील प्रतिभाएँ हमारे यहाँ बहुत कम हैं। कहानीकारों में जैनेन्द्र मैदान सम्हाले हुए हैं। दूसरी कतार में बहुत से लोग हैं।

जहाँ तक निबन्धों की बात है, पं० रामचन्द्र शुक्ल अमर हैं। हेमचन्द्र जोशी ने कुछ सुन्दर निबन्ध लिखे हैं।

आपके मित्र बाबू ब्रजमोहन वर्मा भी हास्य-व्यंग्य के बड़े प्यारे लेखक हैं और डिबरी अंक में उनका 'रोस्ट' मास्टरपीस था।

यह सरकारी राय है जिससे आपको नयी कोई बात न मालूम होगी लेकिन मैं समीक्षाबुद्धि-सम्पन्न पाठक भी तो नहीं हूँ। सच तो यह है कि मुझमें आलोचना-*बुद्धि तनिक भी नहीं है।*

आगत का विषय सूना है उसका विस्तार साहित्य का पूरा काम है लेकिन इसमें आप कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकते। जिनमें आज सबसे अधिक सम्भावनाएँ दिखायी पड़ती हैं। हो सकता है कि वे बिलकुल कोरे साबित हों और जो कोरे नज़र

भाते हैं वे चमक उठे।

आपका
धनपतराय

पुनश्च —

आप अपना घर क्यों नहीं बसाते? सन्यास से रहे हैं जब कि आपको गृहस्थ होना चाहिए! भला हो विधवा-विवाह का, आपको अपने लिए कन्या पाने में कोई कठिनाई न होगी। संयम एक वरदान है मगर इच्छा करना अभिशाप। एक नारी बहुत पढ़ी-लिखी सुसंस्कृत प्रबल साहसी आपके लिए आदर्श होगी। तब आपको यहाँ-वहाँ झुकी हुई, शर्मायी हुई, मांस-सी माँगती हुई नजरें डालने की जरूरत न रहेगी। वह मानसिक और भावात्मक दोनों रूपों में आपकी रक्षा करेगी।

७२

सरस्वती प्रेस, बनारस
१२ जनवरी १९३४

प्रिय बनारसीदास जी

धन्यवाद। मैंने वह टुकड़ा 'जागरण' में दे दिया है जो कि परसों सनीचर के दिन निकलेगा।

निर्मल जी को जवाब देते हुए मैंने 'जागरण' में जो लेख लिखा था क्या आपने उसको देखा? यह निर्मल बिलकुल सिद्धान्तहीन आदमी है। जिन दिनों पाक्षिक 'जागरण' बाबू शिवपूजन सहाय के हाथों में था मेरे और 'जागरण' के बीच एक विवाद उठ खड़ा हुआ। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने कुछ लिखा था उसी को लेकर यह झगड़ा खड़ा हो गया। उस समय निर्मल ने 'जागरण' में एक लेख लिखा था जिसमें मेरे साहित्यिक कार्य का मूल्य गिराया गया था और मुझको सलाह दी गयी थी कि अब मैं और कुछ न लिखूँ। क्योंकि मेरे दिन बीत चुके और अब मैं पुराना पड़ गया। शिवपूजन सहाय ने इस लेख को नहीं छापा। कुछ समय बाद जब 'जागरण' मेरे हाथ में आया तो इसी निर्मल ने एक लेख मेरी तारीफ में जमीन और आसमान के कुलाबे मिलाते हुए लिखा जिसको मैंने छाप दिया। इससे पता चलता है कि यह आदमी किस धातु का बना है। उसने मुझपर यह दोष लगाया है कि मैं ब्राह्मण धर्म का द्रोही हूँ सिर्फ इसलिए कि मैंने इन पुजारियों और महंतों और धार्मिक लुच्चे-लफंगों के कुछ पाखंडों का मजाक उड़ाया है। उसका यह साहस बढ़ता है और जरा भी नहीं सोचता कि उनको

ब्राह्मण कहकर वह अच्छे-अच्छे ब्राह्मणों का कितना अपमान करता है। ब्राह्मण का मेरा आदर्श सेवा और त्याग है वह कोई भी हो। पाखंड और कट्टरता और सीधे-सादे हिन्दू समाज के अन्धविश्वास का फायदा उठाना इन पुजारियों और पंडों का धंधा है और इसीलिए मैं उन्हें हिन्दू समाज का एक अभिशाप समझता हूँ और उन्हें अपने अधःपतन के लिए उत्तरदायी समझता हूँ। वे इसी काबिल हैं कि उनका मज़ाक उड़ाया जाय और यही मैंने किया है। यह निमस और उसी जैसी के चट्टे-बट्टे दूसरे लोग ऊपर से बहुत राष्ट्रीयतावादी बनते हैं मगर उनके दिल में पुजारी धर्म की सारी कमजोरियाँ भरी पड़ी हैं और इसीलिए वे हम लोगों को गालियाँ देते हैं जो स्थिति में सुधार लाने की कोशिश कर रहे हैं।

मैं कुछ समझ नहीं सका कि आप किस चीज़ में पंच बनने जा रहे हैं और मेरे खिलाफ फर्दे जुर्म क्या है। क्या वे कहानियाँ जिनमें मैंने इन पाखंडियों का मज़ाक उड़ाया है? बराय मेहरबानी उन्हें पढ़ जाइये। बहुत नहीं हैं। मज़ाक की असल चीज़ बात को बढ़ा-चढ़ाकर नमक-मिर्च लगाकर कहना होता है। और यही मैंने किया है। मगर यह काम मैंने साफ दिल से हँसी-दिल्लगी के रंग में किया है। वह द्वेष और विष से पूरी तरह मुक्त है।

मेरी हालत बहुत अच्छी नहीं है। इस साल मुझे कोई दो हजार रुपये का घाटा हुआ। उसने मेरी कमर तोड़ दी है। मैं यह सब प्रेस और प्रकाशन और पत्र लीडर प्रेस को सौंप देने के लिए बातचीत कर रहा हूँ। देखूँ इसका क्या नतीजा निकलता है।

आशा है आप सब मज़े में हैं।

आपका
धनपतराय

७३

अजन्ता सिनेटोन लिमिटेड, परेल, बाम्बे १२
२७ सितम्बर १९३४

प्रिय बनारसीदास जी

दोनों पत्रों के लिए धन्यवाद एक डाक से और दूसरा [illegible] के जरिये।

मूल पत्र अंग्रेजी में

जैसे ही प्रिंट मिलेंगे मैं आपके आदेश का पालन करने की कोशिश करूँगा। अब तक वह मिले नहीं।

यहाँ की हालतें मेरे लिए काफी ठीक हैं क्योंकि इस उम्र में अब मेरे बहकने का कोई डर नहीं है। इसके विपरीत हो सकता है कि मेरा इस माहौल में रहना कुछ रोक-थाम करे।

आशा है आप मजे में हैं।

शुभकामनाओं के साथ

आपका
धनपतराय

७४

सरस्वती प्रेस, बनारस
२१ मई १९३५

प्रिय बनारसीदास जी

आपको उस प्रस्ताव का पता चला होगा जो साहित्य सम्मेलन ने एक अखिल प्रान्तीय साहित्यिक संघ बनाने के सम्बन्ध में पास किया है जिसका काम राष्ट्र भाषा के माध्यम से साहित्यिक भाई-चारा पैदा करने के तरीकों और रास्तों पर विचार करना होगा ताकि धीरे-धीरे हिन्दुस्तान के पास अपना एक राष्ट्रीय साहित्य और अपनी एक राष्ट्रभाषा हो सके। जैसा कि आप देख ही सकते हैं इस प्रस्ताव में बड़ी सम्भावनाएँ हैं और आवश्यक है कि आपकी तरह के लोग इस मसले के समर्थन में जनमत तैयार करें। मई के अंक में मैंने इस विषय पर अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा है। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि अगर आपने अब तक नहीं किया है तो अब अपने सम्पादकीय में इस चीज के बारे में अपने सुझाव और टिप्पणियाँ दें। श्री मुंशी ने मुझको सुझाव दिया है कि 'हंस' परिषद् का मुखपत्र बना दिया जाय और मैंने खुशी-खुशी इस सुझाव को मान लिया है। मैं दूसरे प्रान्तों के साहित्यकारों को इस आन्दोलन में दिलचस्पी लेने के लिए प्रेरित कर रहा हूँ और अगर अच्छा समर्थन मिला तो आगामी वर्ष एक अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन वास्तविक रूप ले सकेगा।

आशा है आप हमेशा की तरह प्रसन्न हैं।

आपका
धनपतराय

मूल पत्र अंग्रेजी में

७५

हंस कार्यालय, बनारस
१ अगस्त १९३५

प्रिय बनारसीदास जी

आपका पत्र पाकर कृतज्ञ हूँ और आपको अपने काम में इतनी दिलचस्पी लेते देखकर कृतज्ञ हूँ। मगर जब तक कि मुझे कोई योग्य अनुवादक नहीं मिल जाता डाक्टर ऐंड्रूज को नाहक तकलीफ देना ठीक नहीं। अब तक शायद वक्त नहीं आया। जब वक्त आयेगा मददगार उठ खड़े होंगे।

जहाँ तक तुलसी जयन्ती की बात है, मैं इस काम के लिए सबसे कम योग्य व्यक्ति हूँ। एक ऐसे उत्सव कि अध्यक्षता करना जिसमें मैंने कभी कोई रुचि नहीं ली हास्यास्पद बात है। मुझे अपने भीतर आत्मविश्वास की कमी जान पड़ती है, डर लगता है। सच बात तो यह है कि मैंने रामायण भी आदि से अन्त तक नहीं पढ़ी है। यह एक लज्जाजनक स्वीकारोक्ति है, मगर बात ठीक है।

सम्प्रति मैं बहुत व्यस्त हूँ। मैं अपना कार्यालय और निवास एक नये मोहल्ले में ले जा रहा हूँ और मेरी उपस्थिति बहुत वांछनीय है। कृपया मुझे क्षमा करें। चीज जब चल निकलेगी तो समय है कि मैं आऊँ।

आपको मेरा पत्र मिला होगा। मैं 'हंस' के लिए आपकी ओर से किसी साहित्यकार जैसे कि पं० पद्म सिंह शर्मा के स्केच की उम्मीद लगाये हूँ। पहला अंक पहली अक्टूबर को निकलेगा। आप कृपया अपनी रचना इस महीने के अन्त तक भेज दें।

आपका
प्रेमचंद

७६

हंस कार्यालय [illegible] बनारस कैंट
१७ अगस्त १९३५

प्रिय बनारसीदास जी

कृपा पत्र के लिए कृतज्ञ हूँ। मैं खुद ऐसे झगड़ों में पड़ना पसन्द नहीं करता लेकिन जब कोई पुराना आपका गला दबा रहा हो तो आपको अपनी रक्षा करनी

मूल पत्र अंग्रेजी में

हो पड़ेगी चाहे आप दार्शनिक ही क्यों न हों। अब मुझे पक्का विश्वास हो गया है, कि उस आदमी का दिमाग अति भावुक है, भावुक नहीं द्वेषपूर्ण। शायद उसको लगता है कि दुनिया से उसको अपना प्राप्य नहीं मिल रहा है और इसलिए उसको जब-तब अपने आपको आगे लाना चाहिए और अपनी श्रेष्ठता की घोषणा करनी चाहिए। मैंने तो जो कुछ महसूस किया सीधे-सीधे शब्दों में लिख दिया और अगर वह चुप नहीं हो जाता तो मैं उसका सिर तोड़ दूंगा। जरा उसकी धृष्टता तो देखिये!

मैं वहाँ नहीं आ सका इसके लिए आप मुझे माफी न दीजियेगा। अगर आपने तुलसी उत्सव मेरे ऊपर न लगा दिया होता तो मैं आता। लेकिन एक ऐसे व्यक्ति का तुलसी जयन्ती में सम्मिलित करना जिसने कभी उन्हें पढ़ा नहीं और जो उनके संबंध में कही जानेवाली अतिमानवी बातों में विश्वास नहीं करता हास्यास्पद है। उन्होंने राम और हनुमान को देखा और वह बन्दरवाली कथा सब पुराख्यात। मगर क्या तुलसी भक्त लोग मेरी काफ़िरों जैसी बात पसंद करेंगे? इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि वह विक्रम सम्वत् दस में पैदा हुए या बीस में या चालीस में? क्यों अपनी बुद्धि खामखाह इसके पीछे बर्बाद करो जब कि और भी न जाने कितनी चीज़ें करने को पड़ी हैं। वह एक महान कवि थे उनकी व्याख्या करो दार्शनिक व्याख्या मनोवैज्ञानिक व्याख्या भाषाशास्त्रीय व्याख्या शरीरशास्त्रीय व्याख्या जो चाहे करो मगर उन्हें ईश्वर क्यों बनाते हो।

'हंस' अब एक कंपनी के हाथ में दे दिया गया है और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और मैं इसके अवैतनिक सम्पादक हैं। देखिये यह व्यवस्था कैसी चलती है। इस विचार को हमें सफल बनाना ही होगा। क्या आप नहीं सोचते कि सभी (भारतीय) साहित्यों को हिन्दी के माध्यम से उपलब्ध करना एक ऐसा विचार है जिसे परीक्षा करके देखना चाहिए? यह ठीक है कि जब-तब हमारी पत्रिकाओं में बंगला मराठी उर्दू के अनुवाद निकलते रहते हैं। कुछ अच्छे और योग्य उर्दू लेखकों और बंगालियों को सामने लाकर 'विशाल भारत' ने एक उल्लेखनीय सेवा की है। हमारी सारी शक्ति इसी काम में लगेगी। अकेला सवाल यह है कि अच्छी सामग्री हमें कैसे मिले। पारिश्रमिक हम दे नहीं सकते और केवल अनुवादों का सहारा लेना नहीं चाहते। हम एक मौलिक लेख चाहते हैं जो पहली बार 'हंस' में छपे। कोशिश करके देखें कि यह विचार हमारे साहित्यिक बन्धुओं को कैसा पसन्द आता है। बंगाली और मराठे और कुछ मुसलमान हो सकता है कि हिन्दी को यह स्थान दिये जाने पर नाक भौं सिकोड़ें मगर शरत बाबू और रवि बाबू दोनों को यह विचार पसन्द आया है। उर्दू लेखकों ने

मेरे निमंत्रणपत्र का उत्तर बड़ी तत्परता से और सौजन्य से दिया है। और इधर हिन्दी महारथियों को लिखे गये तमाम पत्रों में से शायद ही किसी पत्र का उत्तर आया हो। बाबू मैथिलीशरण ही अकेले आदमी हैं जिन्होंने जवाब दिया है। दूसरों ने पत्र की प्राप्ति को स्वीकार भी नहीं किया। यह है हमारे हिन्दी लेखकों की मनोवृत्ति। अगर सम्भव हो तो आप पहली सितम्बर तक पद्म सिंह जी का स्केच भेज दें। संक्षेप में लिखियेगा—दो पृष्ठ काफी होंगे।

अगर पहले अंक के लिए आप शुक्ल जी जैनेन्द्र और मैं लिखूँ और और भी कुछ लोग तो जगह भर जाती है। हिन्दी के लिए हमारे पास २ पृष्ठ से अधिक नहीं है।

तुर्गनेव की जो चीज आपने बड़ी मेहरबानी से नकल की है मैं उसका अनुवाद करूँगा और उसे प्रकाशित करूँगा।

आपका

धनपतराय

७७

सरस्वती प्रेस, बनारस

१ सितम्बर १९३५

प्रिय बनारसीदास जी

आपका कार्ड मुझे मिला था उसके लिए धन्यवाद। मेरी दिली इच्छा है काश कि मैं गोगुजी के व्याख्यान सुन सकता मगर मजबूर हूँ। बरसातों का वैसे भी बड़ी समस्या है। सबके इलाहाबाद में हैं और मैं चला आऊँगा तो मेरी पत्नी बेहद अकेला और बेबस महसूस करेगी। अगर मैं उनको भी अपने साथ लेता आऊँ तो इसके लिए अच्छी खासी रकम खर्च करने के लिए चाहिए। इसलिए अच्छा है कि घर ही पर पड़े रहो बजाय इसके कि पैसे की तंगी महसूस हो। और जहाँ तक जवान बने रहने की बात है वह एक स्वभाव की बात है। बहुत से नौजवान हैं जो मुझसे बूढ़े हैं और बूढ़े हैं जो कि मुझसे जवान हैं। लेकिन मैं तो सोचता हूँ कि मैं रोज ब रोज जवान होता जा रहा हूँ। परलोक में मेरा विश्वास नहीं है इसलिए अध्यात्म का विचार जो कि यौवन का सबसे बड़ा घातक है मेरे पास नहीं फटकता। हाँ यह जरूर है कि एक चीज स्वस्थ यौवन होती है और दूसरी उन्मत्त यौवन। स्वस्थ यौवन जीवन के प्रति एक प्रगतिशील और आशावादी दृष्टिकोण में होता है और उसके साथ गड्ढों से बचता है। उन्मत्त यौवन का

मूल पत्र अंग्रेजी में

मतलब है बिना सोचे-विचारे कुछ कर बैठना और अपनी क्षमताओं और स्वप्नों
को बढ़ा-चढ़ाकर देखना। मैंने सपने देखना बन्द नहीं किया है और थोड़ा-बहुत
बदलाव भी हूँ बिना सोचे-विचारे कुछ कर बैठता हूँ। लेकिन खुशी की बात है
कि मितव्ययिता की प्रवृत्ति चली गयी है। इस तरह पागलपन का भी बड़ा हिस्सा
मेरे पल्ले पड़ा है। मैं समझने लगा हूँ कि संतुष्ट पारिवारिक जीवन एक बड़ा
वरदान है। और बड़े-बड़े दिमागों की दुनिया में कमी नहीं है ढेरों पड़े हैं। सच्ची
महानता और नकली महानता में फ़र्क कर सकने के लिए बड़ी न्यायबुद्धि चाहिए।
मैं ऐसे महान आदमी की कल्पना ही नहीं कर सकता जो धन-संपत्ति में डूबा हुआ
हो। जैसे ही मैं किसी आदमी को धनी देखता हूँ उसकी कला और ज्ञान की सब
बातें मेरे लिए बेकार हो जाती हैं। मुझको ऐसा लगने लगता है कि इस आदमी
ने वर्तमान समाज व्यवस्था को जो अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण पर आधारित
है स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार कोई भी बड़ा नाम जो लक्ष्मी से सम्पृक्त
नहीं है मुझको आकर्षित नहीं करता। यह बहुत सम्भव है कि मेरे मन के इस
ढाँचे के पीछे जीवन में मेरी अपनी असफलता हो। हो सकता है कि बैंक में अच्छी
रकम रखकर मैं भी थोरो जैसा ही हो जाता—उस लोभ का संवरण न कर
पाता। लेकिन मैं खुश हूँ कि प्रकृति और भाग्य ने मेरी मदद की है और मुझे
गरीबों के साथ डाल दिया है। इससे मुझे मानसिक शान्ति मिलती है।

आप कितनी ही बार मोगलसराय से गुज़रे मगर कभी यह तकलीफ़ नहीं
की कि एक दिन के लिए यहाँ चले आते। और फिर आप मुझसे उम्मीद करते हैं
कि मैं यहाँ से कलकत्ते तक का सफ़र करूँ और अपनी बीवी को नाराज़ कर लूँ।
आन्तरिक शान्ति मेरा सिद्धान्त है।

आपका
धनपतराय

७८

हंस कार्यालय, बनारस
१५ मार्च १९३५

प्रिय बनारसीदास जी

धन्यवाद। हंस चल रहा है। ग्राहक धीरे-धीरे आ रहे हैं। अब भी इसमें दो
सौ रुपये महीने का घाटा है जब कि इसे सम्पादकों को कोई तनख्वाह नहीं देनी
पड़ती और सारे लेख मुफ़्त छपते हैं।

मूल पत्र अंग्रेज़ी में

मुझे जानकर दुख हुआ कि विशाल भारत अब भी घाटा दे रहा है। कितने अफ़सोस की बात है कि पहला हिन्दी पत्र जिसे सब सर्वश्रेष्ठ हिन्दी मासिक के रूप में जानते-मानते हैं, इस हालत में है। इससे हमारी सांस्कृतिक मनोवृत्ति का पता चलता है। उर्दू पत्र आगे बढ़ रहे हैं। पचास से अधिक प्रथम श्रेणी के मासिक पत्र हैं, और उनमें से एक भी ऐसा नहीं है जिसका दो-ढाई रुपये दाम का पाँच सौ पृष्ठों का एक वार्षिकांक न निकलता हो। निस्सन्देह उनकी साहित्यिक रुचि और अन्तर्दृष्टि ज्यादा अच्छी है। वे मूल्यांकन करना जानते हैं। उनके यहाँ कविता में वही संयम मिलता है जो हमें जीवन में मिलता है, हिन्दी कविता अब भी व्यक्तिवादी और निरी भावुकतापूर्ण होती है। उसमें ज़िन्दगी की हरकत नहीं है वह ज़िन्दगी को उजागर नहीं करती। वह बस तुमको हताश-निराश बना देती है। मैं समझ नहीं पाता कि क्यों हमारे सब कवि निराशा के दर्शन से इस तरह अभिभूत हैं। उर्दू कवि दार्शनिक हैं, यथार्थवादी हैं और आशावादी हैं। आज दर्जन कवि हथौड़े मार-मारकर मुस्लिम जाति को समता और भ्रातृत्व और जन तन्त्र के नये आदर्शों में ढाल रहे हैं। मुस्लिम कवि कम्युनिस्ट होता है, यहाँ तक कि इक़बाल भी।

चार अप्रैल को वर्धा में एक अखिल भारतीय साहित्यिक सम्मेलन होने जा रहा है। हंस को हर हालत में तब तक निकल जाना चाहिए। मैं वहाँ पर मौजूद रहने की उम्मीद करता हूँ।

मैं शान्ति निकेतन नहीं जा सका। वहाँ पर मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं है। वे लोग मुझसे उम्मीद करेंगे कि मैं बड़ा विद्वत्तापूर्ण भाषण दूँ जो कि मैं कर नहीं सकता। मैं कोई विद्वान आदमी नहीं हूँ। तो भी अगर वे लोग मुझे काफ़ी पहले से बुलायें तो मैं आने की कोशिश कर सकता हूँ। मिनट भर की तार की सूचना पर मैं तैयारी नहीं कर सकता।

आगरे गया था और वहाँ मैंने आपके दोनों छोटे बच्चे देखे। आपके भाई एक आदर्श भाई हैं। मैं आपको बधाई देता हूँ।

आपने मुझको विशाल भारत में लिखने के लिए आमंत्रित किया है। मैं किसी पत्र के लिए नहीं लिख रहा हूँ। हंस के लिए भी पिछले तीन-चार महीनों में मैंने कुछ नहीं लिखा। जब तक कि कोई विशेष चीज़ मेरी कल्पना को छू ले नहीं मैं कोई अच्छी चीज़ पैदा करने में बिलकुल असमर्थ हूँ। तब क्यों अपने दिमाग के साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती करूँ। मैं अपने आप को साल में दो कहानियाँ और हर दूसरे साल एक उपन्यास तक सीमित रखना चाहता हूँ। मुझे बचाये रखने के लिए इतना काफ़ी है। इससे अधिक की क्षमता मेरे अन्दर नहीं है।

सभापति के लिए आपने मेरा नाम प्रस्तावित क्यों किया ? दूसरों ने भी आपका अनुकरण किया है। मैं उत्सुक नहीं हूँ। मेरी अभिलाषा कभी उस दिशा में नहीं रही। बल्कि मैं उसे पसन्द भी न करूँगा।

शुभकामनाओं के साथ

आपका

भगवतराम

७६

सरस्वती प्रेस, बनारस

११ मार्च ३६

प्रिय बनारसीदास जी

पत्र के लिए धन्यवाद। हाँ अगर आप अंग्रेजी पाठकों से हिन्दी लेखकों का परिचय करा सकें तो यह एक सच्ची सेवा होगी। लेकिन आप तो हिन्दी लेखकों की प्रवृत्ति जानते हैं। जिन-जिनको आप छोड़ेंगे उन सब की तरफ से चौमुखा हमले को बर्दाश्त करने के लिए आपको तैयार रहना चाहिए। निर्दोष से निर्दोष बात की भी व्याख्या इस तरह की जा सकती है कि उसमें शरारत भरी हुई मालूम हो।

नागपुर सभा ने बाबू राजेन्द्रप्रसाद को चुना है, इससे अच्छा चुनाव वे नहीं कर सकते थे। सम्मेलन में शरीक होने का मेरा कोई इरादा न था। अब तक मैं केवल दिल्ली अधिवेशन में सम्मिलित हुआ हूँ और वह भी जैनेन्द्र के दबाव में पड़कर। लेकिन इस बार भारतीय साहित्य परिषद् जो तीन और चार अप्रैल को वर्धा में होने वाला था नागपुर सम्मेलन के लिए स्थगित कर दिया गया है। इसलिए मैं वहाँ जाऊँगा जो अभी तक पक्का नहीं है, क्योंकि यह बजट का सवाल है।

दिल्ली की हिन्दुस्तानी सभा मेरे और जैनेन्द्र के सलाह-मशविरे का नतीजा है। जब तक हम दूसरी भाषाओं के लेखकों से मिलें-जुलें नहीं दोस्ती न बनावें साहित्यिक समस्याओं पर एक-दूसरे से रोशनी न लें विचारों का आदान-प्रदान न करें अपने नतीजों का साथ बैठकर मिलान न करें, तब तक हममें कैसे दृष्टि की वह व्यापकता और मन की वह उदारता आ सकती है जो साहित्यिक कर्मियों के लिए अपरिहार्य है ? यौरोप में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यिक सम्मेलन होते हैं और उनमें वे इन सभी विषयों पर विचार

मूल पत्र अंग्रेजी में

विमर्श करते हैं जिनका साहित्य से सम्बन्ध है। हमने अब तक दूसरी भाषाओं के अपने भाइयों से भाईचारा कायम करने की कोई कोशिश नहीं की। उर्दू के पास निस्संदेह एक सांस्कृतिक परम्परा है और उनके सम्पर्क में आने पर हमको अपनी कमजोरियाँ मालूम होती हैं। सच तो यह है कि मैंने उनको अधिक सामाजिक और सहानुभूतिशील पाया और मैं चाहूँगा कि आप मेरी बात की तसदीक करेंगे। यह अभी हाल में लाहौर गये थे और वहाँ पर उन्होंने कई व्याख्यान दिये और हिन्दुस्तानी सभा संगठित की। उत्साह में भरे हुए वे वहाँ से लौटे हैं और उनके प्रशंसक हो गये हैं। इस बढ़ती हुई खाई को कैसे पाटा जाय ? हम राजनीतिज्ञों से तो कोई उम्मीद रखनी न चाहिए, बिलकुल बेमसरफ लोग हैं। उनसे उदार मनस्क होने की आस्था ही न करनी चाहिए। लेखकों ही को आगे आना पड़ेगा। और शत्रु से अधिक मित्र के रूप में वे ज्यादा अच्छी तरह अनुभव कर सकते हैं। हिन्दुस्तानी सभा पाक्षिक मीटिंगों का संगठन करेगी जिनमें साहित्यिक और भाषा शास्त्रीय विषयों पर निबन्ध और भाषण हुआ करेंगे। जब मौलाना-मजलसी मिले जुले ढंग की होंगी तब वक्ताओं को भी अत्यधिक साहित्यिक होने के लोभ का दमन करना पड़ेगा और वह ज्यादा सरल रूप में अपनी बात कहने के लिए मजबूर होंगे ताकि सब लोग उन्हें समझ सकें। अगर हम सभी महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्रों में ऐसी सभाओं की व्यवस्था कर सकें तो हम वर्तमान संकोच और पार्थक्यवादी दृष्टि को व्यापक बना सकेंगे। तब हमारा साहित्य अधिक समृद्ध अधिक पूर्ण होगा और यही एक मिली-जुली भाषा की समस्या का अकेला हल होगा।

प्रान्तीयता एक नया खतरा है और हमको सावधान होना पड़ेगा। अगर आप कलकत्ते में एक हिन्दी-बंगाली या हिन्दोस्तानी सभा का संगठन कर सकें और समय-समय पर उर्दू हिन्दी और बँगला लेखकों को एक जगह पर जमा कर सकें तो यह एक असली काम होगा।

आपका
धनपतराय

मूल पत्र अंग्रेजी में

इम्तयाज़ अली 'ताज'

८०

नार्मल स्कूल, गोरखपुर
२७ जुलाई १८

बन्दानवाज़

तसलीम। रुपये मिले और रसीद न भेज सका। आप ही का काम कर रहा था। 'कहकशां' के लिये यह किस्सा बगैर इस्लाह[1] इरसाल है। इसकी आपसे दाद चाहता हूँ। इसकी × × × सूरत पर न जाइयेगा। इसके मानी पर गौर फ़रमाइयेगा।

अगर मुमकिन हो तो मौलाना राशिद की कोई किताब मुझे देखने के लिए रवाना फ़रमाइये। क्या यह मुमकिन हो कि 'कहकशां' में मेरा नाविल बाज़ारे हुस्न बिलतरतीब निकल सके। मुमकिन है कि इसके निकलने से पर्चे की इशाअत पर कुछ असर पड़े। यह नाविल कोई तीन सौ सुफ़हात का है। इसके लिखने में मैंने अपनी कोई कोशिश उठा नहीं रखी। किताब की सूरत में अब तक इसलिये नहीं निकाल सका कि मुझे इतनी फुरसत ही नहीं मिलती कि तमाम-ओ-कमाल[2] एक बार साफ़ कर सकूं। माहवार दस बीस सफ़े तो मुमकिन है मगर यकबारगी १०० सुफ़हात का ख्याल करके हौसला छूट जाता है। मगर जब तक 'कहकशां' की इशाअत मालूम न हो जाय नाविल निकालने का ख्याल कब्ल-अज़-वक्त[3] मालूम होता है।

बारिश नहीं हुई। कहत का सामान है। उम्मीद है कि आप बख़ैरोआफ़ियत होंगे। *सैयद मुमताज़ अली साहिब की ख़िदमत में आदाबे दस्तबस्ता कह दें।* अगर किसी वजह से 'कहकशां' में न निकल सके तो यह मजमून वापस फ़रमाइयेगा। 'तहज़ीब' में इसे नहीं देना चाहता।

नियाज़मन्द
धनपतराय

---

१ सुधार   २ पूरे का पूरा   ३ असमय

८१

नार्मल स्कूल गोरखपुर
२० मार्च १९१९

मुरिफ़्कीओ मुकर्रमे बन्दा

तसलीम। मशकूर हूँ। सख्त नादिम[१] हूँ कि अब तक 'बाज़ारे हुस्न' के मुताल्लिक ईफ़ाएवादा[२] न कर सका। बार बार कोशिश की कि मुस्तकिल तौर पर साफ़ कर डालूँ लेकिन एक न एक रुकावट आ जाती है। सिर्फ़ एक चौथाई साफ़ करके पड़ी हुई है। अब तो १५ अप्रैल तक मुझे मरने की फ़ुरसत नहीं है। इंशा अल्लाह १ मई तक। जिस 'कहकशाँ' में 'अम्मा' का क़िस्सा छपा था वह मेरी फ़ाइल में नहीं है। कोई साहब उड़ा ले गये। हरचन्द तलाश किया मगर बेसूद। मजबूर हूँ। 'कहकशाँ' में अबकी रसाइले[३] पर तनकीद मुझे बेहद पसन्द आई। मगर उसका टाइटल का डिज़ाइन बावजूद मिस्टर चुगताई के शबाकार[४] होने के मुझे कुछ नहीं जँचता। शायद यह मेरी नाशनासी[५] का बाइस है। मज़ामीन भी मई ही में लिखूँगा। ताख़ीर के लिए मुआफ़ी का तालिब हूँ।

खैरअन्देश
धनपतराय

८२

नार्मल स्कूल गोरखपुर
२ अप्रैल १९१९

जनाबे मुरिफ़्की

तसलीम।

मुफ़स्सल ख़त मिला। 'प्रेम बत्तीसी' की तबाअत शुरू नहीं हुई। काग़ज़ से मजबूरी है। मुझे उम्मीद है कि आप ताईदे हमदर्दी[६] करेंगे। तस्वीर का मैं बहुत गिरवीदा[७] नहीं हूँ। इससे कम्मे कुछ हो सकता है। मगर पहले मज़ाक को तस्वीर की ज़रूरत नहीं। मैं भी इस झमेले में नहीं पड़ना चाहता।

अफ़साने कुहन[८] का मजमूआ ज़रूर शाया कीजिये। मुझे यक़ीन है क़बूल होगा। कल की डाक से 'बाज़ारे हुस्न' बज़रिये रजिस्टर्ड पैकेट ख़िदमत में

१ लज्जित २ वादा पूरा ३ पत्रिकाओं ४ मौलिक ५ जानकारी की कमी
६ अवलंबन ७ प्रेमी ८ [illegible]

पहुँचेगा। खत्म हो गया। पैकेट बना हुआ तैयार है। आज डाकखाना बन्द है। आप इसे एक बार सरसरी तौर पर देख जायें और तब इसके मुताल्लिक अपनी राय से मुत्तला फरमायें। अबकी हिन्दी के मशहूर रिसाले 'सरस्वती' में इस पर एक मुफस्सल तबसरा निकला है। अगर वहाँ कहीं पर्चा मिले तो मार्च नम्बर में देखें।

प्रेम बत्तीसी' हिस्सा अव्वल के १२ फर्मे छप चुके हैं। 'सबाबे चपू' ने मुझे याद किया है। लेकिन यहाँ फुर्सत कहाँ। बन पड़ेगा तो कुछ लिखूँगा। 'कहकशाँ' के लिये अभी तक कोई मजमून नहीं लिख सका। मगर जल्दी शुरू करूँगा।

जवाब से जल्द सरफराज फरमाइयेगा।

नियाजमंद
धनपतराय

८३

नार्मल स्कूल, गोरखपुर
१६ अप्रैल १९१९

मुश्फिकीओ मुकर्रमेबन्दा

तसलीम। कल इलाहाबाद से वापस आया। 'कहकशाँ' मिला। आपके 'सदाई मुहब्बत की दाद देता हूँ। मुहब्बत का नश्वोनुमा[1] खूब है। बिल्कुल हस्बे फितरत[2]। आप मुझे मजबूर कर रहे हैं कि छोटी कहानियाँ लिखना छोड़ दूँ।

अब मजामीन और 'बाजारे हुस्न' में लिपटा हूँ। खुदा करे लाहौर में अमन हो। एक बिल्टी 'माहे अजम' बजरिये वी० पी० किस्म अव्वल इरसाल फरमायें। मशकूर हूँगा।

खैरअन्देश
धनपतराय

८४

कानपुर
२७ मई १९१९

जनाबे मुकर्रम-ओ-मुश्फिक मन

तसलीम। मुझे कई दिन हुए आपका कार्ड मिला था। उस वक्त मैं मौजे रामपुर में था। कई तरद्दुदात के बाइस जवाब न दे सका। मुआफ फरमाइयेगा।

---

१ उभरना बढ़ना २ स्वाभाविक

इस तातील में कुछ नहीं लिख सका। इस वजह से तामीले इरशाद[1] से क़ासिर[2] हूँ। हाँ यह वादा करता हूँ कि पन्द्रह जून तक कुछ न कुछ ज़रूर हाज़िर करूँगा। मेरा 'कफ़्फ़ारा' मालूम नहीं कहाँ-कहाँ ठोकर खाता होगा।

'नज़्ज़ारे हुस्न' के मुताल्लिक़ आप इसे अगर हमेशा के लिये चाहते हैं तो मुझे कोई उज्र नहीं है। मैं उर्दू पब्लिक से वाक़िफ़ हूँ। यहाँ हमेशा के मानी हैं ज़्यादा से ज़्यादा तीन एडीशन और वह भी दस सालों में या इससे ज़्यादा। इस लिये मैं ऐसी शर्तें हर्गिज़ पेश नहीं कर सकता जो नामाकूल हों। मेरे ख़याल में पहले एडीशन के लिये आप बीस फ़ीसदी रखें और बक़िया दो एडीशनों के लिये दस फ़ी सदी। यानी कुल रक़म तीन सौ पचास रुपये होती है। यह हिसाब मैंने कुल उमूर को मद्देनज़र रखकर पेश किया है और मुझे यक़ीन है कि आप को नागवार न होगा।

आपकी मजमूए की निस्बत क्या राय है।

'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा अव्वल के एक सौ बारह सफ़हात छपे हैं। अभी लम्बी सफ़हात बाक़ी हैं। हिस्सा दोयम की किताबत ख़त्म हो गयी या नहीं। काग़ज़ आज कल बेहद गराँ हो रहा है। एक तो यह काम यूँ ही नुक़्सानात से पुर[3] था उस पर ये मज़ीद[4] आफ़तें शायद इसे तबाह ही कर छोड़ें। मजबूरन नफ़ासत के ख़याल को तर्क करना पड़ा। मेरे ख़याल में तसनीफ़ की इशाअत को नफ़ासत पर क़ुर्बान न करना चाहिये।

'शबाबे उर्दू' निकला ज़रूर मगर मेरी नज़र से नहीं गुज़रा। हज़रते नसिर ने भेजा है। कहीं गोरखपुर में पड़ा होगा। यहाँ दफ़्तर 'ज़माना' में भी इसका पता नहीं। ख़ैर फिर देख लूँगा। उर्दू में किताबें बहुत कम बिकती हैं। मालूम नहीं यह मेरा ही तजरबा है या और लोगों का।

'प्रेम पचीसी' हिस्सा दोयम की जिल्दें अगर दरकार हों तो मैं आपके पास भेजता हूँ। किसी तरह यह एडीशन ख़त्म हो जाये तो दूसरी बार ज़्यादा एहतियात और सफ़ाई से छपवाने की कोशिश की जाय।

और तो कोई ताज़ा ख़बर नहीं है। यहाँ जेठ के महीने में बारिश हो गयी। अप्रैल में दो-चार दिन गर्मी हुई थी। मगर बस मई से फिर गर्द सर्द होती है और दिन को भी लू का पता नहीं। इरादा था कि देहरा जाऊँ। मगर जब यहीं देहरा हो रहा है तो नाहक़ सफ़र की ज़हमत कौन उठाये। हाँ कह नहीं सकता जून क्या रंग लाये। कुछ लोगों का गुमान है कि जून में शिद्दत की गर्मी होगी।

वस्सलाम

धनपतराय

---

१ आज्ञा पालन २ असमर्थ ३ भरा हुआ ४ अतिरिक्त

८५

नार्मल स्कूल गोरखपुर
१४ जुलाई १९१९

बरादरम

तसलीम। आप के दो नवाजिशनामे एक साथ आये। मशकूर हूँ। तबादले[1] मजामीन का मुझे अफ़सोस इसलिये है कि आपका क़िस्सा अधूरा रह गया और खुशी इसलिये कि हमारे दरमियान कोई रूहानी[2] या बातिनी[3] ताल्लुक़ ज़रूर है वर्ना औरों को यही बातें क्यों नहीं सूझीं। पर आप अपना क़िस्सा ज़रूर तमाम करें। हर गुले रा रंगो बू दीगर[4]।

संस्कृत लिटरेचर पर लिखने का मैंने इरादा किया था। मगर उसके लिये जो मवाद जमा किया था वह सब इधर-उधर हो गया। अब बिहारी के मुताल्लिक़ कोई मज़मून अनक़रीब[5] भेजूँगा।

'प्रेम पचीसी' के लिये आप नक़द हिसाब कर दें तो ज़्यादा बेहतर। कुल क़ीमत पर चालीस फ़ीसदी कमीशन और सिर्फ़ रेल कटा कर लें। यूँ बीस रुपये निकलेंगे। क़िस्सं का हिसाब मिला कर तीस रुपये का मनीआर्डर इरसाल फ़रमा दें तो ऐन इनायत हो।

मैं अब तक आप से अपने मज़मूनों के लिये दस रुपया लिया करता था। मुझे अब भी कोई इन्कार नहीं है। मगर चूँकि बाज़ दीगर रसाइल इससे बेहतर शरायत करने पर आमादा हैं इसलिये मुझे एहतमाल[6] है कि मेरा नफ़्स[7] कहीं इन शरायत पर फ़रेफ़्ता[8] न हो जाये और मुझे अपनी ख़्वाहिश के ख़िलाफ़ अपने अच्छे मज़ामीन उनके पास भेजने के लिये मजबूर न करे।

'सुबहे उम्मीद' के मुहतमिम मुतवातिर ख़ुतूत आ रहे हैं और वह मुझे पन्द्रह रुपये से बीस रुपये तक नज़्र कर रहा है। अब मुझे मजबूरन उसके शरायत मंज़ूर करने पड़े वर्ना आपने देखा होगा कि मैंने अब तक उसमें एक सतर भी न लिखी थी। अब किस हीले से इन्कार करूँ। यह सब गुज़ारिश आपसे महज़ दिली ताल्लुक़ के बाइस कर रहा हूँ।

मैं हर्गिज़ यह नहीं कहता कि आप भी मुझे पन्द्रह रुपये दिया करें। अपने क़दीम[9] समझौते पर क़ाने[10] व शाकिर हूँ। पर अगर मेरे मज़ामीन 'सुबहे उम्मीद' में निकलें और मुझ जैसा सुस्त-क़लम आदमी 'कहकशाँ' में इससे भी ज़्यादा तसाहुल[11]

---

१. इस्तबार २. आत्मिक ३. छिपा हुआ ४. हर फूल का अपना अलग रंग और बू होती है ५. जल्द ६. डर ७. मन ८. आकृष्ट ९. पुराने १०. संतुष्ट ११. ढील

करें तो मुझे मशकूर ख़याल फ़रमाइयेगा।

मेरी वज़ा या क़ता[1] और शक्लो-शबाहत[2] के मुताल्लिक़ आपने जो क़यास किया है उससे रूहानी ताल्लुक़ का गुमान और भी पुख़्ता हो जाता है। बेशक मेरा सिन चालीस साल है। मैं बन्द कालर का कोट और सीधा पाजामा पहनता हूँ और पगड़ी बाँधता हूँ। एक पूरबी आदमी का पहनावा फ़ल्ट कैप है। आपने पगड़ी का गुमान क्यों किया। क्या आपको इल्हाम[3] हुआ है। मैं अपने १५ मुसल्लमी उसूलों के ख़िलाफ़ अपना एक फ़ोटो भी इरसाले ख़िदमत करता हूँ इस शर्त पर कि वह बाद मुलाहज़ा वापिस कर दिया जाये। और या अगर आप बतौर एक दोस्त की यादगार के रखना चाहें तो उसका किसी आर्टिस्ट से एक बड़े पैमाने का बस्ट बनवा लें।

और क्या अर्ज़ करूँ।

कहकशाँ का इन्तज़ार है।

रवीन्द्र बाबू की कौन-कौन-सी तसनीफ़ के तर्जुमे जनाब के दफ़्तर से शाया होनेवाले हैं?

अबकी 'ज़माना' जुलाई में रवीन्द्र पर एक दिलचस्प मज़मून निकल रहा है। आपकी नज़र से गुज़रेगा।

जनाब क़िब्ला सय्यद मुमताज़ अली साहिब की ख़िदमत में मेरा दस्तबस्ता आदाब क़ुबूल हो

नियाज़मन्द

प्रेमचंद

८६

नार्मल स्कूल, गोरखपुर

१ जुलाई १९१९

मेहरबान बन्दा

तसलीम। जितनी ही इनायतों की माफ़ी का ख़्वास्तगार हूँ। आज दो माह के बाद यहाँ आया हूँ और कामिल चार माह के बाद क़लम उठाया है। दो महीने तो इधर उधर आवारा फिरता रहा दो महीने इम्तहान की नज़र हुए मगर मेहनत ठिकाने लगी। अब मुस्तक़िल तौर पर काम करूँगा।

एक मुख़्तसर सा क़िस्सा इरसाले ख़िदमत है। पसन्द आये तो रख लीजिए। 'बाज़ारे हुस्न' का ज़िक्र करते हुए शौक़ मालूम होता है, इसलिये अब बारे न

१ रंग-ढंग २ सूरत-शक्ल ३ दैवी प्रेरणा

करूँगा।

'प्रेम पचीसी' की सात जिल्दें बनारस से भेजी थीं। आपने रसीद से इत्तला नहीं दी या दी हो तो मुझे मिली नहीं। उम्मीद है कि आपके दफ्तर से यह किताबें जल्द निकल जायेंगी।

और क्या अर्ज़ करूँ। यहाँ कुछ ख़फ़ीफ़-सी बारिश हुई है पर ज़रूरत से बहुत कम। शुक्र है कि पंजाब में अब सुकून हुआ। कल मैंने 'अम्मा' को ख़ास तौर से पढ़ा। मुसन्निफ़ ने ख़ूब लिखा है। अगर कोई हिन्दू साहब हैं तो ख़ैर। और अगर मुसलमान साहिब हैं तो उनकी क़लम की दाद देता हूँ। क़िस्सा ख़ूब बनाया गया है। औक़ात का कैरेक्टर क़ाबिले तारीफ़ है। मैंने इस क़िस्से का हिन्दी में तर्जुमा करने का क़स्द कर लिया है।

उम्मीद है कि आप बख़ैरो आफ़ियत होंगे। जवाब से जल्द सरफ़राज़ फ़रमाइयेगा हालाँकि इसका मुझे इस्तहक़ाक़[1] नहीं।

मुख़्लिस
धनपतराय

८७

गोरखपुर
११ अगस्त १९१९

मुख़्लिसे मन

तसलीम। लिफ़ाफ़ा मिला। मशकूर हूँ। माह-जून के पर्चे ख़ूब पढ़े और हज़ उठाया। मैं बिला मुबालग़ा कहता हूँ कि ऐसा दिलचस्प रिसाला इस वक़्त उर्दू ज़बान में नहीं है। पब्लिक अगर क़द्र न करे तो मजबूरी है। बिलख़ुसूस 'ईर्का और अस्ल मनशा' पर जो मज़मून जनाब सैयद मुमताज़ अली साहब ने तहरीर फ़रमाया है वह रिसाले की जान है। इन मौज़ूआत पर ऐसा साफ़ और रौशन मज़मून मेरी नज़र से नहीं गुज़रा। मुझे अब तक न मालूम था कि हज़रते मम्दूह इल्मी मज़ामीन में इतनी दस्तरस[2] है। कुछ ज़्यादा दिलचस्प नहीं लेकिन 'शबनम की सरगुज़श्त' बहुत अच्छा है। 'गुलकदे' पर उर्दू रिसालों में कोई मुख़ासिमाना[3] तनक़ीद नहीं निकली। इस लिहाज़ से व नीज़ तनक़ीद की ख़ूबी के एतबार से आपका रिसाला अव्वल है। उर्दू के नक़्क़ाद पर अच्छी चोट की है, हालाँकि किसी क़दर ग़ैर-मुख़्लिसाना है। 'आलमे ख़्वाब' मुझे बहुत पसंद आया। 'इलाज बे-दवा' ख़ूब है। मालूम नहीं तबाज़ाद है या कुछ और। हिस्साए नज़्म भी

१ हक़ २ अधिकार ३ विरोधात्मक

बीयर रिसालों से कहीं बेहतर है। मैं तारीफ़ करने का आदी नहीं हूँ, हक़ का इज़हार कर रहा हूँ। गुमनाम साहब तो बड़े सिक्काड़ मालूम होते हैं और हक़ यह है कि खूब लिखते हैं।

'प्रेम पचीसी' हिस्सा दोम की सौ जिल्दें आपके यहाँ भिजवा दी हैं। 'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा अव्वल छप रही है। ग़ालिबन दो महीने में तैयार हो जायगी। क्या 'बत्तीसी' का हिस्सा दोम अपने एहतमाम से नहीं शाया कर सकते? 'बाज़ारे हुस्न' तो अभी मालूम नहीं कब तक तैयार हो। इस असना में अगर 'बत्तीसी' हिस्सा दोम आप शाया कर सकें तो खूब हो। कुछ क़िस्से आप ही के दोनों पर्चों में निकले हैं। बक़िया दस में दे दूँगा। कोई दस जुज़ की किताब होगी। आपके लिए एक क़िस्सा लिख रहा हूँ। ख़ूने जिगर तो बहुत सर्फ़ कर रहा हूँ पर मालूम नहीं कुछ रंग भी आयगा या नहीं। ख़ून ही नहीं है तो रंग क्या ख़ाक पैदा हो! और क्या इल्तमास[1] करूँ। अपने वालिद साहब क़िब्ला की ख़िदमत में मेरा दस्तबस्ता सलाम कहियेगा। ख़त के सुतूर से ऐसा ख़ुलूस[2] टपकता है कि बे-अख़्तियार मिलने को जी चाहता है। पर गुलामी की क़ैद और सफ़र की दराज़ी हिम्मत तोड़ देती है।

वस्सलाम

नियाज़मंद
धनपतराय

८८

नार्मल स्कूल, गोरखपुर
१० सितंबर १९१९

बिरादरम

तसलीम। 'ज़ंजीरे हवस' कोई तारीख़ी वाक़या नहीं है और न किसी तारीख़ी वाक़ये से इसका बराएनाम भी ताल्लुक़ है। क़ासिम वाक़ई फ़ातिहे सिंध का नाम है और उसकी ज़िन्दगी में एक वाक़या ऐसा है भी जो क़िस्से में लाया जा सकता है लेकिन इस क़िस्से को उससे ताल्लुक़ नहीं। यहाँ तक कि मैंने देहली के किसी बादशाह का नाम भी नहीं लिया ताकि किसी को ग़लतफ़हमी न हो — न मुल्तान के फ़र्मांरवा[3] का नाम लिया है। इसमें यह दिखाना मेरा मक़सूद है कि इंसान हवस के हाथों कितना अंधा हो जाता है और यह हवस किस तरह तेज़ी से बढ़ती जाती है और कुछ नहीं।

---

१ प्रार्थना २ सच्चा प्रेम ३ शासक

अब बाज़ारे हुस्न के मुताल्लिक़ — यह नाविल तक़रीबन तीन सौ सफ़्हात का होगा। लिखा हुआ तैयार है मगर महज़ अदीम-उल-फ़ुरसती[1] के बाइस[2] साफ़ न कर सका। अगर आप इसकी बाबत किताब छाप सकें तो मैं साफ़ करना शुरू करूँ वर्ना अभी गर्मी की तातील तक मुल्तवी रखूँ। आपको साफ़ करने की तकलीफ़ न दूँगा क्योंकि साफ़ करने में अक्सर किस्से के सीन के सीन पलट जाते हैं। इस किस्से में मैंने एक अख़लाक़ी[3] बेशर्मी यानी बाज़ारे इस्मतफ़रोशी[4] पर चोट की है। अगर आप यूँही देखना चाहें तो इसके मुताल्लिक़ मसव्वदा[5] आपके पास भेज दूँ। मुआवज़े के मुताल्लिक़ किस्सा जब आप देख लेंगे तब। 'कहकशाँ' के लिए मैंने पहले अर्ज़ की थी कि मैं आइन्दा कई माह तक बहुत कम लिख सकूँगा। मगर इंशा अल्लाह कोई मौक़ा निकाल कर आपके इरशाद की तामील करूँगा।

बारिश इधर भी ज़्यादा हुई है और फ़सलें ख़राब हो गई हैं। जवाब से मुम्ताज़ फ़र्माइए।

नियाज़मन्द
धनपतराय

८६

नार्मल स्कूल गोरखपुर
११ सितम्बर १९१६

जनाब बन्दानवाज़

तसलीम। नवाज़िशनामे के लिए मशकूर हूँ। आप कहकशाँ के हर नम्बर के लिये कुछ लिखने को कहते हैं। और कई माह से एडीटर साहब ज़माना नाराज़ हैं इसलिए कि मैं अपने मज़ामीन दूसरे रिसालों को क्यों देता हूँ। उनकी रज़ा-जोई[6] भी ज़रूरी है। उस पर अपने कारे-मनसबी[7] के अलावा ये मेरी उलझनें सेहत नाक़िस[8] जुदा ही हाइल हैं।

मैंने "प्रेम पचीसी" के दोनों हिस्से ख़ुद ही शाया किये थे। लेकिन पब्लिशर और मुसन्निफ़ दो जुदा-जुदा हस्तियाँ हैं। मुझे इस काम में घाटा रहा। क्या यह मुमकिन है कि लाहौर में मेरे प्रेम बत्तीसी के लिए कोई पब्लिशर मिल जाये। मैं अपने ३२ कहानियों के मजमूए को दो हिस्सों में निकालना चाहता हूँ। दोनों हिस्से मिलकर ग़ालिबन ६०० सफ़्हात की किताब होगी। इसमें ५०

---

१ फ़ुर्सत न होने २ कारण ३ नैतिक ४ वेश्या वृत्ति ५ [illegible]
६ ख़ुश रखना ७ ड्यूटी ८ बुरी

जिल्दें मैं लागत की कीमत पर खरीद सकूँगा। मगर तो उर्दू के पब्लिशरों का क़हत है। एक नवलकिशोर है। उसने इशाअत का काम बन्द-सा कर रखा है। मगर आप की माफ़त कुछ इन्तज़ाम हो सके तो फ़र्माइयेगा। क़िस्से सब 'ज़माना' और दूसरे रसायल में शाया हो चुके हैं। सिर्फ़ इन्तख़ाब[1] और तरतीब देना बाक़ी है। इसमें मेरी गरज़ सिर्फ़ इतनी है कि किताब शाया हो जाय और उसकी हस्ती महज़ अख़बारी न रहे। मुझे जो कुछ ख़्वाहे क़लील मिल रहेगा उसी पर शाकिर रहूँगा।

एक और तकलीफ़ देता हूँ। लाहौर में किताबत और छपाई का निर्ख़ क्या है? इससे भी मुत्तला फ़रमाइये। अगर मैं 'प्रेम बत्तीसी' बारह पौंड के काग़ज़ पर छपाऊँ तो ३२ जुज़ की किताब पर क्या लागत आयेगी। मुमकिन है छपाई अरज़ाँ[2] पड़े तो मैं ख़ुद ही जुर्रत कर जाऊँ।

एक ताज़ा क़िस्सा 'हुब्बे अकबर' इरसाले ख़िदमत है। पसन्द आये तो रख लें। आपने 'ज़माना' के जिस मज़मून की तरफ़ इशारा किया है उसका नाम 'मंज़िले मक़सूद' है। वह मुझे ख़ुद भी इन्तहा पसन्द है और चाहता हूँ उसी रंग में फिर कुछ लिखूँ। पर क़लम नहीं चलता। 'प्रेम पचीसी' हिस्सा दोयम में वह छप गया है। उम्मीद है कि जनाब सैयद मुमताज़ अली साहिब क़िब्ला बख़ैरियत होंगे। उनकी ख़िदमत में मेरा सलाम अदा कीजियेगा।

वस्सलाम

धनपतराय

९०

नार्मल स्कूल गोरखपुर
२५ सितम्बर १९१९

मुशफ़िक़े मन

तसलीम। 'कस्तूरी' आपकी ख़िदमत में दस्तबस्ता हाज़िर होता है। इस पर निगाहे करम कीजिये। यह इस अम्र का सबूत है कि मज़ामीन के हुक़ूक़ के मुताल्लिक़ मैं ज़रा भी ×× नहीं हूँ। मगर 'कस्तूरी' इस शराफ़त की हम लाज रखेगा। यह 'प्रेम बत्तीसी' का पहला क़िस्सा है। 'कहकशाँ' का हुस्न अव्वल इशाअत के साथ ख़त्म हो जायगा। ख़ैर यह बत्तीसी कब तक ख़त्म होता है। ग़ालिबन दो साल लगेंगे।

'प्रेम पचीसी' और 'प्रेम बत्तीसी' के मुताल्लिक़। बत्तीसी का पहला

---

१ चुनाव   २ सस्ता

हिस्सा छप रहा है। आपने शराफ़त का बार मुझ पर डाला है। मैं चाहता था कि इसका फ़ैसला आप खुद कर सकते। 'प्रेम पचीसी' आइन्दा इस साल में ग़ालिबन दो एडीशन निकल सकेंगे। अगर आप मतबूआ क़ीमत पर मुझे पन्द्रह फ़ी सदी दें और फ़ी एडीशन एक हज़ार कापियाँ रखें तो बहिसाब एक रुपये चार आना फ़ी नुस्ख़ा मुझे कमोबेश एक सौ अस्सी रुपये मिलते हैं। बाक़ी चौदह सौ पचास रुपये पर पन्द्रह फ़ी सदी। और दो एडीशन के इसी हिसाब से तीन सौ साठ रुपये हो जायेंगे। चूँकि आप को मुद्दते दराज़ तक किताबें बेचने के बाद नफ़ा होगा इसलिए इस तीन सौ साठ रुपये में आप तख़फ़ीफ़ का मुतालिबा कर सकते हैं। यह आप शौक़ से करें। 'बत्तीसी' के तीन एडीशन होंगे। आपके क़िस्से निकालने के बाद मेरे लिए यह भी पचीसी ही रह जायगी और उसी पुराने हिसाब से मुझे पाँच सौ चालीस रुपये मिलने चाहिए। इसमें भी आइन्दा और हाल का ख़याल करके मुझे जो तख़फ़ीफ़ चाहें करें। मैं उस पर खुद ग़ौर करूँगा। आप बिला तकल्लुफ़[1] अपना ख़याल ज़ाहिर फ़रमायें।

'बाज़ारे हुस्न' में ताख़ीर हुई। यह ख़याल हुआ कि दस दिन की तातील रही है। मुमकिन है मुख़्तसर और मुकम्मल हो जायें तो इकट्ठा भेजूँ। इसलिए रोक लिया है।

मैंने इन्हीं दिनों एक और क़िस्सा लिखा है 'आत्मा राम'। यह ज़माना में भेज रहा हूँ। वह इस क़दर हिन्दू हो गया कि 'कहकशाँ' के लायक़ नहीं। आप खुद हिन्दू सही लेकिन आप के नाज़रीन[2] तो हिन्दू नहीं हैं।

'दफ़्तरी' बिल्कुल नाइफ़ से लिया गया है। तर्जुमा[3] का बहुत कम वक़्त है। मुमकिन है कि वह ख़ुश्क मालूम हो। आप बिला तकल्लुफ़ वापिस फ़र्मा दीजियेगा। मुझमें एक ख़ास ऐब यह है—और वह उम्र के साथ बढ़ता जाता है—कि मैं कहानियों में हुस्न-ओ-इश्क़ की चटपटी चाशनी नहीं दे सकता। वह दिन अब नहीं रहे। हज़रते नियाज़ की-सी ज़बान तबीयत कहाँ से लाऊँ। और क्या अर्ज़ करूँ।

एक बात आप से राज़ की कहता हूँ। मुझे 'पचीसी' और 'बत्तीसी' के लिए चौदह फ़ी सदी का आफ़र हो चुका है और बग़ैर तअम्मुल[4] आइन्दा व हाल। रवीन्द्र बाबू को मैकमिलन बीस फ़ी सदी देता है। मैं रवीन्द्र बाबू नहीं हूँ। इसलिए बारह और बीस के दरमियान १६ पर राज़ी होना चाहता हूँ।

वस्सलाम
धनपतराय

---

१ बेहिचक   २ पाठक   ३ अनुवाद   ४ [illegible]

९१

गोरखपुर
१२ अक्तूबर १९१९

बिरादरम

तसलीम। मिज़ाजे सामी। अम्मा देखी। खूब है। जिस क़लम से अदा निकल सकती है उससे ज़्यादा मुझे रुकावट[1] का अन्देशा हो तो काबिले मुआफ़ी है। बक़िया का इश्तियाक़[2] है। छोटी कहानियों को कई हिस्सों में बाँटने से लुत्फ़ जाता रहता है।

रुपये मिल गये। ममनून हूँ। पैमाना वफ़ा अहबाबे क़दीम के नज़्र हुआ। आपके लिये दूसरी फ़िक्र करूँगा।

'बाज़ारे हुस्न' रफ़्ता रफ़्ता साफ़ हो रहा है। इरादा है कि एक मुहर्रिर रखकर काम जल्दी से ख़त्म कर डालूँ।

ज़्यादा वस्सलाम

मुख़लिस
धनपतराय

९२

१० नवम्बर १९१९

जनाब मुकर्रमे बन्दा

तसलीम। मैं यहाँ तीन दिन से आपका इन्तज़ार कर रहा हूँ। मगर ग़ालिबन आप लखनऊ से वापिस आ गये। मेरी बदनसीबी। अब बत्तीसी हिस्सा दोम के लिए मैंने कौन-कौन से क़िस्से तसलीम किये थे उनकी एक फ़ेहरिस्त मुझे भेज दीजिये। मुझे याद नहीं आता। मिस्तर इक्कीस सतरी ही होना चाहिए। इस मिस्तर पर हिस्सा अव्वल छप रहा है। काग़ज़ मैंने हिस्सा अव्वल के लिए बीस पौंड लगाया है। अगर आप भी यही काग़ज़ लगायें तो दोनों हिस्सों में यक्सानियत आ जाय और तब क़ीमत भी यकसाँ रखी जा सकेगी। घटिया काग़ज़ लगाना बेजोड़ होगा।

मेरी शर्तें क्या थीं इसकी भी एक नक़ल दरकार है। मेरा हाफ़िज़ा[3] नाक़िस[4] है और मामलात का नोट भी नहीं रखता। आज 'कहकशाँ' दोनों सितम्बर और अक्तूबर मिले। खूब है। पढ़कर तनक़ीद करूँगा।

---

१ रोक २ चाव ३ स्मरणशक्ति ४ [illegible]

बाज़ारे हुस्न' के तीन सौ मुसव्वदात हो गये। सिर्फ़ दो सौ और बाक़ी हैं। आप को अगर फ़ुरसत हो तो मैं यह तीन सौ मुसव्वदात भेजा करूँ। अब तक आप देखेंगे कातिब लिखेगा उस वक़्त तक मैं दो सौ मुसव्वदात पूरे कर दूँगा [illegible] रोज़ाना के हिसाब से दो-एक माह का काम है। 'ख़ूने हसरत' से हज़रते 'तमद्दुन' कितने मजरूह[1] हुए। देखो आपने इन साहबों की मुसमतरिसो[2]। यहाँ मुझे न मुझे यहाँ तहरीर डालने की कोशिश की जाती है। इनका जवाब मैंने लिखकर 'तमद्दुन' को भेजा है। अगर छपा तो ठीक वर्ना 'ज़माना' में निकलेगा। क़िस्सा सैयद मुमताज़ अली के दिमाग़ में ग़ालिबन फ़लसफ़ा यानी मसाइल का ज़ख़ीरा मौजूद है। हर माह निकलता ही आता है। इस मौज़ू पर उन्हें निहायत मुहक़्क़ि-क़ाना[3] दस्तगाह[4] है। जनवरी से रिसाला 'ज़माना' में रंगीन तस्वीरें भी होंगी। आपने मुझ से कुछ जनवरी के लिए माँगा है। मैं मुस्तक़िल वादा नहीं कर सकता क्योंकि मैं आजकल अपने मरोज़ नाविल में दिलोजान से लिपटा हुआ हूँ। इसे दिसम्बर इकत्तीस तक ख़त्म करना चाहता हूँ। ज़्यादा वस्सलाम। जवाब से जल्द याद फ़रमाइयेगा।

मुख़लिस
धनपतराय

६३

जनाब मुशफ़िक़ी

गोरखपुर,
१६ दिसम्बर १९११

तसलीम। प्रूफ़ और मुआहिदानामा कई रोज़ गुज़रे मिले। काग़ज़ बुरा नहीं है। इसी पर छपने दीजिये। छपे हुए फ़ार्म रद्द कर देने से नुक़सान होगा। मगर काग़ज़ इससे कहीं बेहतर है। लेकिन कोई मुज़ायक़ा नहीं। सस्ता काग़ज़ रहेगा तो किताब भी सस्ती होगी। मिस्तर यही रहना चाहिए, मगर कातिब को ताकीद कर दी जाये कि मज़ामीन हमेशा नई सतरों से शुरू किया करें। फ़ेहरिस्त ज़रूर रवाना फ़रमाइयेगा। 'कहकशाँ' सितम्बर और अक्तूबर दोनों मिले। बेहतरीन मज़मून मौलाना साहब क़िब्ला का है। इन मौज़ूआत पर ऐसे आले मज़ामीन मेरी नज़र से नहीं गुज़रे। 'हिजाबे उलफ़त' खूब है। हाँ प्लाट कमज़ोर है और कहीं-कहीं मकालमात[5] बयान क़ायम नहीं रहने पाती है। दीगर मज़ामीन औसत दर्जे के हैं। अलबत्ता 'इसरार' बिल्कुल तारीख़ी मज़मून है।

---

१ नाराज़ २ मज़हका ३ पांडित्यपूर्ण ४ अधिकार ५ पक्की ६ बातचीत

इससे अवाम को क्या दिलचस्पी होगी। मैं अनक़रीब चार्ल्स डिकेन्स का एक क़िस्सा भेजूँगा। शानदार[1] क़िस्सा है। तर्जुमा मुकम्मल है। अदीम-उल-फ़ुर्सती के बाइस एक साहिब से नक़ल करा रहा हूँ। बत्तीसी का काम जारी रखियेगा ताकि हिस्सा अव्वल व दोम साथ-साथ निकलें। 'बाज़ारे हुस्न' की कापी भी क़िस्सए मौऊदा[2] के साथ रवानए ख़िदमत होगी।

'एक रात' मुझे बहुत पसन्द आया। ज़ोरे बयान है इसकी हुस्न ज़ाहिर। रसाइए फ़िक्र[3] की दाद देता हूँ। कुछ 'ख़्वाबे परीशाँ' से मिलता हुआ मालूम होता है। तस्वीरें कई बहुत ख़ूब हैं। वस्सलाम

नियाज़मंद
धनपतराय

९४

गोरखपुर,
११ फ़रवरी १९२०

भाईजान

तसलीम।

ख़ुतूत का जवाब देने में देर हुई। मुआफ़ कीजियेगा।

इस्लाह हस्बे मंशा इरसाले ख़िदमत है। इसे आप कहानी की निगाह से नहीं ख़यालात की निगाह से देखने की इनायत कीजियेगा।

चन्द नज़्में मुंशी गोरखप्रसाद 'इबरत' मरहूम की भी इरसाल हैं। पसन्द आयें तो दर्ज कीजियेगा।

जनवरी नम्बर मिला। हस्ब मामूल क़िब्ला मुमताज़ अली का मज़मून बेहतरीन है। बहैसियत मजमूई बहुत ही अच्छा नम्बर है। नज़्म का हिस्सा ख़ास तौर पर दिलकश है। तपिश और अख़्तर की ग़ज़लों में ख़ूब लुत्फ़ आया।

'बाज़ारे हुस्न' का गुजराती एडीशन निकल रहा है। ख़ूब-ख़ूब तस्वीरें निकल रही हैं। आप चाहेंगे तो ब्लाक किराया हुआ मुख़्तसर[4] एडीशन निकल जायगा और मज़ा।

'दुर्गा का मन्दिर' 'कहकशाँ' में छपा था। 'कहकशाँ' के फ़ाइल में देखें। मिल जाये तो बेहतर। वर्ना मुझे इत्तला दीजिये। नक़ल करके भेज दूँ।

'नेकी की सज़ा' हिन्दी में निकला था। इसका मुसव्विदा[5] भी मेरे पास

---

१ अच्छा २ वादा किये हुए ३ कल्पना की पहुँच ४ संक्षिप्त ५ मसौदा

है। सिर्फ़ नक़ल करने की ज़रूरत है। 'ईमान का फ़ैसला' और 'फ़तेह' आपकी ख़िदमत में पहुँच गये होंगे। उजलत में हूँ। मुआफ़ कीजियेगा।

नियाज़मंद
धनपतराय

सैयद इम्तियाज अली ताज को खत् ११२ ११२१

९५

मुश्फ़िक़ी

गोरखपुर
२४ मार्च, १९२०

तसलीम। यह ख़ामोशी क्यों? दो ख़त लिखे जवाब नदारद। प्रेम पूर्णिमा भेज दी रसीद नदारद। मसौदा तैयार है। जल्द रवाना कीजिए। मार्च का रिसाला देखा। मौलाना राशिद और हज़रत नियाज़ दोनों साहबों के मज़ामीन क़ाबिले दाद हैं। ख़ूब लुत्फ़ आया।

मसूरी चलने की दावत दी थी। मैं तैयार हूँ। मगर आप दावत करके भूल गए। जल्द फ़ैसला कीजिए ताकि उधर से मायूसी हो तो मैं देहरादून जाने का इरादा कर लूँ। और तो कोई ताज़ा ख़बर नहीं। 'प्रेम बत्तीसी' का क्या हाल है? कितनी हुईं और कितनी बाक़ी हैं? बाज़ारे हुस्न के अब कुल अठतीस सफ़हात बाक़ी हैं। पहली अप्रैल को आपके पास रजिस्टर्ड पहुँच जायगी।

वस्सलाम
धनपतराय

९६

मुश्फ़िक़ी

गोरखपुर, नार्मल स्कूल
१४ अप्रैल, १९२०

तसलीम। मुख़्तसर ख़त मिला लेकिन मुफ़स्सल जवाब उस वक़्त दूँगा जब आप 'बाज़ारे हुस्न' तमाम-ओ-कमाल[1] पढ़ चुकेंगे। उसके मुतअल्लिक़ आपने जो कुछ फ़रमाया वह सब आपकी क़द्र-अफ़ज़ाई है। मैं बहुत ममनून हूँगा अगर आप उस पर अपनी मुफ़स्सल तब्सिराना राय से मुझे मुत्तला फ़रमायें। इसमें

[1] पूरा

मालूम होने की कौन बात है। नक्क़ाद[1] है कहाँ? मुझे तो इसकी आरज़ू रहती है कि कोई मुझे खूब नेक-ओ-बद समझाए। इसकी तबाअत हक़-उल-तसनीफ़ वगैरह के मुताल्लिक आप मुझसे कहीं बेहतर फ़ैसला कर सकते हैं। क़िब्ला सैयद मुमताज़ अली साहब को मेरी जानिब से सालिस[2] बना लीजिएगा। मुक़द्दमा आपके लिए लिख रहा हूँ मई में खर्च हो सकेगा।

वस्सलाम

धनपतराय

६७

गोरखपुर

२१ अप्रैल १९२०

मुशफ़िक़े मन

तसलीम। नवाज़िशनामा मिला। 'बाज़ारे हुस्न' आप शाया करें। शरायत के मुताल्लिक यह अर्ज़ है कि आप पहले एडीशन के लिये मुझे बीस फ़ी सदी रायल्टी अदा फ़रमायें। पहला एडीशन बारह सौ नुस्ख़ों का हो। गालिबन सवा रुपया क़ीमत रखी जाय। मुझे २४० जिल्दें मिलेंगी। यह जिल्दें बजाय मुझे जिल्दों की सूरत में दे दें या रुपये की सूरत में। रुपये की सूरत में देने से वही कमीशन जो मैं किसी दूसरे बुकसेलर मसलन रिसाला 'ज़माना' को दूँगा आपको अदा कर दूँगा। अगर आप इसे पसन्द न फ़रमायें तो आप मुझे जिल्दें ही दे दें। मैं किसी तरह बेच या बिकवा लूँगा। अगर इन सूरतों में कोई पसन्द न हो तो मुझे पहले एडीशन के लिए दो सौ पचास रुपये अदा फ़रमायें। हिन्दी में मुझे पाँच सौ रुपये मिले थे। दूसरे एडीशन के मुझे सौ रुपये मिले। आप जिस तरह चाहें फ़ैसला करें। दो सौ पचास रुपये गालिबन ज़रूरत से ज़्यादा मुतालबा[3] नहीं है। मेरी डेढ़ साल की मेहनत और जामाफ़रसाई[4] का नतीजा यह किताब है। अगर यह सब शर्तें आपको नागवार मालूम हों तो अपनी मर्ज़ी के मुताबिक किताब शाया करके मुझे जो चाहें दे दें। मैं आपका मशकूर हूँगा। मुझे यह सख्त ज़िल्लत मालूम होती है कि अपनी किताब के लिए पब्लिशरों की ख़ुशामद[5] करता फिरूँ।

'प्रेम बत्तीसी' क़िस्सों का क़िस्सा 'सूबे मतबअ मसरूफ़' है। पहला हिस्सा अनक़रीब तैयार है। दूसरा हिस्सा भी चन्द दिनों तक तैयार। मालूम नहीं बाज़ार दस्तयाब[6] हुआ या नहीं। मेरे हिन्दी पब्लिशर कलकत्ते में आजकल

१. आलोचक २. पंच ३. मांग ४. दिमाग खपाई ५. चिरौरी ६. मिला

लिए हर एक क़िस्म का काग़ज़ सुभीते के साथ भेजने पर आमादा हैं। सिर्फ़ क़ीमत पेशगी दरकार होगी। अगर आप इसे मंज़ूर फ़रमायें तो काग़ज़ आ जायगा। आर्डर वग़ैरा इस पते से दे सकते हैं। मेरा हवाला देना ज़रूरी होगा

श्रीयुत महावीर प्रसाद पोद्दार
हिन्दी पुस्तक एजेंसी
१२६ हरीसन रोड कलकत्ता।

मुंशी योगेश्वरप्रसाद साहब 'हसरत' मरहूम की नज़्म 'आहे मिस्कीं' आपने शाया की। इसके लिए शुक्रिया क़बूल फ़रमाइये। अभी इनका कलाम आप के पास ग़ालिबन पाँच नज़्में और दो नज़्म हैं। इन्हें भी शाया कर दें। और इस नज़्म की एक-एक कापी बराहे करम दीन के पते से भेजा फ़रमायें

बाबू रघुपति सहाय
पार्सी भवन गोरखपुर यू॰ पी॰।

यह साहब ज़िन्दादिल आदमी हैं और उम्मीद है कि आपकी तवज्जुहात से हिम्मत पाकर 'कहकशाँ' की कुछ ख़िदमत कर सकेंगे। इस कलाम की इशाअत का मंशा सिर्फ़ यह है कि रसायल में शाया[2] हो जाने के बाद इसकी किताबी सूरत शाया हो। इसलिए जिस क़दर जल्द मुमकिन हो सके इन्हें आप निकाल दें।

आजकल क़लम बिल्कुल सुस्त है। एक क़िस्सा बिल्कुल अधूरा पड़ा हुआ है। सुबह का मदरसा हो गया है। दस बजे लौटकर फिर चार बजे तक बैठने की हिम्मत नहीं होती। और यह वक़्त अख़बारबीनी[3] का है न कि तसनीफ़[4] का।

ज़्यादा वस्सलाम। जवाब जल्द से जल्द सरफ़राज़ फ़रमायें।

नियाज़मंद
धनपतराय

९८

रेस्ट हाउस, नीयर रेलवे स्टेशन, देहरादून
६ जून १९२०

मुख़्लिस मन

तसलीम। मैं आजकल लखनऊ ऋषिकेश वग़ैरा का चक्कर करता हुआ देहरादून आ पहुँचा। मैंने लखनऊ से एक ख़त आपकी ख़िदमत में रवाना किया था। मालूम नहीं पहुँचा या नहीं। मुझे उसका जवाब नहीं मिला। आप इधर आने का क़स्द रखते हों तो बराहे करम एक मामूली तार से मुत्तला फ़रमाइये ताकि आपका

---

१ शायी   २ प्रकाशित   ३ अख़बार पढ़ने   ४ रचना।

इन्तज़ार करूँ। वर्ना मैं बहुत जल्द यहाँ से चला जाऊँगा। मेरी तबीयत दौराने सफ़र में ज़्यादा मुज़महिल¹ हो गयी है। आया था कि हरिद्वार की आबोहवा से कुछ फ़ायदा होगा लेकिन नतीजा इसका उलटा हुआ। पेचिश ने जिससे मेरी पुरानी दोस्ती है, बहुत दिक़ कर रखा है। इस ख़त के पाते ही अपने फ़ैसले से मुत्तला फ़रमाइए। अगर यहाँ न आ सकें तो देहली में मिलने का फ़ैसला कीजिये और मुत्तला कीजिये कि आप वहाँ कब तक पहुँचेंगे और मैं कहाँ आप से मिलूँ।

ज़्यादा वस्सलाम

नियाज़मन्द

धनपतराय

९९

नया चौक, कानपुर

१५ जून १९२०

मुख़्लिसे मन

तसलीम। आपका रजिस्टर्ड लिफ़ाफ़ा मुझे दफ़्तर 'ज़माना' में आकर मिला। अफ़सोस है कि काश यह ख़त बहराइच में मिल गया होता तो मैं आप लोगों की हमराही में मसूरी की सैर कर लेता। मुझे अबकी सफ़र में यह तजुर्बा हुआ कि मैं बग़ैर किसी रफ़ीक़ या दोस्त के तनहा नहीं रह सकता।

यह सुनकर बदरजहा² ख़ुशी हुई कि कागज़ आ गया और प्रेम बत्तीसी की किताबत मुकम्मल हो गई। अब उसे छपवा भी लीजिए। हिस्सा अव्वल भी ग़ालिबन आख़िर जुलाई तक तैयार हो जायेगा।

'बाज़ारे हुस्न' के मुताल्लिक़ अगर आपको मेरी शर्तें मंज़ूर हैं तो रुपये के लिए फ़िक्र न कीजिए। मुझे फ़िलहाल ज़्यादा ज़रूरत नहीं। आख़िर अगस्त तक भेज दें तब भी कोई हर्ज नहीं।

अब अपने गुनाह—आपके लिए दौराने सफ़र में मज़मून लिखा और भेजने ही वाला था मगर यहाँ आते ही आते वह मेरे कमरे में निकल गया। 'मेहरे-निगार' नाम था। इसमें तामीले इर्शाद के लिए माफ़ कीजियेगा। आज गोरखपुर वापस जाता हूँ। पेचिश का बाक़ायदा इलाज करूँगा। और 'रिश्ता-ए पारसा' का शुरू कर चुका हूँ जल्द ही हाज़िरे ख़िदमत होगा।

वस्सलाम

धनपतराय

---

१. गिरी पड़ी, कमज़ोर   २. बहुत

२००

भाई ताज

गोरखपुर
२४ जून १९२०

तसलीम। मैं कल यहाँ आ पहुँचा। कल आपका ख़त मिला और आज अपनी तसवीर देखी। फ़ोटो ख़ूब है। मुझे उम्मीद न थी कि आप इसे ग्रुप में से इतनी सफ़ाई से जुदा कर सकेंगे। ख़ैर, आपकी बदौलत मुझे अपनी सूरत तो नज़र आ गई।

बेहतर है आज़ारे हुस्न दो हिस्सों में शाया हो। मेरे ख़याल में भी यही तजवीज़ थी। 'सीन की लैला' का दीबाचा ज़रूर लिखूँगा मगर किताब छप जाने के बाद ग़ालिबन ज़ियादा सहूलत होगी। 'प्रेम बत्तीसी' अगर सितम्बर तक तैयार हो जाय तो मैं ग़नीमत समझूँ।

अब मज़मून की बात। मज़मून फ़िलहाल मेरे पास तो है मगर सफ़र की थकान और तबीयत के मुज़महिल हो जाने के बाइस साफ़ नहीं कर सका। इरादा था कि ख़त का जवाब और मज़मून साथ-साथ भेजूँ लेकिन फ़ोटो की रसीद देनी ज़रूरी थी। कल इंशा अल्लाह एक मज़मून साफ़ करना शुरू करूँगा और ग़ालिबन २६ जून को यहाँ से रवाना कर दूँगा। इस ताख़ीर के लिए मुझे माज़ूर समझियेगा। सेहत से मजबूर हूँ। उम्मीद है कि आप ख़ुश होंगे। तसवीर की ज़ियारत मुबारिक।

नियाज़मंद
धनपतराय

२०२

मुख़्लिसी

गोरखपुर
२६ जून १९२०

तसलीम। मेरी परेशानियों का ख़ात्मा नहीं हुआ। छोटे बच्चे को चेचक निकल आई है। उसके रोने-चिल्लाने का नज़ारा कोई काम नहीं करने देता। यह मज़मून आस्कर वाइल्ड के एक क़िस्से Canterville's ghost का नमूना है। पसन्द आये तो रख लें। मगर इसके आख़िर में मेरा नाम देने की ज़रूरत नहीं

क्योंकि 'आबे हयात' और 'मरके नदामत' के बाद से अब मैंने अहद कर लिया है कि उसमें न करूँगा।

और तो कोई ताज़ा हाल नहीं।

वस्सलाम

धनपतराय

२०२

नार्मल स्कूल गोरखपुर
२८ जुलाई १९२०

भाईजान

तसलीम। आपका एक कार्ड कई दिन हुए आया था। अलहम्दो भी मिला। मज़मून की फ़रमाइश अभी तक पूरी न कर सका। आजकल मुसीबतों की युरिश[1] है। यहाँ २१ जून को आया ९ जुलाई को छोटा बच्चा चेचक में मुब्तिला हो गया और हमेशा के लिए दाग दे गया। अभी तक इस ग़म से निजात नहीं हुई। सब्र तो हो गया मगर याद बाकी है। और शायद ताज़ीस्त रहेगी। इसे अपने आमाल[2] का नतीजा समझता हूँ और क्या।

जब तक दिल न सँभले मज़मून कहाँ से आये। ख़तों का जवाब देना भी शाक़ है। मुआफ़ कीजियेगा।

'प्रेम बत्तीसी' और 'बाज़ारे हुस्न' की क्या हालत है। उम्मीद है कि आप खुश होंगे।

दुआगो
धनपतराय

२०३

गोरखपुर
२८ अगस्त १९२०

भाईजान

तसलीम। तार मिला था मगर ख़त का इन्तज़ार करते-करते थक गया। इरादा था कि जब तक मेरा मज़मून न पहुँचे ख़त न लिखूँ। लेकिन सेहत और दुख सोज़ फ़िक्र[3] ने ऐसा मजबूर कर रखा है कि आज मजबूरन ख़त लिख रहा हूँ।

---

१ धावा २ कर्मों ३ दिल का जलना

क्या करूँ कई काम छेड़ रखे थे सभी अधूरे पड़े हुए हैं। नाकाम नामुकम्मल है। उसका हिन्दी तर्जुमा नामुकम्मल है। चार मुख्तसर कहानियाँ अधूरी एक ड्रामा बाबत तजवीज़। मगर सेहत शुरू करने ही नहीं देती।

मालूम नहीं 'प्रेम बत्तीसी' इस जिल्द में शाया होगी या नहीं। 'बाज़ारे हुस्न' का मसव्वदा ही दाख़िल है और 'नाकाम' का तो अभी ज़िक्र ही क्या। न ज़माना प्रेस का फ़ुर्सत न बार-उस-इशाअत को मोहलत।

सितम्बर के महीने में कुछ चन्द हाज़िर करूँगा।

वस्सलाम

मुख़्लिस
धनपतराय

२०४

गोरखपुर
२५ अगस्त १९२०

जनाब मुश्फ़िक़ी

तसलीम। नवाज़िशनामा सादिर हुआ। आप अपने सिलसिला-ए-इशाअत[1] की तौसीह[2] करना चाहते हैं। यह अम्र मेरे लिए ख़ास तौर पर बाइसे इत्मीनान है। उर्दू में रिसाले और अख़बारात तो बहुत निकलते हैं। शायद ज़रूरत से ज़्यादा। इसलिए कि मुसलमान एक लिट्रेरी क़ौम है और हर तालीमयाफ़्ता शख़्स अपने तईं मुसन्निफ़[3] होने के क़ाबिल समझता है। लेकिन पब्लिशरों का बहुत क़हत है। सारे क़लमरौ-ए-हिन्द[4] में एक भी ढंग का पब्लिशर मौजूद नहीं। जो है उनका अदम और वजूद[5] बराबर है क्योंकि उनकी सारी क़ाबलियत[6] चंद रद्दी नाविल हैं जिनसे मुल्क या ज़बान को कोई फ़ायदा नहीं। अर्सा हुआ 'दारुल तर्जुमा' देहली में क़ायम हुआ था और बड़े तमतराक़[7] से चला लेकिन थोड़े ही दिनों में उसके नाज़िम साहिब का जोश 'फ़रो'[8] हो गया और वह कुछ इस तरह ग़ायब हो गए कि मुश्तरकीन का हिसाब तक न साफ़ किया। इसलिए मैं आपकी इस तजवीज़ से बहुत मुत्मइन हूँ। लेकिन मुआफ़ फ़रमाइयेगा एक अदबी रिसाले का बार अपने सर पर रखे हुए आप अपनी नयी तजवीज़ में कामयाब हो सकते हैं इसमें मुझे शक है। एक अव्वल दर्जे का उर्दू रिसाला एक

---

१ प्रकाशन माला   २ विस्तार   ३ लेखक   ४ हिन्दुस्तान   ५ होना न होना
६ पूँजी   ७ धूमधाम से   ८ ठंडा पड़ना   ९ भागीदार

आदमी को हमावक़्त[1] मसरूफ़[2] रखने के लिए काफ़ी से ज़्यादा है। वरना उसका मेयार[3] से गिर जाना यक़ीनी है। ऐसी हालत में आप दोनों काम कामयाबी के साथ नहीं कर सकते ता वक़्ते कि आपको कोई होशियार एसिस्टेंट न मिल जाये। और चूँकि आजकल लाहौर में बिला मा'क़ूल मुआवज़े के होशियार आदमी मिल नहीं सकता और 'कहकशाँ' के लिए यह बार शायद नाक़ाबिले बर्दाश्त हो इसलिये आपको इसके सिवा और चारा[4] नहीं कि या तो इशाअत के हों या कहकशाँ के। मेरी नाचीज़ राय है कि अगर आप इशाअत का काम सरअंजाम दे सकते हैं तो 'कहकशाँ' को ख़ैरबाद कहिये। 'कहकशाँ' जो काम कर रहा है वही काम और भी कई मुमताज़ रिसाले कर रहे हैं या करने का इरादा रखते हैं। मगर पब्लिशिंग का मैदान बिल्कुल ख़ाली है और ज़बान की ख़िदमत करने के जितने मौक़े इशाअते कुतुब के ज़रिये मिल सकते हैं माहवार रिसाले से मुमकिन नहीं। मैं यह नहीं कहता कि माहवारी सहाइफ़[5] से ज़बान की ख़िदमत नहीं होती मगर रसायल के मज़ामीन महदूद होते हैं और उनके क़ारी उसे तसनीफ़ के अक्सर शोबों से बेफ़ैज़ रखते हैं। उर्दू रिसालों में आप कोई ज़ख़ीम और मुश्किल फ़न[6] तारीख़ी तसनीफ़ नहीं शाया कर सकते ता वक़्ते कि वह आप के बजाय ख़ुर्दबीनी सूरत में पेश न की जाय। अलावा अज़ीं फ़लसफ़ा[7] शेर[8] नज़रियात[9] कीमियात[10] वग़ैरा वग़ैरा सभी मज़ामीन के अक़साम का दरवाज़ा आप के लिए बन्द है। आपको चलते हुए मज़ामीन तफ़रीहबख़्श[11] चुटकुले दिलचस्प अफ़साना तर्ज़ के रंगीन क़िस्से चाहिए। यहाँ तक कि आप कोई ज़ख़ीम नाविल हाथ में लेते हुए डरते हैं। तो बजाय चटपटे मज़ामीन से नाज़रीन की ज़ियाफ़ते तबा चाहे हो जाये लेकिन ज़बान की कोई मुस्तक़िल ख़िदमत नहीं हो सकती। ऐसे मज़ामीन से ज़बान के मुस्तक़िल सरमाये में कोई क़ाबिले क़द्र इज़ाफ़ा नहीं होता। उर्दू को हर एक शोबे[12] की अच्छी और मुस्तनद[13] किताबों की जितनी ज़रूरत है वह मोहताजे बयान नहीं। और हालाँकि इस बेबिज़ाअती[14] का बाइस एक बड़ी हद तक हमारी सियासी बेदस्तोपाई है ताहम हमने अपने लिटरेचर की तरफ़ अभी उतनी तवज्जह नहीं की जितना वह मुस्तहक़ है। अगर हम अपनी लाज रखनी है तो अपने लिटरेचर को फ़रोग़ देना पड़ेगा। और चाहे यह काम इनफ़िरादी[15] करें या अंजुमनाए मुश्तरका मगर इसे कारोबारी उसूलों पर किए बग़ैर इस्तहकाम[16] नहीं हो सकता। अगर आप एक मुश्तरिका सरमाये से कोई पब्लिशिंग काम जारी

---

१ हर वक़्त २ व्यस्त ३ स्टैण्डर्ड ४ उपाय ५ पत्रिकाओं ६ कठोर, पांडित्यपूर्ण ७ दर्शन ८ काव्य ९ सिद्धान्त शास्त्र १० रसायन शास्त्र ११ मनोरंजक १२ विभाग १३ प्रामाणिक १४ दरिद्रता १५ व्यक्ति १६ स्थिरता

कर सकें तो क्या कहना। लाहौर जैसे तिजारती मकाम पर ऐसी कम्पनी खोलनी बहुत मुश्किल न होनी चाहिए। बहरहाल अगर आप इशाअत के कारबार में हाथ डालना चाहते हैं तो 'कहकशां' को बन्द कीजिये। बिलखुसूस ऐसी हालत जब कि आपको इसके जारी रखने में बराबर खसारा है। यही मेरी दोस्ताना सलाह है। उम्मीद है आप मेरी गुस्ताखी को मुआफ़ फरमायेंगे।

खाकसार
प्रेमचन्द

२०५

भाईजान

गोरखपुर
२९ अगस्त १९२०

तसलीम। खत इन्तज़ार के बाद मिला। मशकूर हूँ। कलीसी इस गली शुरू है। 'बाज़ारे हुस्न' की किताबत होने लगी बड़ी खुशी की बात है। हिस्सा अव्वल अभी तक मुंशी दयानारायन साहिब की बेतवज्जुही के सबब 'मआरिज इस्तवा'[1] में पड़ा हुआ है। मगर उम्मीद है कि हिस्साए दोम का छापा उनका ताज़ियाने का काम देगा। और यही मेरी गरज़ थी।

'कहकशां' आप बन्द करना चाहते हैं। जब नुक्सान हो रहा है तो ज़रूर बन्द कीजिये। जब आपको विलायत जाने का मौक़ा मिले तो इससे फ़ायदा न उठाना अपने ऊपर और क़ौम के ऊपर ज़ुल्म है। यह उमर के दो-चार साल निकल जायेंगे तो मेरी तरह आपको भी पछताना पड़ेगा। काश मैंने अयामे उम्र में एम० ए० तक हासिल कर लिया होता तो यह कसम-पुर्सी[2] की हालत न होती। वर्ना यह ज़माना फ़सानानिगारी के नज़्र हुआ और अब ज़रूरतें डिग्री के लिए मजबूर करती हैं। आप बी ए पंजाब से कीजिये और फ़ौरन विलायत का सफ़र कीजिये। दो-तीन सालों में आप पाँच सौ भी रुपये हासिल करने के मुस्तहक़ हो जायेंगे और अगर अख़बारनवीसी की तरफ़ मायल होंगे तो यहाँ भी अव्वल दर्जे का अंग्रेज़ी रिसाला निकाल सकेंगे। अफ़सानों और कहानी फ़ुरसत को हासिल हुआ उसकी कोई क़ीमत नहीं। मैंने अपनी ख़ातिर से एक दास्ताना लिखा है। मुनासिब समझें तो इसे शाया कर दीजिये। मुझे इस मरज़[3] से ख़ूबसूरती से निकल जाने का इसके सिवाय और कोई रास्ता नज़र न आया। 'क्वायफ़-होम' के हक़ में भी उम्मीद[4] है। साफ़-साफ़ कहना जानता हूँ।

---

१. अधर में २. दुर्दशा ३. बेकसी ४. बेड़े ५. पछतावा ६. मकान

'बत्तीसी' और दीगर कुतुब भेजकर रवाना करें। आपने माल्वी के हालात लिखे थे उसकी कितनी जिल्दें निकल गयीं। 'प्रेम बत्तीसी' आपके यहाँ से कितनी निकल जायगी। अब तो 'कहकशाँ' का बक़ियाए इश्तहार भी न रहेगा।

यहाँ बारिश क़ब्ल अज़ वक़्त बन्द हो गयी। फ़सल का नुक़सान हो रहा है।

मैंने कलकत्ते के एक हिन्दी प्रेस में शिरकत कर ली है। ग्यारह आने मेरे एक दोस्त का होगा और पाँच आने मेरे। मुझे अपने हिस्से के रुपयों की फ़िक्र करनी है। अगर काम चल गया तो पचास-साठ रुपये माहवार का फ़ायदा हो सकेगा। अगर आपको तकल्लुफ़ न हो तो सितम्बर में मक़्तूआ[1] हिसाब तै फ़रमा दीजियेगा। कुल प्रेस सोलह हज़ार का है। ताज़ियत[2] के लिए मशकूर हूँ। दो बच्चे थे एक ने मुफ़ारक़त[3] की अब एक चहारसाला[4] शीरख़्वार[5] रह गया और एक लड़की। परमात्मा इन्हीं दोनों को ज़िन्दा रखे। अब जो कुछ होना था हो चुका। मशीयत[6] यही थी। मुझे भी अब उसकी मसलहत नज़र आ रही है। शायद मुझे अलायक़[7] की जंजीरे-गराँ[8] से कुछ आज़ाद करना मक़सूद था। ख़त जल्द लिखियेगा। आपके ख़ुतूत से तसकीन होती है।

आपके वालिद साहिब बुज़ुर्गवार ने जिन अलफ़ाज़ में मुझे तसकीने-सब्र[9] और तसक्कुन[10] फ़रमाया है उनके लिये तहेदिल से ममनून हूँ। ईद-उज्ज़ुहा का दिन है दो-चार अहबाब मिलने आते होंगे। इसलिए अब रुख़सत। ईद मुबारिक। क़यास में आप से भी बग़मगीर हो रहा हूँ।

वस्सलाम

नियाज़मन्द

धनपतराय

२०६

नार्मल स्कूल गोरखपुर

१४ सितम्बर १९२०

बिरादरम

तसलीम। आपका नवाज़िशनामा कई रोज़ हुए मिला था मगर इस आलमे पीरी[11] क़ल्ब-अज़-वक़्त[12] में एम० ए० पास करने की धुन सवार हो गयी है। इस वजह से जवाब का बहाना करता रहा। सुबह को शाम के लिए एक घोड़ता

१ पूर्ण किया हुआ २ मातमपुर्सी ३ वियोग ४ चार साल की ५ दूध-पीती ६ दैवी इच्छा ७ दुनियादारी ८ भारी जंजीर १० [illegible] ११ [illegible]

या शाम को सुबह के लिए। आपने 'कहकशाँ' को बन्द कर देने का फ़ैसला किया। ख़ूब किया। नुक़सान उठाना उस पर दर्दे सर। इस बला से निजात ही अच्छी। मगर इस बाक़ी फ़ुरसत को या तो अपनी आइन्दा तरक़्क़ी या तसनीफ़ में सर्फ़ कीजिये। क्यों आप के इंग्लैंड जाने की तजवीज़ क्या फ़िस्ख़[1] हो गयी? अगर आप के वालिद साहब इजाज़त दें तो आप जैसे तब्बा[2] नौजवान का वहाँ क़िस्मत आज़माई करने जाना ज़रूरी है। वहाँ से लौटकर आप किसी कालिज के प्रोफ़ेसर और फिर प्रिंसिपल हो सकते हैं। सिर्फ़ दो साल की जिलावतनी[3] है।

महात्मा गांधी को अगर सिर्फ़ हज़ार डेढ़ हज़ार जिल्दें ही निकलीं तब तो आपको शायद इसमें भी ख़सारा ही रहा हो। 'प्रेम बत्तीसी' का मुन्तज़िर हूँ। 'ज़माना' को भी तक़ाज़ा से चैन नहीं लेने देता। ग़ालिबन अक्तूबर में दोनों हिस्से निकल जायेंगे। आपके 'तहज़ीब' की माफ़त मेरी पाँच सौ जिल्दों में से भी कुछ निकल जायें तो क्या कहना।

'ज़माना' का हाल मुझे मालूम है। साल भर में शायद एक सौ दो सौ जिल्दें निकलीं और कहीं इश्तिहार देना नहीं चाहता। अबकी 'सुबहे उम्मीद' में भी कुछ चीज़ें भेजूँगा। इसके लिए एक क़िस्सा 'बाद मग मग' लिखा है। क़िस्सा क्या है एक दोस्त की हक़ीक़त है। सिर्फ़ आख़िर में थोड़ी-सी उपज है। पढ़कर अपनी तनक़ीद और मुमकिन हो तो हज़रते 'पितरस' की तनक़ीद से मुत्तला फ़रमाइयेगा।

मुझे रुपयों की ज़रूरत तो थी और है। इसलिए कि मैं प्रेस में शिरकत कर चुका हूँ और उसके रुपये अदा करने लाज़िम हैं। लेकिन चूँकि मेरा शरीक मेरा [illegible] है, उसकी जानिब से रुपयों का तक़ाज़ा नहीं है और शायद न हो। अगर आपको फ़िलहाल तरद्दुद है तो मुज़ायक़ा नहीं। जब आपको सहूलियत हो उस वक़्त सही।

'पच्चीसी' भी दोनों हिस्से ख़त्म हो चुकी है। शायद हिस्सा दोम की चन्द जिल्दें बाक़ी हों। दूसरी इशाअत का मरहला दरपेश है। 'ज़माना' के मैनेजर उसपर इसरार कर रहे हैं मगर मैंने अहद कर लिया है कि ज़माने की मशक़्क़त में न पड़ूँगा। अगर आप इसे निकाल सकें तो बड़ी बेहतर।

१—जी हाँ नवाबराय मैं ही था लेकिन जब 'सोज़े वतन' लिखने के बाद मुझे मेरे डिपार्टमेंट ने मज़ामीन लिखने से मजबूर कर दिया और डिपार्टमेंटल सख़्तियाँ शुरू कीं तो मैंने मुहिब्बी[4] बाबू दयानरायन के मशविरे से यह नाम

१ ख़त्म २ तीव्र बुद्धि ३ निर्वासन ४ मेरे प्यारे

तजवीज कर लिया।

२—'सैरे दरवेश' 'जमाना' में शाया किया है। मगर उसके हुकूक मेरे ही पास हैं। अगर आप पुस्तकरूप छाप सकें तो शौक से छापिये।

३—जी नहीं 'नक्काद' मेरे पास इल्तजामन कभी नहीं आया। और न उसमें कभी लिखने की सूरत की। जिगरीर साहब ने दो-एक बार फर्माइश जरूर की थी मगर मैं अव्वल दाम[1] और वहाँ कमनामी और तहसीन। इससे मेरा काम न चला। हजरत नियाज़ फतेहपुरी के चन्द मजामीन मार्के के थे। उन्हें 'जमाना' के दफ्तर में देख आया था। नक्काद अक्सर चोचले बहुत करता है। मुझे यह जनानापन पसंद नहीं। मैं लिटरेचर को Masculine देखना चाहता हूँ। Feminine ख्वाह वह किसी सूरत में हो मुझे पसंद नहीं। इसी वजह से मुझे टैगोर की अक्सर नज्में नहीं भातीं। यह मेरा फितरी नुक्स है। क्या करूँ। अखबार भी मुझे वही अपील करते हैं जिनमें कोई जिद्दत हो। गालिब के रंग का मैं आशिक हूँ। अजीज लखनवी के गुलकदे की खूब सैर की थी मगर बदकिस्मती से आज तक एक शेर भी मौजूं नहीं कर सका। न जी चाहता है। गालिबन शायराना हिस[2] जिस्म में है ही नहीं। आपके सुन्दर मूरती और 'गंगा अस्नान' के देखने का इत्तफाक नहीं हुआ। अगर आपके पास उनकी नक्ल हो तो भेजने की इनायत कीजियेगा। मैंने तो अब तक आप की जितनी चीजें देखी हैं उनमें 'नाबीना जवान' सबसे ज्यादा पसन्द आया। आपने गजब किया था। शायद उर्दू में ऐसा तरन्नुम और नहीं नजर आ सकता। 'लाला ए सहरा' में भी जोर खूब था। मगर वह बात न थी।

आपकी गजलों को खूब गौर से देखा। 'नाज़ आफ़रीनी'[3] की दाद देता हूँ। यह शेर बहुत खूब है सुबहान अल्ला।

दुनिया दिखाई देती थी मसरूर भी मुझे
वह देखना तेरी निगहे शीमबार का

'दास्ताँ मेरी' वाला शेर बहुत खूब है। तमीज़ी क्या है देखें हुस्न व राव। हुस्न बसूरे अस्वात। यहाँ भी इतवार को बाबू रघुपतिसहाय के मकान पर एक छोटा-सा मकामी मुशायरा हुआ था। तरह थी

सो गया आसमे वाला शबे तनहाई का—

बाबू रघुपति सहाय 'फ़िराक़' दिलकश शायर हैं। उन्होंने भी आपकी गजलों की खूब दाद दी। वह आपके 'लाला ए सहरा' का तर्जुमा अंग्रेजी में करना चाहते थे मगर बहुत दिक्कततलब देखा तो इरादा तर्क कर दिया।

---

१ पैसे का मुआमला   २ काव्य-संवेदना   ३ बात पैदा करना

और क्या लिखूँ। बेहद मसरूर मसरूफ़ियतें रोज़ अफ़्ज़ूँ[1]। बारिश रोज़ाना। 'कहकशाँ' का जुलाई नम्बर ख़ूब था।

वस्सलाम

धनपतराय

२०७

नार्मल स्कूल गोरखपुर
१ अक्टूबर १९२०

जनाब मुकर्रमे मन

तसलीम। किताबों का पार्सल पहुँचा। 'प्रेम बत्तीसी' देखी। बाग़-बाग़ हो गया। मुझे यह मजमूआ निहायत पसन्द आया। किताबत ज़रा और जली होती तो बेहतर होता। लेकिन तब क़ीमत और ज़्यादा रखनी पड़ती। फ़िल जुमला किताब ख़ूब छपी है और मैं इसके लिए आपका तहेदिल से ममनून हूँ। देखें पब्लिक इसकी क्या क़द्र करती है। पहला हिस्सा भी शायद इस माह में तैयार हो जाय। मैंने दफ़्तर 'ज़माना' को लिख दिया है कि आपके यहाँ पाँच सौ जिल्द भेज दें। आप भी उनके यहाँ इतनी ही जिल्दें या इससे दस पाँच कम भेज दीजियेगा। मुफ़स्सल ख़त बाद को लिखूँगा।

मुख़्लिस
धनपतराय

२०८

गोरखपुर
२० अक्टूबर १९२०

बरादरम

तसलीम। आपकी पुरानी ख़ामोशी ने ग़ज़ब किया। 'कहकशाँ' भी अब तक नहीं आया। क्या मुआमला है? क्या कोई राय हुई? आपने आइन्दा के लिए कौन तजवीज़ निकाली। मुफ़स्सल ख़त चाहता हूँ। 'प्रेम बत्तीसी' की बिक्री की क्या कैफ़ियत है? कुछ निकल रही है? कानपुर वाले अभी देर कर रहे हैं। नाक में दम हो गया है। अब भूल कर भी अपनी ज़िम्मेदारी पर कोई किताब न छपवाऊँगा। 'प्रेम पचीसी' के दूसरे एडीशन का मसला दरपेश है। आपका

१. दिन दूनी बढ़ती हुई व्यस्तताएँ

हिर्मा-नसीब मुझे कुछ पसन्द न आया। मोहमल-सी किताब मालूम होती है। हाँ शेख़ हसन के इब्तदाई हिस्से दिलचस्प हैं। हालाँकि आख़िरी हिस्सा उम्मीद के ख़िलाफ़ है। ईश्वर ने चाहा तो चन्द माह में मेरा अपना नाविल 'नाकाम' तैयार हो जायगा। 'सैरे दरवेश' की निस्बत आपने क्या फ़ैसला किया? 'बतीसी' रिव्यू के लिए कहीं भेजी या नहीं? क्या मुमकिन है कि पंजाब टेक्स्ट बुक कमेटीवाले उसे कुतुब में ले लें। लेकिन नहीं पब्लिक की क़द्रदानी ही पर छोड़िये।

बारिश बन्द हो गयी। क़हत नाज़िल हो गया। मुल्क पर सख़्त मुसीबत है। देखें परमात्मा कैसे नाव पार लगाते हैं।

और क्या लिखूँ। हाँ मैंने कलकत्ता में प्रेस लेने का इरादा तर्क कर दिया। दूर-दराज़ का मामला था। अब इसी सूबे में इरादा है। कानपुर में एक प्रेस बिक रहा है। 'लाइट प्रेस' नाम है। इसके मुताल्लिक़ ख़तोकिताबत कर रहा हूँ। तय हो जाय तो नौकरी से मुस्ताफ़ी[1] हो जाऊँगा। अब यह तौक़ नहीं सहा जाता। ग़ालिबन नवम्बर में आप मुझे बिला तकल्लुफ़ रुपये दे सकेंगे।

ज़्यादा वस्सलाम

मुख़्लिस

धनपतराय

२०९

नार्मल स्कूल गोरखपुर

२१ अक्तूबर १९२०

भाईजान

तसलीम। कार्ड मिला। मशकूर हूँ। ईश्वर मरीज़ को जल्द शिफ़ा[2] और आपको तीमारदारी की मुसीबत से नजात दे। बहुत ख़ुश हूँ कि 'बाज़ारे हुस्न' की किताबत क़रीब ख़त्म है। बेशक शाखा के ख़त का एक हिस्सा दर्ज करने से रह गया। आपने ख़ूब तारीफ़[3] की। उसे पूरा किये देता हूँ—

> मैं बड़ी मुसीबत में हूँ। मुझ पर रहम कीजिए। यहाँ की हालत क्या लिखूँ। पिता जी गंगा में डूब मरे। आप मामा पर मुक़दमा चलाने की सलाह दे रही है। मेरी दोबारा शादी होगी क़रार पाई है। जल्द ख़बर लीजिए। एक हफ़्ते तक आप की राह देखूँगी। उसके बाद इस बेकस यतीम की फ़रियाद आपके कानों तक न पहुँचेगी।

---

१ इस्तीफ़ा दे देना   २ आरोग्यता   ३ [illegible]

प्रेम बत्तीसी' अगर इस अर्से में एक भी निकल गयी तो आसार[1] बुरा न समझना चाहिये। 'ज़माना' प्रेस अभी तक बातों ही पर टाल रहा है। तंग आ गया। किसी तरह अब की नजात हो फिर उसके जंजाल में न फँसूँगा। मेरे प्रेस की तरक्की का मसला बिल्कुल अभी तक तय नहीं हुआ। उर्दू हिन्दी अंग्रेजी छपना अभी कुछ जमाने का इरादा है। मेरा छोटा भाई मैनेजरी के काम में होशियार है। इस वजह से शायद मुझे ज्यादा दर्दे सर न हो। और फिर किस कारोबार में परेशानियाँ नहीं हैं, कशमकश तो ज़मानए हाल की एक लाज़िमी कैफ़ियत है। इससे छुटकारा कहाँ।

आपके मुफस्सल ख़त का इन्तज़ार कर रहा हूँ। मुझे लाहौर से आप सरमाई[2] चीज़ें कुछ भेज सकते हैं। यहाँ असबाब और साग वग़ैरह नायाब हैं। मेवे खुश्क भी बाज़ार के मोल किशमिश दस रुपये सेर। बादाम ... सेर। लाहौर से यह चीज़ें शायद कुछ अर्जां हों। एक मसवान बन्दा आपके ख़याल में लिखने का मिल जायगा। यहाँ तो शायद ... में कम पर न मिले। अगर तकलीफ़ न हो तो ज़रा ऐसे दर्याफ़्त करके मुझे फ़रमाइयेगा और दूकान का पता भी ताकि मैं खुद मँगवा लूँ। आपको तकलीफ़ नहीं देना चाहता।

'प्रेम पचीसी' आज ही के गर्म पड़ेगी। हाँ अगर मेरा प्रेस जल्द निकला तो मुमकिन है इसी में छप जाय। मगर जहाँ तक मेरा खयाल है मेरे भाई साहब लिथो का काम पसंद न करेंगे। टाइप के काम में सहूलियत होती है। कातिबों की नाकाबिलियत[3] ने लिथो का काम बहुत निकृष्टतम[4] बना दिया है।

और क्या अर्ज करूँ। कहत पड़ गया। गेहूँ का निर्ख पाँच सेर है। घी छ छटाँक रुपया तो नायाब है। रुपये की सेर भर भी नहीं। चौदह छटाँक है। कहाँ क्या जाय और कैसे ज़िन्दा रहें।

ख़त का जवाब जल्द दीजिए। उम्मीद है आप मअ-ल-ख़ैर होंगे। नानकोऑपरेशन ने तो लाहौर का कचूमर निकाल दिया। देखिए यह ऊँट किस करवट बैठता है।

वस्सलाम

धनपतराय

---

१ आशंका २ जाड़े की ३ दुर्बलता ४ तुच्छ, तुच्छ

२२०

गोरखपुर
१० नवम्बर १९२०

बन्दानवाज़

तसलीम।

इनायतनामा मिला। मशकूर हूँ। 'कहकशाँ' भी नम्बर अव्वल से बेहतर है। मुबारकबाद। दीगर रसाइल पर नोट लिखने की फ़िक्र ज़रूर कीजिये। इससे रसाला मक़बूलतर होगा।

एक क़िस्सा 'बैंक का दीवाला' भेजता हूँ। लम्बा हो गया है। देखिये पसंद आये तो रख लीजिये। दो नम्बरों में निकल जायगा। क़िस्सा लम्बा है पस्वात नहीं आने पाये।

नाविल के मुताल्लिक़ तसवीरों की राय फ़िस्ख हो गयी। हिन्दी का पब्लिशर इसे जल्द निकालना चाहता है। दूसरे एडीशन में तस्वीरें दी जायगी। इसलिए फ़िलहाल उनका ज़िक्र फ़िज़ूल। रहा मुआवज़ा वह क़िस्सा पढ़ लेने पर आप ख़ुद तय कर लेंगे। हिन्दीवालों ने मुझे चार सौ रुपये दिये हैं। उर्दू से इतनी उम्मीद नहीं। मगर पच्चीस सतरी सफ़े के बारह आने के हिसाब से मंज़ूर कर लेने में मुझे तामुल न होगा। यह मेरा पहला ज़खीम नाविल है। मुझे इसकी इशाअत की फ़िक्र है। दूसरा नाविल भी शुरू कर चुका हूँ। और क्या अर्ज़ करूँ। सैयद मुमताज़ अली क़िब्ला की ख़िदमत में आदाब क़बूल हों। जवाब से याद कीजिएगा।

वस्सलाम

धनपतराय

२२२

नॉर्मल स्कूल गोरखपुर
२५ नवम्बर १९२०

भाई जान

तसलीम।

कार्ड मिला। मशकूर हूँ। आपकी परेशानियाँ और नीज़ नासाज़िए तबीयत से वाक़िफ़ हूँ। ईश्वर आपको इन मुसीबतों से फ़ुरसत दे।

'बाज़ारे हुस्न' का मुआवज़ा दो सौ पचास तय हुए थे। 'प्रेम पचीसी' के लिए एक सद। कुल साढ़े तीन सौ रुपये होते हैं। बज़रिया रजिस्ट्री भिजवा दें। किफ़ायत होगी।

मेरे ख़त के दीगर उमूर[1] का जवाब आपने कुछ न दिया। आपके दूसरे ख़त का इन्तज़ार कर रहा हूँ। तब तक हिस्सा अव्वल 'प्रेम बत्तीसी' का टाइटल वग़ैरा भी तैयार हो जायगा।

और क्या अर्ज़ करूँ।

नियाज़मन्द
धनपतराय

१२२

नार्मल स्कूल गोरखपुर
१ जनवरी २१

जनाब मुश्फ़िक़ी व मकर्रमे बन्दा

तसलीम।

अर्से से हालाते मिज़ाज से मुत्तला नहीं हुआ। तरद्दुद है। बराहे करम हालात से मुत्तला फ़रमाइये। मैंने दफ़्तर ज़माना को ताकीद की थी कि आपकी ख़िदमत में 'प्रेम बत्तीसी' की छः सौ जिल्दें रवाना कर दें। लकड़ी के संदूक में किताबें बन्द करा के स्टेशन भेजी गयी लेकिन मालगाड़ी बंद थी। इस वजह से फ़िलहाल सौ जिल्दें बज़रिये रेलवे ख़िदमते वाला में भेजी गयीं। ज्योंही गाड़ी खुलेगी बक़िया पाँच सौ जिल्दें भेज दी जायगी। आप भी एक सौ जिल्दें हिस्सा दोम की बज़रिया पार्सल रवाना फ़रमायें। कानपुर के पते से। और अगर लाहौर से मालगाड़ी मिल सके तो पूरी चार सौ जिल्दें भेज दें। ताकि ख़र्चा ज़्यादा न पड़े। जैसा मुनासिब मालूम हो वह कीजिये। पाँच सौ जिल्दें ग़ालिबन इसी माह में आप के पास पहुँच जायेंगी।

प्रेम पचीसी के मुताल्लिक़ आपने कुछ तहरीर न फ़रमाया। उम्मीद है कि आप ख़ुश व ख़ुर्रम होंगे।

मश्कूर
धनपतराय

---

१ बातों

२२३

नार्मल स्कूल, गोरखपुर
२१ जनवरी १९२१

भाईजान

तसलीम। बाद इन्तज़ार[१] शफ़ीक़ाना-मशीर[२] इनायतनामे के दर्शन हुए। मशकूर हूँ। किताबें आपने गालिबन कानपुर भेज दी होंगी। मालगाड़ी मिलने पर वहाँ से आपकी खिदमत में पाँच सौ जिल्दें और पहुँचेंगी। आप भी उनके पहुँचने पर तीन सौ जिल्दें और भेज दीजिएगा। सर वरक़ का मुझे सख्त अफ़सोस है यह मोहतमिम[३] साहब प्रेस की इनायत का नतीजा है। मुमकिन हो तो आप मेरे वरक़ दूसरा लगवा लें कीमत मुझसे वज़ा कर लें।

'सैरे दरवेश और प्रेम पचीसी' की एक जिल्द भी मेरे पास नहीं। ज़ियादा तसहीह[४] की ज़रूरत नहीं। किताबत का प्रूफ़ के साथ-साथ तसहीह भी होती जायगी। बस कातिब ने पैराग्राफ़ अलग नहीं किये हैं। अक्सर दो पैराग्राफ़ मिला दिये हैं। इसके सिवा मुझे तो ज़ियादा अगलात मालूम नहीं होते। आप किताबत शुरू करवा दें और दोनों 'बाज़ारे हुस्न' ही के साइज़ पर छपवायें। मुझे भी एक ही साइज़ की किताबें पसन्द हैं। आप इन दोनों किताबों का कापी राइट चाहते हैं या महज़ दूसरे एडीशन का हक़ इशाअत है?

मैंने इधर दो-तीन क़िस्से लिखे हैं एक 'सुबहे उम्मीद' में है 'बाज़ मग मय' दूसरा 'ज़माना' में है 'नोक झोंक'। एक और 'ज़माना' में रखा हुआ है। 'मसर्रते हयात'। एक चौथा मेरे पास है इसे मैं पाँचवाँ करें तद्‌बीर है जिसमें नान कोआपरेशन का रंग नज़र आयेगा। इसके मुताल्लिक़ मैं आपकी नुक्ताचीनी का शौक़ से इन्तज़ार करूँगा। आपको मेरी तहरीरें जब नज़र आयें ज़रूर इज़हारे ख्याल कर दिया करें। इससे मुझे किसी तस्कीन होती है। इन क़िस्सों के अलावा एक नाविल 'नाकाम' आग़ाज़ कर रहा हूँ जो हम मीरुद से कम वसीअ काम नहीं है। यह ख़त्म हो जाये तो ड्रामे में हाथ लगाऊँ। इसका प्लाट तैयार है चार ही ऐक्ट में ख़त्म हो जायगा मगर सीन पन्द्रह-सोलह से कम न हो सकेंगे। कामयाब हो सकूँगा या नहीं ईश्वर ही जाने। 'नाराम' ज्यों ही तैयार हुआ आपके मुलाहिज़ा के लिए भेजूँगा। मैं अपनी किताबों की तोमीए इशाअत के इख्तियार से पंजाब के किसी रिसाला में लिखना चाहता हूँ।

१ २ सच्ची और खालिस मशीरा ३ मैनेजर ४ शोधन-पत्रि

लेकिन 'कज़्ज़ाकी' के बाद अब मुझे कोई ऐसा रिसाला नज़र नहीं आता। अब आपका सलूक क्या रहता है ?

मेरे एक दोस्त आपकी किताब 'भारत सपूत' का हिन्दी तर्जुमा कराना चाहते हैं। उनका इरादा उसे पाँच हज़ार छापने का है। अगर आप पसन्द फ़रमायें तो इस किताब की एक जिल्द मेरे पास भेज दें। जो नुस्ख़ा आपने नज़र किया था वह कोई साहब उड़ा ले गये। यों हिन्दी में गांधी जी की कई सवानेह-उम्रियाँ मौजूद हैं लेकिन आपकी तसनीफ़ में और ही लुत्फ़ है। इसी वजह से मेरे दोस्त मौसूफ़ उसे हिन्दी जामा पहनाने के शायक़ हैं। और क्या लिखूँ ? क्या मेरी और आपकी मुलाक़ात कभी न हो सकेगी ? दुनिया में मेरे सिर्फ़ गिने गिनाये दोस्त हैं। आप भी इस निहायत महदूद जमात के रुक्ने-ख़ास[1] हैं। मगर अफ़सोस कि अभी तक सूरत-आशनाई भी नहीं। और न हो तो अपना फ़ोटो ही भेज दीजिए। हाँ 'हम ख़ुरमा-ओ-हम सवाब' व 'किशना' वग़ैरह मेरी इब्तदाई तसानीफ़ हैं। पहली किताब तो लखनऊ के नवल प्रेस ने शाया की थी दूसरी किताब बनारस के मेडिकल हॉल प्रेस ने। यह ग़ालिबन उन्नीस सौ की तसानीफ़ हैं। मेरे पास इनमें से एक जिल्द भी नहीं और न शायद पब्लिशरों के यहाँ ही निकल सकें और न उनके देखने की ज़रूरत ही है। नौमश्क़ी के मारे उयूब उनमें मौजूद हैं। मौलाना मुमताज़ अ॰ रा॰ साहब क़िबला की ख़िदमत में दस्तबस्ता आदाब अर्ज़ कीजिएगा।

आपका
धनपतराय

२२४

८ फ़रवरी, १९२१

भाईजान

तसलीम। तसवीर मिली। बहुत ममनून हूँ। इसने मुलाक़ात की आरज़ू दह-चन्द कर दी। आपकी मेरे ज़ेहन में जो तसवीर थी वह कुछ और ही थी। मैं अगर 'मुसव्विर' होता तो 'शेर और मगस' की ग़ालिबन यही तसवीर बनाता।

महात्मा जी गांधी मिले[2]। (आज यहाँ उनकी आमद है।)

आपने शायद अभी तक 'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा दोम की जिल्दें कानपुर नहीं

---

१ विशिष्ट सदस्य २ आशय 'महात्मा गांधी' वाली किताब मिली

इरसाल फ़रमाइँ। यहाँ की फ़र्माइशें रुकी हुई हैं। बराहे करम अब ताख़ीर न फ़र्माइये। अगर मालगाड़ी से न भेज सकें तो फ़िलहाल १०० जिल्दें ही रवाना फ़र्मायें।

इससे पहले के ख़त के जवाब का मुन्तज़िर हूँ।

वस्सलाम

धनपतराय

२२५

ज्ञान मंडल बनारस
१८ अप्रैल, १९२१

मकरमे बन्दा

तसलीम।

अर्साए दराज़ से आपकी ख़ैरियत से मुत्तला नहीं हूँ। उम्मीद है बख़ैरो आफ़ियत होंगे।

मैं इधर एक माह से अपने घर आ गया हूँ। मुलाज़िमत से मुस्तफ़ी हो गया हूँ। कुछ लिटरेरी काम करता हूँ और कुछ ज़राअती। आपका शुग़्ल आज कल क्या है?

'प्रेम पचीसी' की इशाअत के मुताल्लिक क्या फ़ैसला किया? 'बाज़ारे हुस्न' की क्या हालत है?

'प्रेम बत्तीसी' की जिल्दें आपके यहाँ कितनी पहुँच गयीं और उनकी बिक्री कैसी हो रही है।

बराहे करम इन उमूर से सरफ़राज़ फ़र्माइये।

'तहज़ीबे निस्वाँ' और 'फूल' अभी तक गोरखपुर जाते हैं। वहाँ भेजने की मुमानियत कर दें और जब तक मैं अपना कोई मुस्तक़िल[1] पता न लिखूँ ऊपर के पते से ही भिजवाने की इनायत करें। और तो कोई हाल ताज़ा नहीं। हालाते मिज़ाज से जल्द मुत्तला फ़र्मायें। बाइसे तशवीश[2] है।

आपका
धनपतराय

---

१ स्थायी २ चिन्ता

२२६

मारवाड़ी स्कूल, नयागंज, कानपुर
२९ जून १९२१

जनाबे मोहतरम मो मकर्रमे बन्दा

तसलीम। मिज़ाजे अक़दस[1]? कई माह से मुझे आप साहिबों की ख़ैरियते मिज़ाज की ख़बर न मिली। मगर सुना तन्दुरुस्त हैं। भाई इम्तियाज़ अली साहब के पास कई ख़त लिखे मगर मालूम नहीं क्यों उन्होंने ग़ैर-मामूली सुकूत[2] से काम लिया। मुझे मुतलक़ ख़बर नहीं कि 'बाज़ारे हुस्न' की इशाअत का काम कितना हुआ है और इसमें कितनी देर है। 'प्रेम बत्तीसी' की जिल्दें यहाँ आप की ख़िदमत में भेजी जाने के लिए रखी हुई हैं। लेकिन आपके किसी रिसाले में उसका इश्तिहार तक नज़र नहीं आता। कुछ राज़ समझ में नहीं आता। बराहे करम मुफ़स्सल हालात से सरफ़राज़ फ़रमावें। ऐन एहसान होगा। 'तह चीज़ें लिखवा' मेरे पास मुख़्तसर बाक़ात[3] पड़े हैं इरसाल फ़रमावें। मैंने तर्के मवालात करके सरकारी मुलाज़िमत से इस्तीफ़ा दे दिया और अब इस क़ौमी पाठशाला की हेडमास्टरी पर आ गया हूँ। हज़रते 'ताज' और कई किताबें शाया करने वाले थे। इशाअत का दायरा वसीह करना चाहते थे। मगर यह तुम्हारी ख़ामोशी कुछ और ही कहती है। उम्मीद है जवाबे ख़त से महरूम न रखा जायेगा।

नियाज़मंद
धनपतराय प्रेमचंद

मैनेजर
दारुल इशाअत पंजाब
लाहौर।

२२७

मारवाड़ी हाई स्कूल, कानपुर
३ अगस्त १९२१

मुकर्रम

तसलीम।

मज़मून भेजा था। रसीद नहीं आई। क्या मज़मून पसन्द नहीं आया। मुत्तला फ़रमावें।

---

१ तबीयत २ ख़ामोशी ३ बक़ाया

कल रेल से 'प्रेम पचीसी' रवाना होगी। ब्लाक् मास से ब्लाक् पार्सल से। तवक्कुफ़ न होगा। मास का इन्तज़ार न करूँगा। किताबें बक्स में पड़े-पड़े सड़ रही हैं। इश्तिहार जारी फ़र्मावें।

तहज़ीब और 'फ़न' अब नहीं आते। क्या बनारस जाते हैं? पता तब्दील करा दें तो एहसान होगा। और अगर बन्द कर दिया हो तो कोई ज़रूरत नहीं।

नियाज़मन्द
धनपतराय

१२८

मारवाड़ी हाई स्कूल कानपुर
२७ अगस्त १९२१

बरादरम

तसलीम। खत कई दिन हुए आया। मेरा किस्सा पसन्द न आया। मुझे कुछ भी यही खौफ़ था। इसकी तनक़ीद आपने मुनासिब की है। बेशक किस्सा दब गया है। आइन्दा एहतियात रखूँगा। 'ज़माना' के जुलाई नम्बर में 'लाल फ़ीता' एक किस्सा है। उसके मुताल्लिक भी अपनी राय तहरीर फ़रमाइयेगा। क्या इसकी बार भी किस्सा दब गया या मैं कुछ कामयाब हुआ। कम से कम मैंने कामयाब होने की कोशिश ज़रूर की थी। आपकी राय का बेताबी से मुन्तज़िर रहूँगा। 'मख़ज़न' क्यों नहीं आया? आपके खत के लिए मैं चश्म बराह हूँ।

आप इस किस्से को 'मख़ज़न' में शाया नहीं कर सकते तो इतनी तकलीफ़ कीजिए कि इसे 'वन्देमातरम' आफ़िस में भेज दीजिए। वहाँ निकल जायगा। 'मख़ज़न' के लिए मैं जल्द लिखूँगा। किस्सा होगा या कुछ और अब नहीं कह सकता।

ज़ियादा वस्सलाम

नियाज़मंद
धनपतराय

२२६

मारवाड़ी हाई स्कूल, कानपुर
१२ दिसम्बर १९२१

मुशिफ़के मन

तसलीम।

अब तो आपके खत के लिए महीनों तरस जाता हूँ। मैं समझता हूँ मैं ही मशगूल फुरसत हूँ। पर आप मुझसे ज्यादा मसरूफ़ेकार[1] नज़र आते हैं। या यह बेएतनाई तो नहीं है।

'बाज़ारे हुस्न' का बाकी किताबत अभी खत्म हुई या नहीं। किताब के साथ दाम का कब तक इन्तज़ार करूँ।

'प्रेम बत्तीसी' की बिक्री बेदर्मी हो रही है। आपने किसी अखबार में खुसूसन इश्तहार नहीं दिया। आपने उर्दू लिटरेचर की खिदमत का बीड़ा उठाया है तो ज्यादा जिन्दादिलाना जोश के साथ काम करना चाहिए। इस बाब बिरादराना[2] मशविरे के लिए मुआफ़ फ़रमाइएगा।

उम्मीद है कि आप बखैरो आफ़ियत खुश व खुर्रम होंगे।

नियाज़मंद
धनपतराय

२२७

महावीर विद्यालय कानपुर
२६ दिसम्बर १९२१

बरादरम

तसलीम। नवाज़िशनामा मिला। बहुत इत्मीनान हुआ। दफ़्तरे 'ज़माना' में 'प्रेम बत्तीसी' हिस्सा दोम की कीमत में तरमीम करने के लिए कह दिया। 'मखज़न' के लिए मज़मून लिखा हुआ तैयार है। स्कूल ही में लिखा था। तातील के बाइस यहाँ आना नहीं हुआ। मदरसा खुलते ही मज़मून भेजूँगा। मगर किस्सा बहुत मुख्तसर है। आजकल लाहौरी रिसालों में लिखते हुए तबीयत हिचकिचाती है। मैं वह ज़बान नहीं लिख सकता जिसका आजकल अक्सर रिसालों में नमूना नज़र आता है और जिसका पैरो अगर कोई एक शख्स है

---

१ व्यस्त २ [illegible]

मुत्तिला फ़र्माइए कि मेरे ज़िम्मे और कितना निकलता है। प्रेम पच्चीसी चौवालीस जिल्दें बाद कमीशन बाइस रुपया बाबत मजामीन वगैरह अड़तिस रुपया मीज़ान कुल साठ रुपया।

आपके दफ़्तर से मुझे अट्ठाइस रुपये की किताबें आयी हैं। वह इस हिसाब में शामिल नहीं हैं। बहरहाल हिसाब लिखते वक्त बराह करम मदों की तफ़सील भी दे दीजिएगा।

नियाज़मन्द
धनपतराय

जवाब आते ही रुपये रवाना होंगे।

२२६

गोरखपुर
१६ नवम्बर १९१७

मुकर्रमे बन्दा जनाब मैनेजर साहब ज़माना

तसलीम। नवाज़िशनामा सादिर हुआ। हिसाबात से मालूम हुआ कि मुझे अपने निस्फ़ की शराकत के लिए फ़िलहाल रुपया भेजने की ज़रूरत नहीं है। छपाई का रुपया किताब छप जाने के बाद वाजिबुल अदा होगा और जो कुछ मेरे ज़िम्मे निकलेगा अदा कर दूँगा।

वस्सलाम

नियाज़मन्द
धनपतराय

२२७

नार्मल स्कूल, गोरखपुर
११ फ़रवरी १९१८

जनाब मुकर्रमे बन्दा मैनेजर साहब ज़माना

तसलीम। आपने अपने नवाज़िशनामे मुवर्रख़ा २७ जनवरी में मेरे ज़िम्मे ज़माना के दफ़्तर की दस रुपये तीन आने की किताबें आमद कर दी हैं। आपको ख़याल होगा आपने मेरे नाम कुल सत्रह रुपये की किताबें भेजी थीं। मैंने आपको सोलह रुपये की मालियत की किताबें वापस कर दी हैं। इस तरह गोया मैं दफ़्तर का सिर्फ़ एक रुपये का और मक़रूज़ हूँ। अगर्चे उन में दफ़्तर

की कई किताबें नहीं हैं लेकिन उनके एवज़ मैंने दास नाशिर प्रेस की किताबें रख दी हैं जो आपकी एजेन्सी से फरोख्त हो रही हैं। बराहे करम इसे नोट फर्मा लें।

नियाजमन्द

धनपतराय

२२८

नार्मल स्कूल गोरखपुर

३ जनवरी १९१८

जनाब मुकरमे बन्दा मैनेजर जमाना

तसलीम। प्रेम पच्चीसी हिस्साए दोम की तैयारी में अभी कितनी कसर बाकी है। कुछ मज़ीद काम हुआ या प्रूफ तक ही मुआमला रुका हुआ है। मैंने आपके दफ्तर से अभी हुआ सतरह रुपये की किताबें मंगवायी थीं लेकिन यहाँ उनकी फरोख्त का माकूल इन्तज़ाम न होने के बाइस उन्हें फिर रवानाए खिदमत करता हूँ। महसूल पार्सल अदा कर दिया है ताकि आपको तावान न हो। इनमें कुछ किताबें दास नाशिर की भी हैं। उनके लेने में गालिबन् आपको एतराज़ न होगा।

जवाब से सरफ़राज़ फ़र्मायें।

नियाजमन्द

धनपत राय

२२९

नार्मल स्कूल गोरखपुर

९ अप्रैल १९१८

जनाब मुकरमे बन्दा मैनेजर साहब जमाना

तसलीम।

प्रेम पच्चीसी हिस्सा दोम को देखकर बेहद मसर्रत हुई। कागज़ ज़रूर हल्का है लेकिन किसी तरह प्रेस से किताब निकल तो गयी। इस ज़माने में यही हज़ार गनीमत है। इसलिए मैं कारखाने का ममनून हूँ। अब मुझे यह बतलाइए कि कुल कितना खर्च हुआ। दफ्तर ज़माना पर मेरे मुतालिबात हस्बे जैल हैं ..पचहत्तर रुपये हस्बे तहरीर आपके और प्रेम पच्चीसी की पचास और सत्तावन जिल्दें जिनकी कीमत बाद कमीशन साढ़े अड़तीस रुपये होती है। एक रुपया खर्च निकालकर साढ़े सैंतीस हुए। इस रकम को पचहत्तर रुपये इस माह में शामिल कर लीजिए।

एक सौ तेरह रुपये दो आने होते हैं। अब आप अपना मतालबा बतलाइए ताकि मुझे मालूम हो कि मुझे कितना देना या पाना है। अब प्रेम बत्तीसी हिस्सा अव्वल की किताबत शुरू कराने का इरादा है। इसमें बीस के क़सस होंगे

१ शोमाए हुस्न २ तिरिया चरित्तर ३ निगाहे नाज़ ४ पञ्चायत ५ आँधे शहर, ६ घरे पुरपुरूर, ७ धोखा ८ बाज़याफ़्त ९ राजपूत की बेटी १० ईमान का फ़ैसला ११ कुर्बानी १२ नेकी का बदला १३ सौत १४ जुगनू की चमक १५ दुर्गा का मन्दिर और १६ फ़तेह।

मुझे मालूम हो जाय तो किताबत के लिए तजवीज करूँ।

आपका
धनपतराय

२३०

गोरखपुर
१४ सितम्बर १९१०

जनाब मैनेजर साहब ज़माना

तसलीम।

आपका ९ सितम्बर का ख़त मिला। प्रेम बत्तीसी पंद्रह रोज़ में तैयार हो जायेगी यह खुशखबरी ख़ास फ़रहत का बाइस हुई। मैंने लाहौरवालों को हिदायत कर दी है कि वो हिस्सा दोम बत्तीसी की पाँच सौ जिल्दें दफ़्तर ज़माना को भेज दें। आपके यहाँ हिस्सा अव्वल तैयार हो जाये तो आप भी पाँच सौ जिल्दें अहलकारों के दफ़्तर को रवाना फ़र्मा दीजियेगा। प्रेम पच्चीसी का फ़ैसला बत्तीसी के निकलने पर होगा। दोनों हिस्से पच्चीसी के साथ ही निकलेंगे। हिस्सा दोम की चंद जिल्दें हों तो उन्हें सस्ते दामों में निकासन की कोशिश फ़र्माइए। क्या हर्ज है अगर बजाय बारह आने के ज़माना में एक जदीद सफ़े पर इसकी क़ीमत आठ आने कर दी जाय। शायद इससे कुछ जिल्दें ज़्यादा फ़रोख्त हो जायें।

वस्सलाम

धनपतराय

२३२

नार्मल स्कूल, गोरखपुर
३ दिसम्बर १९१०

जनाब ख़्वाजा साहब बन्दा नवाज़

तसलीम।

इनायतनामा मिला। मगर मारवाड़ी के सुनने में बहुत ज़्यादा मानी एन

रुपये के बाहर की देर हो तो आप बराहे करम सौ जिल्दें रेलवे पार्सल से लाहौर भेज दें। वहाँ से बार-बार तक़ाज़े आ रहे हैं और मुझे महसूस होना पड़ता है। मैं यहाँ भी सौ जिल्दें कानपुर भेजने के लिए ताकीद कर रहा हूँ। बक़िया जिल्दें मालगाड़ी से रवाना फ़र्माइएगा। उम्मीद है कि आप हस्बुल इमकान उजलत फ़र्मायेंगे।

दूसरी गुज़ारिश है कि मुझे हिसाब आमदनी और ख़र्च का मुफ़स्सल लिख भेजें। एन नवाज़िश होगी।

ज़्यादा वस्सलाम

नियाज़मन्द
धनपतराय

२३२

गोरखपुर
१० जनवरी १९२१

जनाब मुकर्रम

तस्लीम।

शुक्रिया। लाहौरवालों को आज ताकीदी ख़त लिख दिया है। इससे पहले न किताब पहुँच जायेंगी। मेरे पास हिसाब के साथ पाँच जिल्दें ज़रूर रवाना फ़र्माइएगा। मेरे मज़ामीन का दफ़्तर के ज़िम्मे कुल बीस रुपया आता है।

वस्सलाम।

मालगाड़ी का इन्तज़ार कीजिएगा ताकि फिर रेलवे पासल न भेजना पड़े।

नियाज़मन्द
धनपतराय

२३३

[illegible], बनारस
२४ जून १९३२

जनाब मुशफ़िक़े बन्दा ख़्वाजा साहब

तस्लीम।

प्रेम बत्तीसी का हिसाब देखा। समझ में न आया। लाहौरवाले कहते हैं कि प्रेम बत्तीसी हिस्सा दोम की पाँच सौ जिल्दें दफ़्तर ज़माना में आ चुकी हैं आप फ़र्माते हैं सिर्फ़ एक सौ सैंतालिस जिल्दें आयी हैं। इस क़दर तफ़ावुत क्यों? या तो लाहौर की ग़लती या आपसे सहव हुआ है। हिस्साए अव्वल एक हज़ार छपा

हुई। पाँच सौ कहकशाँ की दी गयीं ग़ालिबन मेरे नाम दर्ज हैं जो शामिले अमानत हैं, बाक़ी दफ़्तरे ज़माना में चार सौ सत्तासी रह गयीं। क्या तब के वक़्त से यकुम मई तक तिरपन जिल्दें फ़रोख़्त हो गयीं? मुझे बीस रुपये जो माह में मिले थे वह कुतुब के मुताल्लिक़ न थे मज़ामीन के मुताल्लिक़ थे। अब बराहे करम इतनी तकलीफ़ और कीजिए कि ११ दिसम्बर १९२१ से ११ मई १९२२ तक का हिसाब और तहरीर फ़र्माइए। बग़ायत मशकूर होऊँगा। उम्मीद है कि आप बख़ैर मो आफ़ियत होंगे।

द० मुख़्लिस
धनपतराय

२३४

भारत भवन कबीरचौरा बनारस
१ अप्रैल १९२३

मुशफ़िक़े बन्दा जनाब ख़्वाजा साहब
तसलीम।

इसके क़ब्ल एक ज़रीआ बाबू दयानरायन साहब की मारफ़त आपकी ख़िदमत में इरसाल कर चुका हूँ। जवाब से महरूम हूँ। अभी किताबों का हिसाब एक मुद्दत से नहीं हुआ। बराहे करम मार्च १९२३ तक के अकाउंट मुरत्तब करने की तकलीफ़ गवारा फ़र्मायें। अगर हिसाब तफ़सील के साथ हो जिसमें मुझे समझने में दिक़्क़त न हो। मैं ख़ुद हाज़िर होनेवाला था मगर कई बार और परीशानियों के बाइस अभी तक न आ सका। उम्मीद है कि जवाब से जल्द मुम्ताज़ फ़र्मायेंगे।

नियाज़मन्द
धनपतराय

२३५

सरस्वती प्रेस मध्यमेश्वर, काशी
२९ जुलाई १९२३

मुकर्रम बन्दा जनाब ख़्वाजा साहब
तसलीम मा नियाज़।

बराहे करम जमानी एक जिल्द मेरे बज़रिये भेजकर ममनून फ़र्माइए। उसकी सख़्त ज़रूरत है।

उम्मीद है कि आप ख़ुश होंगे। देखूँ कब तक आपसे मुलाक़ात होती है।

नियाज़मन्द
धनपतराय

महताब राय

२३६

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
२४ अप्रैल

बरादर अज़ीज़मन सल्लमहू

बाद दुआ। कल तुम्हारा खत मिला। हालात मालूम हुए। बच्ची साहिबा का नाम अच्छा किया। यहाँ भी अब सब ख़ैरियत है। बन्नू भी अब अच्छी है।

प्रेस के मुताल्लिक़ तुमने जो तजवीज़ की वह मुझे बहुत पसन्द है। मैं भी यही चाहता हूँ कि प्रेस एक आदमी का हो जाये। मैंने तुमसे जो कहा था कि प्रेस बन्द कर दो उसके मानी भी यही थे कि मैं आधे के रुपये को पूरी रुपया क़र्ज़ समझकर कुछ अभी दे देता और कुछ बाद को और प्रेस का काम जारी रखता। बेचने का इरादा तो उस हालत में था जब मैं भी आज़माइश कर लूँ उसके पहले नहीं। लेकिन अब चूँकि तुमने खुद उसको अपना कर लेने का इरादा किया है बहुत अच्छी बात है। मैं बड़ी खुशी से तुम्हें इसकी सलाह देता हूँ। मगर प्रेस से नफ़ा उठाने के लिए तुम्हें बनारस रहना पड़ेगा। जब तक दो फ़ारम रोज़ न छापोगे काम अच्छा न निकलेगा। और लोगों से मिलने-मिलाने न रहोगे नफ़ा फिर न होगा। पर रहकर उसको भी खसारा होगा या नफ़ा होगा तो इतना ही कि अपना गुज़र कर लो। अगर दो फ़ारम रोज़ छपे तो कोई वजह नहीं कि माकूल नफ़ा क्यों न हो और कोई वजह नहीं कि चार हज़ार कापियाँ भी रोज़ाना न छपे। इसमें मैं इन्तज़ाम की खराबी समझता हूँ। कम्पोज़ीटरों से भी ठेके पर काम लेने का इन्तज़ाम करो। वही कम्पोज़ करें वही डिस्ट्रीब्यूट करें और वही पहला करेक्शन भी करें। यहाँ तो नवलकिशोर प्रेस में यही इन्तज़ाम है। इण्डियन प्रेस में भी यही इन्तज़ाम है। ख़ैर। अब यह देखो कि तुम्हें अगस्त तक कितने रुपये का इन्तज़ाम करना पड़ेगा।

मार्ग साहब की असल दो हज़ार दो सौ पचास रुपया सूद दो सौ सत्तर रुपया कुल दो हज़ार पाँच सौ बीस रुपया। रघुपति सहाय की असल दो हज़ार रुपया सूद डेढ़ साल का एक सौ अस्सी रुपया कुल दो हज़ार एक सौ अस्सी रुपया। कुल मीज़ान चार हज़ार सात सौ रुपया।

क्या तुमने चार हजार सात सौ रुपये का इन्तज़ाम कर लिया है? साफ़-साफ़ बतलाने की ज़रूरत है। मैं साल भर तक रुपये का इन्तज़ार कर सकता हूँ गोया पारसाल जुलाई से मुझे चार हजार पाँच सौ रुपया और छः सौ पच्चहत्तर रुपया (तीन साल का सूद) यानी पाँच हजार एक सौ पच्चहत्तर रुपये देने पड़ेंगे। यानी तुम्हें चार हजार सात सौ और पाँच हजार एक सौ पच्चहत्तर यानि नौ हजार आठ सौ पच्चहत्तर रुपये का इन्तज़ाम करने की ज़रूरत है। मेरा शुमार अभी न करो तब भी चार हजार सात सौ रुपये का इन्तज़ाम तो करना ही पड़ेगा। अगस्त तक तुम इसका इन्तज़ाम कर सकते हो तो करो और अगर किसी ने तुम्हें मदद देने का मौखिक वादा कर लिया है तो उसके धोखे में न आओ।

मैं इसके लिए भी तैयार हूँ कि तुम मइया के रुपये मय सूद के वापस कर दो। इस तरह प्रेस में हम और तुम रह जायेंगे। रघुपति सहाय का रुपया दस्तावेज़ी कर लिया जाये और उन्हें बारह रुपये सैकड़ा सूद हम लोग देते रहें। लेकिन उस हालत मे हममें से कोई भी तनख्वाह न लेगा। काम हम भी करेंगे काम तुम भी करोगे। हम अगर खुद काम न करेंगे तो अपनी तरफ से एक आदमी रख देंगे जो प्रूफ देखेगा और दफ्तर का काम मुलाज़िमों की हाज़िरी वगैरह, हिसाब किताब ठीक रखेगा। अगर यह सूरत पसन्द न हो तो तुम सब को अलहदा करके प्रेस अपना कर लो। लेकिन जब तक रुपये मिलने की पूरी उम्मीद न हो बातों पर न टालो क्योंकि अब की अगस्त में कुछ-न-कुछ इन्तज़ाम ज़रूर करना पड़ेगा। मेरे ख़त का जवाब खूब ग़ौर करके देना।

तुमने कमरा बनवाने की तजवीज़ भाई साहब से की थी। तजवीज़ अच्छी है बशर्ते कि रुपया हाथ में हो। जब तक आमदनी का माकूल इन्तज़ाम नहीं हो जाय खर्च पैदा करने से सिवाय परेशानी के और क्या हाथ आयगा।

और सब ख़ैरियत है। इधर तो मिरज़ा साहब से मुलाक़ात नहीं हुई। बच्चों का और भाभी साहिबा को सलाम।

धनपतराय

२३७

गंगा पुस्तकमाला लखनऊ

यरान्त्रम

बाद दुआ !

तुम्हारा ख़त मिला जवाब में देर इस वजह से हुई कि मैं सोच रहा था क्या जवाब दूँ। एक हज़ार रुपया तो मैं तुम्हें इसी महीने में दे दूँगा लेकिन मुझे थोड़

है कि दवाओं की दूकान चल न सकेगी। बनारस में दवाओं की दूकानें बहुत हैं। फिर तुम्हें सुबह से आठ बजे रात तक दूकान पर रहना पड़ेगा। अगर ऐसा मकान लो जिसमें दवाखाना और रहने का मकान भी हो तो सड़क पर ऐसे मकान का किराया चालीस-पचास रुपये से कम न होगा यह सोच लो। ऐसा न हो कि रुपया भी हाथ से जाय और फिर उसी नौकरी का सहारा लेना पड़े। मेरे ख्याल में तुम्हारे लिए बेहतरीन सूरत यह है कि भाई बलदेवलाल के रुपये दे दो हम और तुम आधे-आधे के हिस्सेदार हो जायें एक प्रूफरीडर तनख्वाहदार रख लिया जाये हम दोनों दिल लगाकर काम करें अच्छे से अच्छा काम निकाला जाये मैं अपनी जिम्मेदारी पर काम तमाशा करने की कोशिश करूँ बनारस ही में रहूँ और कारोबार को बढ़ाऊँ। अपनी किताबें जो अब लिखूँ अपने यहाँ छपवाऊँ और किताबों की दूकान कर लूँ। इसमें शायद दो फारम रोज का औसत पड़ जाय। कम-से-कम मैं कोशिश ऐसी ही करूँगा लेकिन चूँकि तुम्हें यह इन्त जाम पसन्द नहीं है इसलिए मैं मई में तुम्हें एक हजार रुपया दे दूँगा और बाकी एक हजार रुपया अगस्त में। अगस्त में मैं बनारस आ जाऊँगा और वहीं रहूँगा।

और तो कोई ताजा हाल नहीं है।

तुम्हारा
धनपतराय

२३८

लक्ष्मी भवन, गोरखपुर
२ जून

बरादर अजीज सल्लमहू

दुआ। मैं यहाँ पहुँचा तो बाबू रघुपतिसहाय बम्बई में नहीं आये थे। एक दिन के बाद आये और आये भी तो बीमार। डाक्टर की दवा हो रही है। आज उनकी तबीयत अच्छी है। इसलिए अभी रुपये के मुताल्लिक कोई कार्रवाई नहीं हो सकी। मुझे शायद यहाँ दो-तीन दिन यहाँ और ठहरना पड़े। इस असना में अगर यहाँ बाबू दयानारायन का कोई खत आये और उनकी वालिदा साहिबा बनारस आ रही हों तो तुम जरा तकलीफ करके उन लोगों को बुलानाले के धर्मशाला में ठहरा देना और हिन्दी पुस्तक एजेन्सी के माधोप्रसाद से ताकीदन कह देना कि उन लोगों की आसाइश का जरा ख्याल रक्खें। यह काम जरूर करना वर्ना बाद को दयानरायन शिकायत करेंगे।

यहाँ महावीरप्रसाद पोद्दार ने भी एक प्रेस जिसका नाम गीता प्रेस है

जोता है। मैंने उनसे अपने प्रेस के लिए भी काम देने को कहा है। मुमकिन है कुछ काम मिलता रहे। मैं यहाँ से लौटकर सीधे इलाहाबाद जाऊँगा और हिन्दी के टाइप लाने की फ़िक्र करूँगा। मगर तुम्हें यह मालूम रहे कि यह सब कोशिश तुम्हारे ही भरोसे पर की जा रही है। इस वक़्त तुम्हें थोड़े नुकसान का खयाल तर्क कर देना पड़ेगा। रोज़गार में पहले नफ़ा तो होता ही नहीं महज़ आइन्दा नफ़े के ख़याल से काम किया जाता है। तुम इस प्रेस को बिल्कुल अपना समझ कर चलाओ और जब तक तुम्हें इतना न मिलने लगे कि तुम्हारा खर्च आसानी से चलने लगे तब तक मुझे या भाई बलदेवलाल को कुछ देने की ज़रूरत नहीं और न हम तुमसे इसका तकाज़ा करेंगे। ईश्वर बड़ा कारसाज़ है। अगर काम बढ़ गया तो आइन्दा के लिए लड़कों को भी रोज़गार की एक सूरत निकल आयेगी। मैं पब्लिशिंग भी करने का मुसम्मम इरादा रखता हूँ। एक हज़ार से इस काम को शुरू करूँगा। इसमें जो नफ़ा होगा उसके एक चौथाई के हक़दार तुम होंगे। प्रेस में एक चौथाई तुम्हारा है ही। क्या इन दोनों सूरतों से साल या दो साल में पचास रुपया माहवार भी न मिलेगा। तुम्हारी काम करने की तनख्वाह या गुज़ारा जो चाहे समझो साठ रुपया कैपिटल से उस वक़्त तक निकलेगा जब तक इतनी गुंजाइश प्रेस से न होने लगे। मुझे यक़ीन है कि तुम्हें इसमें कोई एतराज़ न होगा। इस वक़्त बज़ाहिर चालीस रुपया माहवार का नुकसान ज़रूर है लेकिन कौन कह सकता है कि तीन चार साल में हमको प्रेस से दो सौ रुपया माहवार और पब्लिशिंग से भी दो सौ रुपया माहवार न मिलने लगेगा। इसलिए यहाँ तुम्हें खुशगुज़ारी हो जायगी वहाँ आइन्दा के लिए भी फ़ायदे की सूरत हो जायगी। तुम्हें इसलिए ज़ोर देता हूँ कि हर आदमी दूसरे के काम अपना नहीं समझ सकता वर्ना यों पचास रुपये में मामूली किराये का टट्टू आसानी से दस्तयाब हो सकता है। तुम पहली जुलाई से मगर उस वक़्त तक टाइप आ जायें इस्तीफ़ा देने का इरादा मज़बूत कर लो। औरतों के कहने में न आना। अब तो जिस क़दर जल्द काम शुरू कर दिया जाये उतना ही अच्छा है। मुमकिन हो तो गौरीशंकर जी को भी लिखना कि दुकान में उनके कुछ पड़ रहने के क्या माने हैं? क्या वह उसका किराया देंगे? ऊपर के कमरों में भी उन्हीं के लोग रहते हैं। यह दरयाफ़्त कर लेना चाहिए कि वह लोग गौरीशंकर की मर्ज़ी से रहते हैं या खुद-ब-खुद। अगर गौरीशंकर की मर्ज़ी न हो तो उन लोगों से मकान खाली करने को कहना होगा। ऐसा न हो कि हम तो समझें हम गौरीशंकर पर एहसान कर रहे हैं और वह कहें मैंने कब कहा था कि आप इन आदमियों को रहने दीजिए। साहित्य विद्यालय वालों से भी कहना होगा कि वह लोग

हम लोगों की मर्जी के बगैर यहाँ क्यों आते हैं। उन लोगों में इतनी इन्सानियत तो जरूर होनी चाहिए थी कि जिसके घर में आकर बैठते और पढ़ते हैं एक मरतबा उससे पूछ तो लें।

और क्या लिखूं। शायद मैं यहीं से कानपुर चला जाऊं और आने में देर हो इसलिए तुम्हें यह सब बातें लिख दी हैं। बच्चों का खयाल रखना। तुम्हारे सिवा यहाँ और कौन है। एक बार रोज प्रेस में जाकर देख आया करना। ईप्रेस और रेक तय कर लेगा। अब आप मजलिस से डरने की जरूरत नहीं। और कोई ताजा हाल नहीं। यहाँ गर्मी बहुत कम है। मालूम होता है देहरादून है। दुआ।

तुम्हारा—
धनपतराय

२३६

१ अक्टूबर

बरादरम

खत पहुंचा। कल एक खत लिख चुका हूं। आज फिर प्रेस के मुताल्लिक तुमसे कुछ मशविरा करना चाहता हूं। दशहरे में आ जाता तो सब बातें मुफस्सल तय हो जावें। यहाँ मेरे दोस्तों की और नीज घरवालों की राय कलकत्ते में प्रेस करने की नहीं होती और मैं भी इसमें कोई ज्यादा फायदा नहीं देखता। पोद्दार जी ही के बयान के मुताबिक उसका सालाना नफा सोलह सौ के करीब है। इस हिसाब से हम लोगों को आधे हिस्से पर आठ सौ सालाना मिलेंगे। पांच हजार का सूद सालाना साढ़े चार सौ हुआ। गोया कुल सालाना फायदा बारह सौ के करीब होगा। कुछ कम या ज्यादा होना भी मुमकिन है। क्या अगर हम लोग अपना काशी प्रेस पांच हजार के सरमाये से बनारस में खोलें तो सौ रुपया माहवार या बारह सौ सालाना नफा न होगा? मेरा खयाल है कि जरूर होगा। इससे कम किसी तरह नहीं हो सकता। यहाँ इससे छोटे-छोटे प्रेस जो दो-चार हजार से खुले हुए हैं सौ रुपया माहवार कमा रहे हैं। मैं यह चाहता हूं कि तुम किसी नये प्रेस की तलाश में रहो जिसमें टाइप ट्रेडिल मशीन वगैरह सब सामान मुकम्मल मौजूद हो। अगर सेकेण्डहैण्ड न मिल सके तो कलकत्ते के किसी फर्म से नये सामान का आर्डर करो। बस कोशिश यह होनी चाहिये कि बजट पांच हजार से ज्यादा न होने पावे। मेरे पास इस वक्त तीन हजार मौजूद हैं। अप्रैल मई तक एक हजार और हो जायगा क्योंकि रघुपति सहाय से और

लाहौर के पब्लिशरों से रुपया वसूल हो जायगा। इधर मैं भी कानपुर इलाहाबाद वगैरह में तलाश करता रहूँगा। बनारस में भी सुराग लगाता हूँ। यहाँ अभी हाल ही में दो आदमी बनारस से सामान लाये हैं और खूब चली। फैजाबाद का ताल्लुकेदार प्रेस बिक रहा है। तीन हजार में सब सामान मिलता है। मुंशी गुलजारीलाल से दरियाफ्त किया है। देखूँ क्या जवाब आता है। अब इस इरादे को मुस्तकिल समझो। तुम्हारे कलकत्ता रहने से मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं बिलकुल अकेला हूँ। मुझे हमेशा एक मददगार की जरूरत मालूम होती है। मेरी सेहत कुछ अच्छी होती मालूम होती थी लेकिन अब फिर ज्यों की त्यों हो रही है। जल-चिकित्सा से भी कोई फायदा ज्यादा नहीं हुआ। ऐसी हालत में मेरी दिली आरजू यह है कि बनारस में तुम्हारे मुस्तकिल रहने का इन्तजाम हो जाये ताकि तुम हर हालत में घर को सम्हाल सको। कलकत्ते में रहकर तुम घर को हरगिज नहीं सम्हाल सकते। खुदा न ख्वास्ता मैं न रहा तो तुम्हें कितनी मुश्किल पड़ेगी। तुम रहोगे कलकत्ता मेरे बाल-बच्चे रहेंगे बनारस कुछ भी न हो सकेगा। इसलिये मेरी तुमसे दरख्वास्त है कि बनारस आने की फिक्र करो। अब तुम्हें पाँच हजार रुपये मिल सकते हैं। उसकी फिक्र नहीं। मार्च-अप्रैल तक अगर प्रेस का इन्तजाम हो जाय तो मई-जून में हम लोग मकान वगैरह लेकर बनारस में जम जायें। ऐसा मकान लिया जाय कि उसमें प्रेस भी रहे और तुम भी रहो। मेरे बच्चे कभी बनारस रहें कभी मेरे साथ। छुट्टियों में मैं भी बनारस आया करूँ और कुछ तुम्हारी मदद किया करूँ। साल-छः महीने में जब काम चल निकले तो मकान बनवाना शुरू कर दिया जाय। तुम एक सायकिल ले लो और अपनी निगरानी में मकान बनवाओ। इस तरह आइन्दा का इन्तजाम पूरा हो जायगा और मुझे इत्मीनान हो जायगा कि मैं कच्ची गृहस्थी छोड़कर नहीं मरा। कलकत्ते में काम करने से यह बातें एक भी पूरी न होंगी और मैं इस फिक्र से नजात न पाऊँगा। कानपुर में दयानारायन और रामभरोसे मुझे शरीक करना चाहते हैं और बीस हजार से प्रेस खोलना चाहते हैं लेकिन अब मैं बनारस के सिवाय और अपने लिये कहीं सुभीता नहीं पाता। बनारस में चाहे नफ्अ कुछ कम ही हो लेकिन मुझे यह इत्मीनान रहेगा कि मेरे बाद खानदान भूखों नहीं मरेगा और इज्जत के साथ निबाह होता जायगा। यह भी मुमकिन है कि मैं बनारस तबादला करा लूँ। तब तो चैन ही हो जायगा। हम-दोनों साथ रहेंगे और एक दूसरे की मदद करते रहेंगे। जो कुछ अपने पास रुपया जमा होगा वह कारोबार बढ़ाने में खर्च करेंगे। और मुमकिन हुआ तो दस-पाँच बीघा जमीन ले लेंगे ताकि एक हल की खेती का भी आसानी से इन्तजाम हो जाये। खाने

को गल्ला घर पर हो जाये दीगर मसारिफ़ के लिए प्रेस से आमदनी हो जाये। कोशिश यह करेंगे कि प्रेस मयेसर या बेतगंज के आसपास खुले। शुरू में कुछ दौड़-धूप करनी पड़ेगी जो कलकत्ते में न करनी पड़ती लेकिन आइन्दा की बेहतरी के ख़याल से इसे बर्दाश्त करना पड़ेगा। तुम पोद्दार जी से इन बातों का साफ़-साफ़ समझ लेना और उनसे रुपये लेकर कहीं अमानत रख देना। अगर कहीं प्रेस का सौदा पट जाये तो यह रुपये बयाने का काम देंगे। दसहरे में आओ बल्कि आओ इस बारे में और भी सलाह हो जायगी लेकिन अब अपनी सेहत की हालत देखते हुए मैं तुम्हारा कलकत्ते रहना पसन्द नहीं कर सकता। और तो कोई हाल ताज़ा नहीं है। नाना साहब ने यहाँ चार अक्तूबर को बड़ा भोज है। अगर तुम आ जाते तो उसमें शरीक होते वर्ना मुझे जाना पड़ेगा और बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ेगी। तुम बनारस रहोगे तो कुछ मेरे लिटरेरी काम म भी मदद करोगे। हम लोग अपनी किताबें भी खुद ही छाप लिया करेंगे। जब तक इसका इन्तज़ाम न हो जाय तुम नौकरी करो चाहे पोद्दार जी के प्रेस में चाहे किसी दूसरे प्रेस में। लेकिन अर्से म तुम्हे हमेशा के लिए कलकत्ता छोड़ना पड़ेगा अगर गृहस्थी और खानदान की तुम्हें फ़िक्र है। बस यही मेरा आख़िरी फ़ैसला है। अब इसमें किसी किस्म का रद्दोबदल मैं न करूँगा। तुम खुद इसका फ़ैसला कर सकते हो कि प्रेस के लिए नया सामान ख़रीदना बेहतर होगा या सेकेण्डहैण्ड। क्या-क्या सामान दरकार होंगे इस बारे म मुझे फ़िलहाल कोई तजुर्बा नहीं है।

और क्या लिखूँ यहाँ सब ख़ैरियत है। फ़हत का सामान हो गया। बुआ। भाई बलदेवलाल से मैंने पाँच सौ माँगे थे लेकिन मेरा ख़त पहुँचने के पहले ही वह एक हज़ार की फ़िक्र कर चुके थे। कोई शक नहीं कि वह निहायत नेकनियत और साफ़ दिल आदमी हैं।

तुम्हारा

धनपतराय

२४०

गंगा पुस्तक माला, लखनऊ

१० अगस्त १९२९

बरादरम सल्लमहू,

बहुत दिन हुआ। तुमने मेरे ख़त का अभी तक जवाब न दिया। मैंने यहाँ से चलने की इन्तज़ारी में धोबी को कपड़े देना बन्द कर दिये आटा बाज़ार से मँग-

जाता हूँ कि पचासा पिस जायगा तो क्या होगा। मुन्नू का नाम नहीं लिखाया और तुम मेरे ख़तों का जवाब ही नहीं देते। आख़िर तुमने क्या फ़ैसला किया? किस तरह काम चलाना चाहते हो। मैंने कई सूरतें लिखीं तुमने एक भी न पसन्द की। आख़िरी सूरत मैंने यह लिखी कि ठेके का इन्तज़ाम करो या तुम ठेका लो या न। रुपया सैकड़ा माहवार सूद चार रुपया सैकड़ा सालाना घिसाई। इस शर्त पर अगर ठेका लेकर काम करना चाहो तो करो वर्ना कोई दूसरी सूरत बतलाओ जिससे किसी का नुक़सान न हो। मैं इसी शर्त पर ठेके पर काम करने को तैयार हूँ। अगर तुम ठेका लोगे तो मैं लखनऊ से अपना सिलसिला न तोड़ूँगा। तुम न ठेका लोगे तो ख़ुद आकर काम करूँगा। जवाब में देर न करो। अभी गुज़िश्ता साल का हिसाब देना है। वह सब तुमने तैयार किया या नहीं। अबकी साफ़ ख़त लिखो। ठेका मंज़ूर हो तो साफ़-साफ़ लिख दो न ले सकते हो तो साफ़-साफ़ लिख दो। इस तरह दो साल गोलमाल करते हो गया। कब तक नुक़सान उठाया जाय। अब तुम नफ़ा नहीं हासिल कर सकते तो ख़्वामख़्वाह हम लोगों को क्यों बरबाद करते हो। हाँ ठेके का हिसाब माहवार करना पड़ेगा।

मैं कई दिन से चारपाई पर हूँ। पैर में फोड़ा निकल आया है। कल नश्तर दिलाया है। उठ-बैठ नहीं सकता हूँ लेटे-लेटे ख़त लिखता हूँ।

उम्मीद है कि अब ज़रूर जवाब दोगे जिसमें पहली सितम्बर से बनारस का इन्तज़ाम हो जाय वर्ना मजबूरन मुझे प्रेस बन्द करना पड़ेगा। ज़्यादा दुआ। उम्मीद है कि तुम लोग अच्छी तरह होगे।

तुम्हारा
धनपतराय

२४२

बरादरम

प्रेस का हाल यह है कि सितम्बर से जनवरी तक तो बेकारी रही। वही एक किताब नन्दकिशोर की और एक किताब चौधरी की चली। मजदूरी पास से देनी पड़ी। क़रीबन तीन सौ रुपया मजदूरी में सर्फ़ हो गये। जनवरी में कुछ टाइप लिए तब से मामूली तौर पर काम चल रहा है। और इलाहाबाद से कुछ काम लिया और कुछ और देनेवाला है। लाहौर से काम मँगवाया था। मगर उनकी बदमुआमलगी की वजह से आज वापस किये देता हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि लाहौरवाले मजदूरी देने में बहुत तंग करते हैं।

अब महरियासराय से काम मिलने की उम्मीद है। मेरी दो किताबें भाषण

के मत्थे में चल रही है। टाइप के लिए चार सौ रुपये मैंने सर्फ किये एक सौ साठ रुपया भाई साहब तीन सौ नन्दकिशोर से लिये चार सौ भागव साहब से। भागव के रुपया में अब दो सौ और बाकी है। नन्दकिशोर का जितना लेना-देना था तासिबन बेबाक हो गया है सिर्फ तीन सौ रुपया जो नकद के थे नहीं बाकी है। वसूल मामा से हुए चालीस रुपया मानिक से और शायद एक सौ पचास और रुपये वसूल हुए होंगे। और किसी से वसूल न हुआ। तुम्हें मैंने जनवरी से बारह सैकड़ा सूद या हजार रुपया पर पन्द्रह रुपया माहवार देने का फैसला किया है। अगर काम खातिरख्वाह चल गया तो सूद एक रुपया सैकड़ा हो जायगा मगर अभी तक तो आमदनी खर्च बराबर ही है। तुम्हारे चालीस रुपये हुए मार्च के आखीर तक। उसमें दस रुपया भेजता हूँ और जब-जब मिलता जायगा देता जाऊँगा। अगर मन्दिर में हाथ लगा दिया होता तो वह दस रुपया भी तुम्हारे सूद के मद में जाते। खैर, अब तो उसे किसी तरह पूरा करना है। आज सहदेव से पचास फुट चून के लिए कहूँगा।

मैं तुम्हारी तरफ से बिलकुल बेफिक्र नहीं था। लेकिन क्या करूँ पुराने मकान का किराया भी बीस रुपये माहवार दे रहा हूँ। माता प्रसाद के कर्ज में अब उनके हिसाब से नौ रुपया और तुम्हारे हिसाब से तीन रुपया और बाकी रह गये हैं। हरिहर नाथ को भी इस माह में कुछ देना है। रघुपति सहाय की बहिन की शादी मई में है। दो सौ रुपया माँग रहे हैं। आज 'चाँद' को लिखूँगा कि हमारी कमाई में से दो सौ रुपया उन्हें दे दें।

तुम्हारा
धनपतराय

२४२

सरस्वती प्रेस
बनारस सिटी

बरादरम

तुमने मुझे पहले भी रुपय के लिये लिखा था और अपनी तिहीदस्ती का उजर किया था। तुम्हें मालूम है कि मैंने प्रेस के लिए एक हजार तीन सौ रुपये के टाइप बनवाये थे। वह रुपये अभी तक पूरे अदा नहीं हो सके। बमुश्किल प्रेस का खर्च निकाल कर टाइप के रुपये अदा कर रहा हूँ और जो तुमने नंदकिशोर के छः सौ रुपये कर्ज पर लिये थे वो सब अदा कर रहा हूँ। बाबू हरिहरनाथ का सूद अदा कर रहा हूँ। पुराने मकान का किराया बीस रुपया माहवार अदा कर रहा हूँ फिर भी इस कोशिश

में हूँ कि मुमकिन हो तो तुम्हारी मदद करूँ। मुलाज़मती हो जाने पर तुम्हें एक सौ अस्सी रुपये यहाँ से हो सके हूँ। और दूँगा। तुमने प्रेस में इतना झंझट घोल रखा है कि उससे फुरसत ही नहीं मिलती। खैर पीर खुद मदि बरवाह कहाँ से लगे। मेरी हालत खुद ही अबतर है। तुम्हें खुदा खुश रखे। प्रेस बहादुर तो मौजूद है। मैं किसकी काम को दुआ करूँ। प्रेस में इतना नफ़ा कहाँ कि पाँच महीने में एक हजार तीन सौ रुपये टाइप का एक सौ रुपये पुराने मकान का छ सौ रुपये नवलकिशोर का पचास रुपये तुम्हारी माता जी का पचास रुपये शिव नंदन प्रसाद और माता प्रसाद का क़र्ज़ा अदा करके अपना गुजर भी कर लूँ और तुम्हारी फिकर भी रखूँ। निवत बखर यह है कि काम सबका चलता रहे। मगर सब काम निवत से ही तो नहीं हो जाते। इसका तुम यकीन रखो कि मैं साल आखिर तक तुम्हें खुद इससे वायदा जिस तरह मुमकिन होगा दूँगा। और तो मेरी हालत इस क़ाबिल नहीं कि तुम्हारी और कुछ मदद कर सकूँ। मैं खुद ही अपने मसारावात से बार बार हूँ और मालूम नहीं होता कैसे जिंदगी पार लगेगी। शायद फिर नौकरी करनी पड़ेगी या क्या होगा। इस वक्त तो मैं भी तंगहाल हूँ। और क्या लिखूँ।

तुम्हारा

धनपतराय

२४३

गोरखपुर

७ अक्तूबर १९२०

बरादर मजीशमन सलामहू।

बाद दुआ।

तुम्हारा खत मिला। पढ़कर कुछ खुशी भी हुई कुछ रंज भी हुआ। खुशी इसलिए हुई कि तुम्हारे दिल में बरादराना मुहब्बत के ऐसे ऊँचे भाव मौजूद हैं रंज इसलिए कि तुमने मेरी बातों का मंशा ग़लत समझा। मैंने पोद्दार जी को जो खत लिखा है उसमें मेरा मंशा सिर्फ यही है कि मैं श्रीपतराय के नाम से सामा चाहता हूँ अपने या तुम्हारे नाम से नहीं। हम और तुम अपनी फ़िक्र कर सकते हैं और बच्चे ही के आइन्दा के खयाल से यह सब इन्तज़ाम करने की फ़िक्र है। इसलिए वही सामेदार भी रहे। चूँकि तुम वहाँ मौजूद हो और तुम्हारी निग रानी में उसकी जायदाद रहेगी इसलिए तुम गोया उसकी जायदाद के रक्षक और मालिक हो। इन्हीं वजूह से मैं तुम्हारे ऊपर उसकी परवरिश की ज़िम्मेदारी का बार डालना नहीं चाहता था। मैं इस बहुत (जरूरी समझता हूँ)

हूँ कि तुम्हारे जिम्मे उसकी ट्रस्टीशिप रहे। मैं क्या अगर सब रुपया तुम्ही देते तब भी यही कहता कि साझा श्रीपतराय के नाम से हो क्योंकि मैं जानता हूँ कि तुम उसे अपने या मेरे नाम के मुकाबले में ज्यादा पसन्द करोगे। और यह तो म अब भी कहता हूँ कि जिस जायदाद को मैं तुम्हारे लिए लेता उसके लिए भी तुम्हें कब लेने की सलाह न देता और म तुम्हारे ऊपर उसका बार डालता। अलबेद लाल ने कहा था कि मेरे पास सात सौ रुपये हैं, वह मैं तुम लोगों को दे सकता हूँ। चाची साहिबा सिर्फ नाना के भरोसे पर वादा करती थी लेकिन अब नाना साहब मुझे दो सौ रुपये वापस नहीं दे सके (मैंने सात सौ रुपये माँगे थे मगर उन्होंने पाँच ही सौ दिये) तो मैं कैसे उम्मीद करता कि वह तुम्हें या हम एक हजार दे दगे। इसीलिए मैंने लिखा था कि महताबराय वाले में है यानी हम लाग दोनो बोझे मे है। काम वही करना चाहिए जो अपने सम्हाले सम्हल सके। कज लेना मुझे किसी तरह पसन्द नही खासकर ऐसे काम म।

मैंने पहले भी पोद्दार जी को जो लिखा था उसका मंशा बजुज इसके और कुछ न था कि चूँकि महताबराय कलकत्ते में एक अजनबी आदमी है और दुनिया की मक्कारियों से अभी वाकिफ नही है इसलिए म तुम्हारी ट्रस्टीशिप को उतना ही जरूरी समझता हूँ जितना पोद्दार या किसी एसे ही मोतबर शख्स की मदद को। अब तुम खुद लिखते हो कि मैं अपना नाम नहीं रखना चाहता था और बार-बार मुझे लिखते थे कि आप शरीक हो जाइये तो अब मैंने तुम्हारे हुक्म की तामील की तो तुम क्यों बदगुमान होते हो। पोद्दार जी हर एक खत म लिखते थे कि बाबू महताब राय मेरे साझेदार होंगे। आप पंच बनियगा। अब मेरे और उनके दरमियान कोई इख्तलाफ हो तो आप फैसला कीजियेगा। मैंने पंच बनने स बचने क लिए लिखा कि महताब राय साझेदार न होंगे बल्कि श्रीपतराय होंगे और मैं पंच नहीं बनूँगा बल्कि प्रोफेसर रामदास गौड़ को पंच बना दूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे दिल में मेरे और मेरे बच्चों की निस्बत ऐसे ऊँचे खयालात है। मैं हमेशा तुम्हारी सआदतमंदी की तारीफ किया करता हूँ। अगर मैं जानता कि तुम इस बात के लिखने से इतने बदगुमान हो जाओगे ता हरगिज न लिखता। अगर तुम्हारा बच्चा होता तो मैं इस साझे को अपने और तुम्हारे बच्चे दोनों ही के नाम से लेता या कोई दूसरी जायदाद लेता तब भी और अगर ईश्वर ने जिन्दगी बाकी रक्खी तो मैं इसे साबित कर दूँगा। हाँ एक बात जरूर है। चूँकि मेरे घर में भी औरत है और तुम्हारे घर मे भी औरत है मैं यह नही चाहता कि खुदा न ख्वास्ता अगर मेरी जिन्दगी वफा न करे तो औरतो म तानाजनी हो और एक दूसरे पर रोब या सख्ती जताये। मैं यह साफ

कर देना चाहता हूँ कि मैं अपने लड़के के लिए जो कुछ करता हूँ वह सब अपनी खुशदिली से करता हूँ और उसके बचपन पर महज उसकी सरपरस्ती और निगरानी का बार थामना चाहता हूँ। महज तुम्हें इस बात का मौका देने के लिए कि तुम अपनी सलाहियतमंदी का इजहार कर सको मैं कलकत्ते के कारोबार में शरीक होने पर राजी हुआ। हालाँकि मेरा शुरू से इरादा था कि तुम बनारस रहते और यहीं कामराज को अपने साथ रखकर मुझे हर एक फ़िक्र से आजाद कर देते। यहाँ फ़ैजाबाद में एक ताल्लुकेदार प्रेस बिक रहा है। उसकी बाबत मैंने मुंशी गुलजारीलाल को लिखा भी है। खुलासा यह है। मेरा मंशा पोद्दार को इस खत लिखने का और कुछ न था कि श्रीपत राय उसका मालिक और महताब राय उसके ट्रस्टी रहें। इसके लिए तुम्हें बदगुमानी की कोई वजह नहीं है। प्रेस का जो नफ़ा होगा (या नुकसान भी हो सकता है) उसके खर्च की मैंने यह सूरत सोची है कि मकान बनवाऊँगा क्योंकि इस तरह हम लोगों के पास काफ़ी रुपया जमा होना मुश्किल है। इसी ख्याल से मैंने तुम्हें प्रेस के काम में लगाया और अब भी हमेशा इसी कोशिश में रहूँगा कि तुम्हारा प्रेस किसी तरह बनारस चला आये। एक और बात याद रक्खो। तुम्हारा दिल मैं जानता हूँ बहुत साफ़ है, लेकिन औरतों का दिल अक्सर तंगख्याल होता है। तुम्हारी बीबी को शायद मालूम हो कि तुम रुपया कर्ज ले रहे हो महज इस लिए कि श्रीपतराय के नाम से प्रेस खरीदो तो वह इसे हरगिज पसन्द न करेगी। तुम सलाहियतमंदी से ख्वाह उसे डाँटते रहो लेकिन बहुत मुमकिन है कि इससे तुम्हारी खानगी में हसद पैदा हो और तुम्हारे घर में एक रार मचे। इन सब बातों का ख्याल करके मैंने यही इरादा किया कि रुपया सब मेरा हो जो मैंने अपनी मेहनत से वसूल किया था। वह तुम्हारी निगरानी में लड़के के नाम से लगा दिया जाय। गोया तुम उसकी जायदाद के ट्रस्टी रहो। और जब तुम भी साहिबे औलाद हो जाओ (ईश्वर करे कि मैं वह मुबारक दिन देखूँ) तो हरेक जायदाद में दोनों भाइयों की औलादें बराबर की हिस्सेदार रहें दोनों का साथ साथ नाम चले। इसीलिए तुम्हारे दिल में मेरे इस खत से जरा भी मलाल हो तो उसे निकाल डालो क्योंकि तुम मेरे खत का मंशा पूरी तरह समझ गये होगे। ईश्वर ने चाहा तो दो-चार साल में हम लोग इस प्रेस के पूरे मालिक हो जायेंगे और उसे बनारस में लाकर काम करेंगे।

आज लाला साहब का खत आया है। [illegible] लाल की बीबी का इन्तकाल हो गया। २ अक्टूबर को ब्रह्मभोज होगा।

अभी पोद्दार जी का खत नहीं आया। खत आने पर मैं रुपया भेजूँगा।

तुम्हारे पास ढाई सौ रुपये मौजूद होंगे पाँच सौ बलदेवलाल भेजनेवाले हैं। मैं सिर्फ़ ढाई हजार हुँगा। रघुपति सहाय से वसूल नहीं हुए। कल रुपये पोद्दार जी के पास पहुँच जायेंगे। अक्टूबर से जनवरी तक दो सौ तुम्हारे पास हो जायेंगे ढाई सौ मेरे पास तनख्वाह से होंगे। दो सौ रुपये 'ईसार' से मिलेंगे और साढ़े तीन सौ रुपये 'प्रेम बत्तीसी' और 'बाज़ारे हुस्न' के मिलेंगे। गोया एक हजार हम लोग जनवरी तक पूरा कर देंगे। फ़रवरी में रघुपति सहाय से सात सौ रुपये मिल जायेंगे। इस तरह अप्रैल तक हम सब हिसाब साफ़ कर देंगे। तुम आधे प्रेस के मालिक हो जाओगे। बलदेव लाल का रुपया आइन्दा अक्टूबर तक पहुँच जायगा।

बयाना दुआ।

तुम्हारा धनपतराय
धनपतराय

२४४

सरस्वती प्रेस, बनारस
१ जून १६३१

बरादर अज़ीज़मन

बाद दुआ। मैं यहाँ बारह मई को आ गया था। मुन्नू और बन्नू बेटी के साथ पन्द्रह को सागर के लिए रवाना हुए। सोलह को इलाहाबाद पहुँचकर बन्नू को पेचिश हो गयी। मुझे तार मिला। उन्नीस को हम और बन्नू की वालिदा यहाँ से इलाहाबाद गये। बन्नू की हालत खराब थी। खून के दस्त आ रहे थे। २७ तक वहाँ रहना पड़ा। २७ को हम बन्नू के साथ घर लौट आये। मुन्नू वासुदेव प्रसाद के साथ सागर गये। यहाँ आकर मैंने दो-तीन दिन प्रेस का हिसाब-किताब देखा। आज फिर जा रहा हूँ। ६ जून को यहाँ से इलाहाबाद होते हुए गोरखपुर जाने का इरादा है। ११ को मुझे लखनऊ पहुँचना है।

कल भाई साहब से बातचीत हो रही थी। उनसे मुझे यह मालूम करके कुछ हँसी भी आयी कुछ ताज्जुब भी हुआ कि तुम अभी तक उस लग्वी दुएस को जो आज से छः-सात साल पहले यहाँ मेरे और तुम्हारे दरमियान हुआ था तमस्सुक की तरह महफ़ूज़ रखे हुए मुझसे अपने रुपए के लिए एक रुपया सैकड़ा ब्याज की उम्मीद रखते हो। यही बात एक बार मुझसे रामकिशोर ने भी कही थी। मगर मुझे उनकी बात का यक़ीन न आया था। मगर भाई साहब की

ख़याल से सुनकर अब मालूम होता है कि तुमने उनसे भी कहा होगा और मुझे इस वक़्त इस मामले को साफ़ करना ज़रूरी मालूम होता है।

जिस वक़्त हमारे और तुम्हारे दरमियान यह तस्फ़िया तय हुई थी न तुम्हारे पास रुपये थे न मेरे पास। तुमने भी अगर मेरा हाफ़िज़ा ग़लती नहीं करता तो हज़ार चार सौ बोली बोली थी। क्या तुम कह सकते हो कि उस वक़्त अगर मैं नौ हज़ार चार सौ पर राज़ी हो जाता तो तुम मेरे और रघुपति सहाय के हिस्से के रुपये इसी परते से अदा कर देते? हरगिज़ नहीं। न तुम अदा कर सकते थे और न मैं ही इस क़ाबिल था कि तुम्हारे एक हज़ार नौ सौ रुपये जो इस परते से होते अदा कर देता। नतीजा यह होता कि प्रेस तुम्हारी ही निगरानी में रहता और जिस तरह काम चलता था उसी तरह चलता रहता। मेरा मंशा प्रेस को अपनी निगरानी में लेकर उससे कुछ नफ़ा करने का था। मुझे यक़ीन था कि मैं नफ़ा कर सकूँगा इसलिए कि मुझे अपने ही रुपये की फ़िक्र नहीं रघुपति सहाय के रुपये की भी फ़िक्र थी। मुझे प्रेस को अपनी निगरानी में रखने की ज़रूरत महसूस होती थी। मुझे यह भी महसूस हो रहा था कि प्रेस से अलहदा होकर तुम अपने लिए इससे बेहतर कोई सबील निकाल सकते हो। प्रेस में पड़े-पड़े न तुम्हारा ही भला हो रहा है और न हिस्सेदारों का। इन ख़यालों के पेशे नज़र ही मैंने तुम्हारे हाथ से इन्तज़ाम लिया वर्ना तुम भी जानते हो और मैं भी जानता हूँ कि उस वक़्त भी बाज़ार में प्रेस की क़ीमत उतनी किसी तरह नहीं लग सकती थी।

अगर यह मान लिया जाय कि तुम रुपये अदा कर देते और तुम्हारे पास उस वक़्त दस हज़ार रुपया मौजूद थे (हालाँकि यह ग़ैर-मुमकिन मालूम होता है) तब भी तुमने प्रेस के लेन और देने की जो फ़र्द पेश की थी और जिसकी बिना पर मैंने तुम्हारे रुपये चुका देने का इरादा किया था वह सही नहीं निकली। उसकी ज़्यादा रक़में ऐसी थी जो वसूल न हो सकती थीं और न वसूल हुई और कई रक़में उसमें से ऐसी छूट गयी थीं जो फ़ौरन अदा करनी पड़ीं। मेरा ख़याल है कि इस फ़र्द के मुताबिक़ प्रेस को दो हज़ार दो सौ रुपये मिलने चाहिए थे। मुझे दो हज़ार दो सौ रुपया मिल जाते तो मैं तुम्हें एक हज़ार नौ सौ रुपया देकर बेफ़िक्र हो जाता। मगर इन दो हज़ार दो सौ रुपये में शायद मुश्किल से पाँच सौ रुपया वसूल हुए होंगे। देने में कई बड़ी-बड़ी रक़में निकल आयीं जो अदा करनी पड़ीं। इसलिए जिस बेसिस पर मैं रुपये अदा करने का इरादा कर रहा था वह ही ग़लत निकला। मगर नामनूनसूरत रुपये तुम्हारे नाम डाल दूँ और जो और आखिर मुझे तुम्हारे चुकाने के लिए देने पड़े तो तुम्हारा हिस्सा ही ग़ायब हो जायगा। मेरे

पास तुम्हारे ज़माने के लेने और देने की सही नक़ल मौजूद है जिसके एतबार से लेना एक हज़ार तीन सौ रुपया ठहरता है और देना एक हज़ार छ सौ पैंतीस रुपया। लेने में एक हज़ार तीन सौ बीस रुपया भी वसूल नहीं हुए मुश्किल से पाँच सौ रुपया वसूल हुए होंगे। देने में शायद एक हज़ार छ सौ पचीस रुपया से कुछ ज़ायद ही देना पड़ा। इसलिए मुझे ताज्जुब होता है कि तुम किस क़ानून इन्साफ़ से अपने रुपये के सूद के हक़दार हो सकते हो।

यह ज़रूर है कि तुम्हें प्रेस मे फँसने और रुपये लगाने का अफ़सोस हो रहा है। मुझे भी हो रहा है। भाई साहब को भी हो रहा है। रघुपतिसहाय को भी हो रहा है। सब के सब सिर पर हाथ धरे रो रहे हैं लेकिन तुमने कम से कम प्रेस से दो साल की तनख्वाह तो भी ज़्यादा से ज़्यादा तुम्हारा सूद का नुक़सान हुआ जो आठ रुपये सैकड़े के हिसाब से साल का सात सौ रुपये के क़रीब होता है। मेरे नुक़सान का अन्दाज़ा करो। मैंने दो साल तक प्रेस से एक पाई लिये बग़ैर काम किया और अपना कम से कम पाँच सौ रुपया उसमें और लगाया जो हिसाब म मौजूद है। उसके बाद से आज तक मैंने हज़ारों रुपये का काम प्रेस को दिया खुद अपनी किताबें प्रेस में छपवायीं आज भी अपनी किताबों की बिक्री से प्रेस चला रहा हूँ। अगर मै अपने सारे नुक़सानात जोड़ूँ तो पन्द्रह सौ रुपया तो खाली तनख्वाह के हो जायें पाँच सौ रुपया जो उधार दिये और जो अब तक वसूल नहीं हुए इस तरह दो हज़ार रुपये फिर अपनी किताबों की बिक्री के रुपये जो प्रेस में लग गये हैं जोड़ू तो तीन हज़ार रुपया से कम न होंगे। इस तरह मुझे तो अलावा सूद के कोई पाँच हज़ार रुपया का नुक़सान हो चुका है और सूद भी जोड़ू तो एक हज़ार नौ सौ रुपया बढ़ जाते हैं। गोया प्रेस खोलकर मने सात हज़ार रुपया का नुक़सान उठाया और मैं इसे हर्फ़-ब-हर्फ़ सही साबित कर सकता हूँ। हिसाब प्रेस म मौजूद है। तुम्हारा नुक़सान तो सिर्फ़ सूद का हुआ। रघुपतिसहाय को भी इतना ही नुक़सान हुआ मगर अभी तक सब्र से बर्दाश्त किये जाते हैं। भाई साहब भी प्रेस की हालत से वाक़िफ़ हैं और ख़ामोश हैं। सब समझ रहे हैं कि प्रेस खोलना ग़लती थी और अगर तक़दीर में होंगे तो मिलेंगे नहीं डूब गये। मै अपनी ज़िम्मेदारी को समझकर अब भी हर तरह का नुक़सान उठाता हुआ उसे कामयाब बनाने की फ़िक्र म पड़ा हुआ हूँ। बार-बार दौड़-दौड़ आता हूँ हिसाब-किताब देखता हूँ क्योंकि मेरे दिल से लगी हुई है कि किसी तरह नफ़ा हो और हिस्सेदारों को कुछ दे सकूँ। मैंने अगर बेईमानी की होती और कुछ खा गया होता तो हिस्सेदारों को मुझसे बदगुमानी होती लेकिन मैंने तो प्रेस मे पान तक नहीं खाया। मेरा कांशस बिलकुल साफ़ है। अब तक मेरी ज़िन्दगी है

मैं अपना नुकसान उठाता हुआ प्रेस के लिए जान देता रहूँगा और कामयाब होना तक़दीर में लिखा है तो कामयाब हूँगा।

तो अब इसका तसफ़िया कैसे हो? या तो बीमार हिस्सेदारों की तरह तुम भी ख़ामोशी से मुझ पर एतबार करते हुए बैठे रहो। जब देखो कि मैंने प्रेस से कुछ लिया है तो मेरी गरदन पर सवार होकर अपना हिस्सा ले लो मगर देखो कि मैं नुकसान उठा रहा हूँ तो सब्र से बर्दाश्त करो या खुद प्रेस में आकर कुछ काम उठा लो। गुज़ारे के लिए जो कुछ प्रेस दे सके वह ले लो या प्रेस के लिए दौरा करके काम लाओ किताबें बेचो और अपनी मुनासिब तनख्वाह ले लो। प्रेस को नफ़ा देने के काबिल बनाने में मेरी मदद करो या आख़िरी सूरत यह कि एक पंच बनाकर प्रेस की क़ीमत आँक लो और तुम्हारा हिस्सा जितना निकले उतना या तो मुझसे इसी वक्त बड़े-बड़े काम पकड़कर मैं लो या मुझे दे दो। पंचों में बाबू सम्पूर्णानन्द श्रीप्रकाश और नन्दकिशोर को रख लो और या ट्रेडिल और कटिंग मशीन को असली दामों पर समझकर अपने बाक़ी रुपये मुझसे ले लो। इस तरह तुम्हें तसकीन हो जायगी कि तुमने जितने रुपये लगाये थे उतने मिल गये क्योंकि अगर इन चीज़ों को उनकी मौजूदा क़ीमत पर लोगे तो इस हिसाब से सारे प्रेस की क़ीमत घट जायगी। प्रेस में तीन ही चीज़ें तो क़ीमती थीं उनमें दो का हाल तुम्हारे सामने है। रही मशीन वह यही साल दो साल में जवाब दे देगी। टाइप पुराने थोड़े ही रह गये हैं मगर पुराने सामान अब ट्रेडिल और कटिंग मशीन के बाज़ार में रखे जायें तो मुश्किल से दो-ढाई हज़ार मिलेंगे। कुल प्रेस चार हज़ार रुपये या चार हज़ार पाँच सौ रुपये में बिक जायगा तो लागत के दाम मिलना तो अब ग़ैर मुमकिन है। तुम जिस तरह अपना इत्मीनान कर सको कर लो मैं आमादा हूँ। तुम्हें नुकसान पहुँचाकर या तकलीफ़ में देख कर मुझे मसर्रत नहीं होती और न हो सकती है। तुम्हें खुशहाल देखकर मुझे जितनी खुशी होगी उसका अन्दाज़ा तुम शायद न कर सको। अगर मैं इस काबिल होता कि तुम्हारी ज़्यादा इमदाद कर सकता तो हरगिज़ दरेग़ न करता न कम मुझे इस प्रेस ने बिलकुल मुफ़लिस बना डाला। किताबों से मुझे जो कुछ मिल जाता था वह अब प्रेस की नज़र हो रहा है। अब मेरा इरादा हो रहा है कि लखनऊ से आकर फिर प्रेस में डटूँ और जिस तरह भी हो सके उसे कामयाब बनाऊँ। तुम चाहो तो अब भी इस काम में मदद दे सकते हो। यह न मंज़ूर हो तो प्रेस की मौजूदा हैसियत को देखकर उसकी क़ीमत का अन्दाज़ा करा लो और वह जिस तरह चाहे समझ लो। या तुम्हारे ख़याल में प्रेस से और जो कुछ तुम्हें अपने हिस्से में मिलना चाहिए वह ले लो। मेरे पास प्रेस की हर एक चीज़ का बीजक

रखा गया है। उस चीज़ को बेचकर दो हजार रुपये की चीज़ निलाम सा। चीज़ें बेशक पुरानी हो गयी हैं मगर उनका नफ़ा मैंने नहीं उठाया न तुमने उठाया यह समझ लो कि कारोबार में नफ़ा-नुकसान दोनों होता है और इसमें नुकसान हुआ। तुम्हारे दो हजार रुपये इस वक्त तुम्हारे पास होते तो तुम उससे एक छोटा सा पूरा प्रेस खोल सकते थे। मेरे चार हजार पाँच सौ रुपये मेरे होते तो मैं उससे अच्छा प्रेस खोल सकता था। मगर हमने या तुमने बैंक में रख दिये होते तो तुम्हें अब तक एक हजार रुपये के करीब सूद मिल गया होता और मुझे भी दो ढाई हजार मिल गये होते। मैंने और जो हजारों का नुकसान उठाया उससे बच गया होता। लेकिन अब इन बातों को याद करके पछताने से क्या हासिल अब तो गले की ढोल को बजाना ही पड़ेगा। मैं तो इस प्रेस के पीछे बर्बाद हो गया सिर्फ इसलिए कि मैं हिस्सेदारों के नुकसान को नहीं देख सकता चाहे अपना कितना ही नुकसान हो जाये। रघुपति सहाय और भाई साहब मुझ पर तकिया किये बैठे हुए हैं। मैं अपने जीते-जी उन्हें नुकसान से बचाने की कोशिश करता रहूँगा। कामयाबी का होना न होना ईश्वर के हाथ है।

उम्मीद है कि तुम बखैरियत हो। बच्चों को दुआ।

P S मैं चाहता हूँ कि तुम इस सूरत में जो चाहे तजवीज़ कर लो या खुद तसफ़िये की कोई सूरत पेश करो और जल्द। प्रेस की कीमत अब आधी भी नहीं रही और तुम्हारे दो हजार अब मुश्किल से एक हजार रहेंगे। मैं तुम्हारे जवाब का इन्तज़ार करता रहूँगा। मैं मिल्क लेने को तैयार हूँ मगर कोई दे। रघुपति सहाय और मेरे हिस्से के छः हजार पाँच सौ रुपये होते हैं मैं उसे सवा तीन हजार पर दे दूँगा मगर नकद की शर्त है। प्रेस में जो नयी ट्रेडिल आयी है उसका अभी दाम देना बाकी है। भाई साहब मिल्क पर राजी होंगे या नहीं मैं नहीं कह सकता।

धनपत राय

हसामुद्दीन ग़ोरी, हैदराबाद

२४५

अजंता सिनेटोन, बम्बई।
१३ नवम्बर १९३४

मकरम बन्दा तसलीम।

'निगारिस्तान' में जनाब का मज़मून 'हिन्दुस्तानी फ़िल्मों में बदतरीन[1] इस्लाह[2]' बड़े शौक़ से पढ़ा और मुस्तफ़ीद हुआ। मुझे आपके ख़याल से लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ इत्तफ़ाक़[3] है। मगर जिन हाथों में फ़िल्म की क़िस्मत है वह बदक़िस्मती से इस इंडस्ट्री समझ बैठे हैं। इंडस्ट्री को मज़ाक़[4] और इस्लाह से क्या निस्बत? वह तो एक्सप्लाइट करना जानती है और यहाँ इन्सान के मुक़द्दसतरीन[5] जज़्बात[6] का एक्सप्लाइट कर रही है। बरहना[7] और नीम-बरहना[8] तस्वीरें क़त्ल-ओ-ख़ून और जंग की वारदातें मारपीट गुस्सा और ग़ज़ब और सफ़्फ़ाकियत[9] ही इस इंडस्ट्री के औज़ार हैं और इसी से वह इन्सानियत का ख़ून कर रही है। उम्मीद है आप यूँ ही अपने बेशबहा ख़यालात से पब्लिक को फ़ैज़ पहुँचाते रहेंगे।

नियाज़मन्द मश्कूर
प्रेमचंद

२४६

अजंता सिनेटोन, बम्बई
१४ फ़रवरी, १९३५

मकरम बन्दा तसलीम।

आपका ख़याल सही है। फ़िल्म को लायक़ अदाकारों की ज़रूरत है और यहाँ एक मुआवज़ा[10] भी मिल सकते हैं कि दो-चार साल में आप किसी कम्पनी के डाइरेक्टर हो सकें। लेकिन इसके लिए आपको कुछ आकर सिलसिला-जुम्बानी[11] करनी पड़ेगी। अच्छे आर्टिस्टों की हमेशा ज़रूरत रहती है। मेरी कम्पनी तो इस

---

१ बदतर २ सुधार ३ सहमति ४ रुचि ५ पवित्रतम ६ भावनाओं ७ नग्न ८ अर्द्ध-नग्न
९ निर्दयता १० फ़ीस ११ सिलसिला बैठाना

वक्त नाज़ुक हालत में है। इसको तस्वीर एक भी मक़बूल न हो सकी। और इधर पेक्टरों के मातूब[1] हो जाने से और भी मुश्किलात हुए हैं। चुनांचे उनके भाववृत्तान्तर ऐक्टर वैराज बिल्ली तारवाई वगैरा किनाराकश हो गये

मैं तो ज़िन्दगी में एक नया तजुर्बा हासिल करने के लिए यहाँ साल भर के लिए आया था। मई में यह मुद्दत ख़त्म हो जायेगी और मैं अपने वतन बनारस लौट जाऊँगा और हस्बे-साबिक़[2] अदबी मशाग़िल[3] में बक़िया ज़िन्दगी सर्फ़ कर दूँगा। बम्बई की आबोहवा और फ़िज़ा दोनों ही मेरे मुआफ़िक़ नहीं।

आप यहाँ आयेंगे तो आप से मिलकर बड़ी ख़ुशी होगी। एक अपना हमनवा[4] तो मिलेगा। यह तो दुनिया ही नई है।

नियाज़मन्द
प्रेमचंद

२४७

१६८ सरस्वती सदन, दादर, बम्बई
१६ मार्च १९३५

बरादरम

तसलीम

ईद मुबारक।

मेरा तस्फ़िया हो गया। मैं पचीस तारीख़ को बनारस अपने वतन जा रहा हूँ। अजन्ता कम्पनी अपना कारोबार बन्द कर रही है। मेरा कन्ट्रेक्ट तो साल भर का था और अभी तीन महीने बाक़ी हैं। लेकिन मैं उनकी बेकारी में इज़ाफ़ा नहीं करना चाहता। महज़ इसलिए रुका हुआ हूँ कि फ़रवरी और मार्च की रक़म वसूल हो जाये और जाकर फिर अपने लिटरेरी काम में मसरूफ़ हो जाऊँ।

मेरी दो किताबें जामिआ मिल्लिया देहली के एहतमाम से छप रही हैं। एक का नाम 'मैदाने अमल' दूसरी का नाम 'वारदात' है। तीसरी ज़ेरे तसनीफ़[5] है। मेरे लिए यही काम ज़्यादा मौज़ूँ है। सिनेमा में किसी इस्लाह की तवक़्क़ो करना बेकार है। यह सनत[6] भी उसी तरह सरमायादारों के हाथ में है जैसे शराब-फ़रोशी। इन्हें इससे बहस नहीं कि पब्लिक के मज़ाक़ पर क्या असर पड़ता है। इन्हें तो अपने पैसे से मतलब। बरहना रक्स[7] बोसा-बाज़ी और मर्दों का औरतों पर हमला। यह सब उनकी नज़रों में जायज़ है। पब्लिक का मज़ाक़ इतना गिर

१ कष्ट २ पहले की तरह ३ साहित्यिक कामों ४ एक ही राय रखनेवाला ५ किताबें या रची ६ उद्योग ७ नंगी नाच

गया है कि जब तक न मुख़र्रिब[1] और हयासोज़[2] मनाज़िर न हों उसे तस्वीर में मज़ा नहीं आता। मज़ाक़ की इस्लाह का बीड़ा कौन उठाये? सिनेमा के ज़रिये मग़रिब की सारी बेहूदगियाँ हमारे अन्दर दाख़िल की जा रही हैं और हम बेबस हैं। पब्लिक में तमीज़[3] नहीं न नेक-ओ-बद का इम्तियाज़[4] है। आप अख़बारों में कितनी ही फ़रियाद कीजिए वह बेकार है और अख़बारवाले भी तो साफ़गोई से काम नहीं लेते। जब ऐक्ट्रेसों और ऐक्टरों की तस्वीरें अख़बार छापें और उनके कमाल में क़सीदे गाये जायें तो क्यों न हमारे नौजवानों पर इसका असर हो। साइंस एक बरकते एज़दी[5] है मगर नाफ़हमों[6] के हाथों में पड़कर लानत हो रहा है। मैंने ख़ूब सोच लिया और इस दायरे से निकल जाना ही मुनासिब समझता हूँ।

मुख़लिस
प्रेमचंद

२४८

हंस आफ़िस, बनारस
२१ मई १९३५

मुहिब्बी व मुख़लसी

तसलीम।

यादआवरी का ममनून हूँ। मैं बम्बई से आकर अपने तसनीफ़ व तालीफ़ में मसरूफ़ हो गया। मेरा माहवारी रिसाला 'हंस' तो निकलता ही था। इसका मक़सद आप पर मुंदर्जा-बाला[7] उनवान[8] से ज़ाहिर[9] हो जायगा। यानी वह हिन्दी रस्मुलख़त[10] के ज़रिये हिन्दुस्तान की सभी ज़बानों की अदबियात[11] से बेहतरीन मज़ामीन[12] फ़राहम[13] करके पब्लिक को देगा और इस तरह क़ौमी अदब की बुनियाद डालेगा जिसमें हर एक ज़बान के मुसन्निफ़ और अदीब मौजूद होंगे। फ़िलहाल एक ज़बानवालों को दूसरी ज़बानवालों से एक बेगानगी-सी होती है। बंगलावालों को गुजराती की कुछ ख़बर नहीं और न मराठी को बंगला की कुछ ख़बर होती है। सूबेजाती अदबियात में क्या-क्या जवाहर भरे होते हैं, और रोज़ ब रोज़ पैदा होते जाते हैं इसकी तरफ़ किसी की तवज्जो नहीं। 'हंस' ने यह ख़िदमत अपने ज़िम्मे ली है। इसमें तेलुगु कनाड़ी बंगला मराठी गुजराती उर्दू मलयालम वग़ैरा ज़बानों के बाकमालों के तसनीफ़ी कारनामे रहते हैं और कोशिश की

---

१ ख़राब २ निर्लज्ज ३ विवेक ४ पहचान ५ दैवी वरदान ६ अयोग्य लोगों ७ उपरोक्त ८ शीर्षक ९ स्पष्ट १० लिपि ११ साहित्य १२ सामग्री १३ एकत्र

जाती है कि सभी जबानों के मुहावरों से हम वाक़िफ हो जायें। जबान की हुदूद[1] के बाहर[2] किसी बाकमाल शुअरा को मशहूरियत से फ़ैज[3] उठाने से हम क्यों महरूम[4] रहें। उर्दू के लिए भी एक हिस्सा वक्फ़ है। पहले नम्बर के लिए हमने डाक्टर इक़बाल डाक्टर जाकिर हुसन साहब और मख्दूम मुहीउद्दीन क़ादरी साहब वगैर के मज़ामीन शाया किये हैं। मैं यह तफ़्सील इसलिए दे रहा हूँ कि बंबई से आकर बेकार नहीं बैठा और तफ़रीहे[5] औकात[6] नहीं कर रहा हूँ।

अगर मौलाना अबुलकलाम आज़ाद[7] मुकालमे[8] लिखें तो फ़िल्मों में जान पड़ जाए मगर आप तो जानते हैं फ़िल्म की क़दर अवाम पब्लिक के तमाशाइयों पर है और यह अच्छे मुकालमे की क़दर नहीं कर सकते। मगर बहरहाल यह लोग क़दर न कर समझनेवाले तो करते हैं।

इस इनायत और करम के लिए आपका तहे दिल से शुक्रिया।

मुख्लिस

प्रेमचन्द

२४९

बनारस।

सितम्बर, १९३५

बरादरम

आपका ख़त और रिसाला[9] पहुँचे। ऐक्ट्रेस और सहेली के मज़मून[10] पढ़े। आपने अदाकारों की ज़िन्दगी और निगारख़ानों[11] के अन्दरूनी हालात की सच्ची व इबरत-आमोज़[12] तस्वीरें जिस मुवस्सर[13] व दिलपज़ीर[14] अन्दाज़ में खींची हैं वह आप ही का हिस्सा है। इससे क़ब्ल अपने किसी ख़त में लिख चुका हूँ कि महज़ ज़िन्दगी में एक नया तजुर्बा हासिल करने की ग़रज़ से बंबई गया था। अपने मुशाहदात[15] की बिना पर मैं आपके ख़यालात का हर्फ़ ब हर्फ़ ताईद करूँगा। मेरे ख़याल में शरीफ़ ख़वातीन[16] का फ़िल्मसाज़ी में हिस्सा लेना हरगिज़ दुरुस्त नहीं क्योंकि निगारख़ानों की फ़िज़ा उनके लिए रास नहीं आ सकती और न आइन्दा इसमें किसी क़िस्म की इस्लाह मुमकिन है। सिनेमा की बदौलत हमारे नौजवानों पर जो बुरे असरात मुरत्तब[17] हो रहे थे अब अख़बारात के तुफ़ैल उनमें दिन ब दिन तरक्क़ी होती जा रही है। अब अख़बारों में ऐक्ट्रेसों की तस्वीरें

१ सीमाओं २ बाहर ३ लाभ ४ वंचित ५-६ समय की बरबादी ७ बातचीत, वार्तालाप ८ पत्रिकायें ९ फ़िल्म-कंपनियों १० शिक्षा-प्रद ११ प्रभावशाली १२ आकर्षक १३ निरीक्षण १४ स्त्रियों १५ पड़ रहे थे

जर्पे और उनके कमाल के क़सीदे गाये जायें तो क्यों न नौजवानों पर उसका असर हो। आप जल्द अज जल्द 'ऐक्ट्रेस और 'सहेली के खुतूत' किताबी सूरत में शाया कर दीजिए, ताकि नौजवानों पर फ़िल्मी दुनिया की हक़ीक़त वाज़े हो जाये। मुझे तवक्क़ो है कि आपकी तसनीफ़ अपने कमयाबतरीन असर से लोगों के दिलों पर ज़रूर असर करेगी। ऐसी मुफ़ीद किताब जिस क़दर जल्द शाया हो अच्छा है। ख़ुदा आपको इस कारे ख़ैर[1] का उज्र[2] दे और क़ौम को इससे फ़ायदा पहुँचे। आजकल मेरी सेहत निहायत कमज़ोर हो रही है। लिखना-पढ़ना तर्क कर दिया है। लेकिन आप अपनी किताब का मुकम्मिल मसविदा भेज दीजिए। ज़रूरी मुक़द्दमा[3] लिख दूँगा।

मुख़लिस
प्रेमचंद

१ शुभकार्य २ पुरस्कार ३ भूमिका

रामचन्द्र टन्डन

२५०

१० गवर्नमेन्ट गेट रोड परेल, बम्बई १२
४ दिसम्बर १९३४

प्रिय रामचन्द्र जी

वंदे।

पत्र का कटिंग मिला। इसके लिये धन्यवाद। मेरे खयाल में लेखक संघ का एक कर्तव्य यह भी होगा कि वह लेखकों के स्वत्वों की रक्षा करे, प्रकाशकों को ज्यादा न्याय का व्यवहार करने पर मजबूर करे। मगर जब तक प्रकाशकों और पत्र निकालनेवालों की दशा ऐसी न हो कि वे लेखकों का पारिश्रमिक दे सकें तब तक आप उन्हें मजबूर करके इसके सिवा और क्या कर सकते हैं कि वे पत्र का प्रकाशन बंद कर दें। जहाँ तक मेरा खयाल है साहित्यिक प्रकाशकों में कोई भी नफे से अपना काम नहीं कर रहा है। अधिकांश ऐसे हैं जो नफे के खयाल से प्रकाशन का काम शुरू करके अब केवल इसलिये पड़े हुए हैं कि उनका बहुत-सा धन प्रेस और पुस्तकों में फँस गया है और वे उसे छोड़ नहीं सकते। हाँ स्कूली पुस्तकें छापनेवालों की बात अलग है। इधर प्रायः सभी प्रकाशकों ने साहित्य की पुस्तकें छापनी बन्द कर दी हैं। यही कारण है कि पुस्तकों की खपत नहीं होती। कागज और छपाई नहीं निकलती तो लेखक को कहाँ से दें। हाँ जिन प्रकाशकों को लाभ हो रहा है उन्हें संघ इसकी प्रेरणा करेगा कि वे लेखकों के साथ न्याय करें और जब ऐसा समय आवेगा कि हिन्दी में पत्रों और पुस्तकों के प्रकाशन से नफ़ा होने लगेगा तो संघ इस प्रश्न को अवश्य हाथ में लेगा। मैं आपसे बिल्कुल सहमत हूँ कि संघ को लेखकों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए लड़ना पड़ेगा पर पहले वह समय तो आवे। लेखकों ही का यह काम होगा कि वह उस समय अपने स्वत्व निपटा सकें।

कुछ समय हुआ हमने (आपने और मैंने) हिन्दी में अच्छे लेखकों के अनुवाद की एक योजना बनायी थी। क्यों न संघ में वह योजना भी शामिल कर ली जाय।

रूस में भी सोवियत राइटर्स यूनियन है। और देशों में है या नहीं मुझे मालूम नहीं। लेकिन मुझे लेखकों को केवल कलमी मजूर समझने में कष्ट होता है। लेखक केवल मजूर नहीं बल्कि और कुछ है—वह विचारों का आविष्कारक और उत्तेजक और प्रचारक भी है। जिस तरह आप उपदेशकों और प्रचारकों को संघ के रूप में नहीं ला सकते उसी तरह आप लेखकों को भी उस रूप में नहीं बाँध सकते। हाँ संघ यह कर सकता है कि लेखकों और प्रकाशकों के बीच में भक्ष्य और भक्षक के व्यवहार को बन्द करने का उद्योग करे, लेखकों में ऊँचे आदर्श ऊँचे आचरण और कला की उन्नति की व्यवस्था करे।

मैं इस विषय में मिलने पर आपसे बातें करूँगा। आशा है आप प्रसन्न हैं। मैं तो ठेले जाता हूँ।

भवदीय

धनपत राय

२५२

सरस्वती सदन, दादर, बम्बई १४

१ फरवरी १९३५

प्रिय बन्धु

पत्र के लिए और उन कतरनों के लिए जो आपने कृपापूर्वक भेजा है धन्यवाद। डा० सप्रू का लेख मैं पढ़ चुका था और उसमें बहुत कुछ की बातें कही गयी हैं। उसमें एक भी ऐसा शब्द नहीं है जिस पर कोई आपत्ति कर सके। लेकिन मिस्टर धीरेन्द्र के विचार पृथक्तावादियों के हैं और मैं उनका समर्थन नहीं कर सकता। शायद आपने इस विषय पर मारसों ब नामी के लेख पढ़े हों। 'उर्दू' अंजुमन तरक्किये उर्दू का मुखपत्र उर्दू किस्तों में छाप रहा है। हाल में प्रकाशित लेखों में से एक मैंने पढ़ा। उसमें इतनी तावमी और साफ़गोई और दूरन्देशी पाकर मुझे ताज्जुब हुआ। कौन जाने मिस्टर शर्मा ने उसको पढ़ा है या नहीं। उसने इस समस्या का समाधान बहुत उस्तादी ढंग से किया है। उसकी राय है कि लिपि को छोड़कर हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा है। उनमें केवल लिपि का भेद है। जहाँ पर भाषा उर्दू की सीमा को लाँघकर हिन्दी के क्षेत्र में पहुँच जाती है उसका लौटकर बतलाना असम्भव है। उर्दूवाले जितना कम चाहें अरबी और फ़ारसी ले लें। हिन्दीवाले भी उनका अनुकरण करें। उनकी भाषा आदर्शीय उर्दू और हिन्दी बनी रहेगी। हमारी हिन्दुस्तानी जनता के रास्ते पर चलेगी और पकाम उसे बोली जाती है वैसे लिखने की कोशिश करेगी। जनता में मेरा मतलब

स्वभावत वे लोग हैं जो लिख-पढ़ सकते हैं और जिनके पास साहित्यिक संस्कार हैं।

हिन्दुस्तानी एकेडमी का काम इसी समस्या से जूझना था। ऐसे ही मेम्बर नौमिने जो एक मिली-जुली भाषा म आस्था रखते हों। उसे मिली-जुली भाषा म अलग-अलग लिपियों में एक पत्रिका निकालनी चाहिए थी। यह एक सच्ची सेवा होती। सम्प्रति उसकी कार्रवाइयाँ साम्प्रदायिक हैं और उसने अपने अस्तित्व को चरितार्थ नहीं किया।

निस्सन्देह हिन्दुस्तानी अपने रूप और वैभव और शब्द सम्पदा म साहित्यिक भाषा नहीं है। साहित्यिक भाषा बोल चाल की भाषा से अलग समझी जाती है। मेरा ऐसा विश्वास है कि साहित्यिक अभिव्यक्ति को बोल चाल की भाषा के निकट से निकट पहुँचना चाहिए। कम से कम नाटक कहानी और उपन्यास साधारण बोल-चाल की भाषा मे हम लिख सकते हैं इन्हीं में हम जीवनी और यात्रा-वर्णनों को भी शामिल कर सकते हैं और साहित्य की य शाखाएँ सम्पूर्ण साहित्य का तीन चौथाई ठहरती है और ऐसा तीन चौथाई जो सचमुच महत्त्व रखता है। भाषका विज्ञान और दर्शन संस्कृत में लिखा जाय या प्राकृत म मुझे कोई परवाह नहीं। जैसा कि गार्सों द तासी कहता है 'हिन्दी को उसके पुराने आधारा के पास खींचकर ले जाना एक वैसी ही बेकार कोशिश है जैसी कि नदी की धारा को मोड़कर वापस उसके उद्गम स्थल पर ले जाना।

किताबों के बारे में मैंने अपने लड़के को लिखा है कि वह आपको जाकर बतलाये कि वह किताबें उसने किसके पास जमा कीं। आपको शायद पता न हो मेरे दोनों लड़के कायस्थ पाठशाला इण्टरमीडिएट स्कूल में हैं और उसी इमारत में रहते हैं जिसमें हिन्दुस्तानी एकेडमी है। लेकिन दोनों बेहद झेंपू हैं, जो गुण उन्होंने शायद मुझसे लिया है, यानी अगर ये मान लें कि मैं उनका बाप हूँ। उसका नाम श्रीपतराय है, अगर आप उसे बुला लें और उससे पूछें तो वह आपको बतलायेगा कि उन किताबों का क्या हुआ।

लेखक सघ। मेरी राय मे उसका एकमात्र उपयोगी काम सहकारी प्रकाशन है जिसमें कि हर लेखक जो उसका सदस्य है तीस से लेकर चालीस प्र सै रायल्टी पाने के लिए आश्वस्त हो जाय। हिन्दी का बाजार इतना मंदा है और लेखक अपनी पुस्तकें छपवाने के लिए इतना आतुर है कि वे प्रकाशकों के साथ कोई भी समझौता कर लेंगे। वे अगर अपनी शर्तों पर अड़ रहें और प्रकाशक उनकी पुस्तकें प्रकाशित करने से इनकार कर दें तो फिर बेचारा कहीं का न रह जायगा। यह चीज वैसी ही है जैसी कि भायों का चर को दहेज देने से रोकना।

लेकिन जब युवकों की कमी हो और कन्या का पिता तुरन्त अपनी कन्या का विवाह कर देने के लिए आतुर हो तब फिर दूषित दहेज प्रथा के आगे घुटने टेक देने के अलावा कोई चारा नहीं। वह तने तो किस बिरते पर। लेकिन सहकारी प्रकाशन के लिए रुपया चाहिए और संगठन चाहिए और स्टाफ चाहिए और यह काम तभी हाथ में लिया जा सकता है जब सब के पास आवश्यक प्रभाव और प्रतिष्ठा हो। लेकिन कोई कारण नहीं है कि वह लेखकों की जब प्रकाशक अनुचित रूप से उनका शोषण करते हो सहायता न करे। हमारी वर्तमान आवश्यकता सदस्यता को बढ़ाना है ताकि सब साहित्यिक काम करनेवालों की ओर से उनके प्रतिनिधि की हैसियत से बोल सके। हमें उसको परवान चढ़ाना है और उस जगह पर पहुँचाना है, जहाँ वह असर कर सके। आप भीतर रहकर उसे जिस रूप में चाहे विकसित कर सकते है या जिधर चाहे ज्यादा आसानी से मोड़ सकते हैं। जब उसके बहुत से सदस्य होंगे तब हर आदमी के लिए यह मुमकिन होगा कि वह जनमत को संगठित करके उसमें जैसी रद्द-बदल चाहे कर सके। ध्वंसात्मक आलोचनाओं से केवल अलग-अलग पक्षों की कट्टरता और भी बढ़ती है।

मुझे अभी कहानियों का आपका संग्रह नहीं मिला। मुझे यकीनन उसमें मज़ा आयेगा और मैं उसकी समालोचना करूँगा।

बराय मेहरबानी मेरा आदाब मौलवी असगर हुसैन साहब से अर्ज कर दें।

आशा है कि आप पूर्ण स्वस्थ होंगे।

आपका

धनपत राय

पुनश्च—

मैं शायद मिस्टर वर्मा के विचारों का खंडन करते हुए हिन्दुस्तानी में एक छोटा लेख लिखूँगा।

रामचन्द्र सिनहा

२५२

लखनऊ

१२ दिसम्बर, १९३८

प्रिय राम जी

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। अगर तुम्हें अच्छी संभावनाएँ दिखायी पड़ती हों तो तुम विदेश भेजे जाने के लिए अपनी रज़ामंदी ज़ाहिर करो

मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है। साठ रुपया और खाना और मकान बुरा ऑफर नहीं है क्योंकि अगर तुम पाँच साल रह गये तो करीब तीन हज़ार रुपया बचा लोगे। यहाँ पर ऐसी कोई उम्मीद नहीं है। फिर तुम्हें अनजान देशों के देखने का नये आदमियों से मिलने का मौका मिलेगा और जब तुम घर लौटोगे तो काफ़ी जहाँदीदा आदमी होगे। मैं बहुत करके बसंत पंचमी से एक मासिक पत्रिका निकालने जा रहा हूँ। काफ़ी की सहयोग देनेवाले हैं। तुम्हें विदेशों के रस्म-रिवाज पर लिखने के लिए मसाला मिलेगा।

तुम्हें मौका न खोना चाहिए

तुम्हारा
धनपत राय

स्वर्गीय प्रेमचंद जी की एक योजना

१

दो शब्द

२५३

कुछ दिन हुए पुराने कागज़-पत्रों की सफ़ाई करते हुए मुझे एक फ़ाइल मिली जिसके अस्तित्व को मैं भूल चुका था। इस फ़ाइल में प्रेमचंद जी की अनुवादक मंडल संबंधी एक योजना को लेकर मेरा उनका पत्र व्यवहार है। फ़ाइल पर कुछ अंशों में दीमकों की कृपा हो चुकी है। इस पत्र-व्यवहार पर फिर से नज़र डालते हुए, इसे प्रकाशित कर देने का विचार हुआ—वह इस उद्देश्य से कि सम्भवतः साहित्यिक मित्रों को इस योजना में दिलचस्पी उत्पन्न हो और वह इसे अग्रसर करना चाहें। प्रेमचंद जी वास्तव में बहुधंधी आदमी थे और उस समय मेरे पास भी उतना अवकाश नहीं था जितना कि इस योजना को सफल बनाने के लिए अपेक्षित था। इसलिए हम लोगों ने आपस में विचार करके इसे किसी आगे के समय के लिए स्थगित कर दिया था। खेद है कि वह 'आगे' का समय उनके जीवनकाल में न आया। प्रेमचंद जी के स्मारक के रूप में यह योजना आगे बढ़ाई जाय तो भी अनुचित नहीं।

प्रेमचंद जी का और मेरा पत्रव्यवहार अंग्रेज़ी में है। इसका अनुवाद कृपा करके श्री इलाचन्द्र जोशी जी ने हिन्दी में कर दिया है। मैंने फ़ाइल ज्यों की त्यों सम्मेलन संग्रहालय को भेंट कर दी है जिसमें कि सुरक्षित रह सके।

रामचन्द्र टण्डन

२

२५४

आवरण कार्यालय
सरस्वती प्रेस काशी
१८ मई १९३३

प्रिय रामचन्द्र जी

धन्यवाद। मैंने 'अर्जुन' के द्वारा अपना जो सुझाव उपस्थित किया था उसकी एक कापी भेज रहा हूँ। यदि इसे कार्यान्वित किया जा सके तो निश्चय ही इससे हमारे संवादपत्रों का स्तर ऊँचा हो सकेगा। इसके लिए विशेष परिश्रम की आवश्यकता है। यदि आप ग्राहकों को जुटा सकें तो कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है। योग्य व्यक्ति प्राप्त हो सकते हैं। हमारे संवादपत्र दीर्घकालीन आर्थिक दुर्दशा से ग्रस्त हैं, और इस कारण किसी नयी योजना के लिए संभवतः सम्मत न होंगे। फिर भी प्रयत्न तो करना ही चाहिए। हवा चल पड़ने से संभव है कुछ सुफल निकल आवे।

आशा करता हूँ आप सानन्द होंगे।
मौलाना अख़्तर साहब को मेरा सलाम कह दीजियेगा।

भवदीय
धनपत राय

२५५

१

अनुवादक-मण्डल की आवश्यकता

हिन्दी में दैनिक पत्रों का मूल्य दो पैसे से अधिक नहीं है। जब अंग्रेज़ी पत्र १६ २० पृष्ठों के चार पैसे में मिलते हैं तो हिन्दी के आठ पृष्ठों के पत्र के लिए दो पैसे से ज़्यादा जनता क्यों खर्च करने लगी।

बिक्री का दाम तो है दो पैसे लेकिन कठिनाइयाँ कितनी हैं? 'रूटर' 'असोसियेटेड' 'फ्री प्रेस' सभी खबर पहुँचानेवाली संस्थायें तार द्वारा खबरें भेजती हैं। अंग्रेज़ी पत्र तार पाते ही उसको देखभालकर कुछ विराम चिह्न लगा-लगाकर या ज़रूरत के मुताबिक़ तार को काट-छाँटकर कम्पोज़ करने के लिए भेज देते हैं। हिन्दी पत्रों में इन तारों का हिन्दी में तर्जुमा होना चाहिए। इसके लिए

४ से १०-८ तक अनुवादक रखे जाते हैं। तार मिला है दस बजे या ग्यारह बजे रात को। उसे एक बजते-बजते कम्पोजिंग में चला जाना चाहिए, नहीं तो वह छप न सकेगा। इसी घण्टे-दो-घण्टे में अनुवादक को तेजी के साथ अपना काम करना पड़ता है। खबर छोटी-सी हुई तो कोई बात नहीं। लेकिन कहीं वह वायसराय या महात्मा गांधी की स्पीच हुई या एसेम्बली या कौंसिल के बैठक की रिपोर्ट हुई तो एक दो तीन चार कालमों की खबर हो सकती है, और एक घंटे के अन्दर उसका अनुवाद होना परमावश्यक है, नहीं वह खबर रह जायगी। ऐसी हड़बड़ी में अनुवाद कैसा होगा इसका अनुमान किया जा सकता है। वाक्य के वाक्य और पैरे के पैरे छोड़ देने पड़ते हैं और भाषा इतनी उलझी हुई इतनी बेसिर-पैर की हो जाती है कि बहुधा उसका मतलब समझने के लिए अनुमान से काम लेना पड़ता है। यह कठिनाई सभी भाषा पत्रों के सामने है। एक तो हिन्दी पत्र दो पैसे में बिकें दूसरे अनुवादकों का वेतन दे। तो वह कर्जा न मांगे पर चले और कर्जों न उसका जीवन संकटमय हो। दरिद्रता के कारण पत्रों को सुयोग्य अनुवादक भी नहीं मिलते। जब चालीस रुपये से लेकर, पचास साठ सत्तर अस्सी रुपये तक अनुवादकों का वेतन होगा तो फिर ऐसे आदमी कहाँ से आयेंगे जो सुन्दर अनुवाद कर सकें। अनुवाद करना आसान काम नहीं है। एक-एक शब्द के लिए घण्टों दिमाग टटोलना पड़ता है और दिमाग से काम न चलने पर कोश के वरक उलटना पड़ते हैं। मेरा विचार है कि स्वयं कोई लेख लिखना आसान है अनुवाद करना कठिन है और यह काम हम थोड़े वेतन के कर्मचारियों से लेने पर मजबूर हैं।

किन्तु आजकल कोई समाचारपत्र केवल खबरों ही के बल पर सफल नहीं हो सकता। उसमें जनता और भी चीजें चाहती है जिनसे उसका विचार फैले उसकी जानकारी बढ़े उसके भावों का परिष्कार हो वह संसार के विचार प्रवाह में मिल सके। ऐसे लेख दो पैसे के पत्र में कहाँ से आवें। उनकी सारी शक्ति खबरों के अनुवाद करने में ही खर्च हो जाती है। इसलिए यह आम शिकायत सुनने में आती है कि हिन्दी पत्रों में कुछ होता नहीं। हिन्दी पत्र वही पढ़ता है जो अंग्रेजी नहीं जानता और आजकल जो कुछ पढ़ा-लिखा है, वह कुछ अंग्रेजी भी जानता है। ऐसे हिन्दी जाननेवाले जो अंग्रेजी बिलकुल न जानते हों अधिक नहीं हैं। और जो सम्पन्न हैं वह तो अंग्रेजी अवश्य ही जानते हैं। जनता को हिन्दी पत्रों से प्रेम है अवश्य मगर जब उसे उसमें संतोषजनक मसाला नहीं मिलता तो वह विवश होकर अंग्रेजी पत्र पढ़ती है अंग्रेजी व्यापक भाषा है। इसके द्वारा आप संसार की सैर कर सकते हैं। रूस जर्मनी फ्रांस आदि देशों के

विचारक और विद्वान क्या कहते हैं यह जानने के लिए आपको अंग्रेजी पत्र पढ़ना अनिवार्य है। मगर हम इन लेखों को हिन्दी पत्रों में दे सकें तो इन पत्रों की उपयोगिता मनोरंजकता और व्यापकता बहुत बढ़ जाय। मगर ऐसे लेखों का अनुवाद करना हिन्दी पत्रों के सामर्थ्य के बाहर है। खबरों का टेढ़ा-सीधा अनुवाद कर देने से भी काम चल जाता है लेकिन एक कन्वोकेशन ऐड्रेस का अनुवाद तो भाव समझ कर ही करना पड़ेगा। इसीलिए हमें एक अनुवादक-मंडल की आवश्यकता है। इस मंडल का यह काम हो कि वह पश्चिमी पत्रों से विचारपूर्ण ज्ञान वर्धक लेखों का अनुवाद करके हिन्दी पत्रों को दे। यह जरूरी नहीं कि मंडल के सभी काम करनेवाले अपना पूरा समय दें। अपने मुख्य काम के साथ व मंडल म कुछ सहयोग दे सकते हैं। लेकिन कुछ ऐसे आदमियों की जरूरत तो होगी ही जो अपना पूरा समय दे सकें। अगर मंडल को ऐसे आदमियों की सहायता मिल सके जो फ्रेंच जर्मन और अरबी आदि जानते हों तो क्या कहना। मंडल संसार भर के मुख्य पत्र मंगाये यह निश्चय करे कि कौन-कौन से लेख अनुवाद के योग्य हैं पत्रों से पत्रव्यवहार करके यह निर्धारित करे कि कौन-कौन से पत्र कौन कौन से लेख स्वीकार करते हैं। या यह हो सकता है कि मंडल पत्रों से मासिक चंदा तय कर ले और रोज-रोज की अनुवाद सामग्री पत्रों के पास भेज दें। पत्र अपनी सुविधा अवकाश और रुचि के अनुसार जो अनुवाद चाहे प्रकाशित करें। इस तरह की सामग्री देने से हिन्दी पत्रों की खपत बढ़ सकती है और संभव है कि वे भी अपना मूल्य एक आना कर सकें। तभी वे अंग्रेजी पत्रों का सामना कर सकते हैं और तभी उनका आदर होगा।

(अर्जुन)

२५६

४

१० साउथ रोड, इलाहाबाद
२० मई १९३३

प्रिय प्रेमचंद जी

आपने हिन्दी अनुवादक-मंडल के संगठन की योजना के साथ जो पत्र भेजा उसके लिए धन्यवाद। मैंने यह अनुमान किया था कि आपकी योजना का उद्देश्य कुछ दूसरा ही — अर्थात् पुस्तकों का अनुवाद — होगा। पर अब मालूम हुआ कि यह संवादपत्रों से संबंध रखता है। आपकी यह योजना जिस क्षेत्र तक सीमित है वहां तक यह बहुत सुन्दर है, और उसके अन्दर बहुत-सी सद्भावनाएँ निहित

है। इसे कार्यान्वित करने की चेष्टा अवश्य की जानी चाहिए।

आपने अपने भविष्य को जिस रूप में उपस्थित किया है उससे कहीं अधिक विस्तार के साथ आपने उस पर विचार कर लिया होगा ऐसा लगता है। आपके लेख में एक विशेष कार्यक्रम की आवश्यकता पर जोर दिया गया है पर उसके संगठन की रूपरेखा के संबंध में उसमें कुछ भी नहीं कहा गया है। क्या आप कृपा करके अपनी योजना के संगठन का स्वरूप मुझे बता सकेंगे? उसमें काम करनेवाले किस प्रकार के कार्यकर्ता प्राप्त हो सकते हैं? काम का सीमा-क्षेत्र क्या रहेगा, कार्यकर्ताओं को पारिश्रमिक क्या मिलेगा और काम-विभाजन किस रूप से होगा?

आपका उत्तर मिलने पर मैं चाहूँगा कि इस काम में दिलचस्पी रखनेवाले कुछ सज्जनों को एकत्र किया जावे ताकि आपकी योजना की एक निश्चित रूपरेखा तैयार हो सके। यदि समिति का संगठन हो जावेगा तो निश्चित योजना के विस्तृत विवरण और कार्यक्रम पर विचार किया जावेगा। मैं और यहाँ के कुछ मेरे मित्र इस कार्य में पूर्णरूप से सहयोग देने के लिए तैयार हैं। कृपया उत्तर में विलम्ब न करें।

इस बीच में स्वयं भी आपकी योजना की एक रूपरेखा आपके विचार के लिए तैयार कर रहा हूँ।

आशा करता हूँ आप सकुशल होंगे।

आपका
रामचन्द्र टण्डन

२५७

२

सरस्वती प्रेस काशी,
२२ मई १९३१

प्रिय भाई साहब

धन्यवाद। यह योजना हिन्दी के साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों के सामान्य — उनकी उपयोगिता, प्रचार तथा महत्त्व बढ़ाने के उद्देश्य से — तैयार की गयी थी। तब मेरे मन में उसका कोई विस्तृत या स्पष्ट स्वरूप नहीं था। पर हमें पहले अपनी समस्त शक्तियों का अंदाज लगा लेना होगा—एक ऐसा खाका तैयार कर लेना होगा जिससे यह पता चल सके कि कौन-कौन-सी पत्र-पत्रिकाएँ हमारी योजना को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, कितनी सामग्री की आवश्यकता उन्हें

प्रति दिन प्रति सप्ताह अथवा प्रति मास पड़ेगी। इस संबंध में पत्र-पत्रिकाओं के नाम का एक प्रचार-पत्र भेज देने से काफ़ी दिलचस्पी पैदा की जा सकती है। हिन्दी में इस समय पत्रों की संख्या अच्छी है, यद्यपि बहुत से पत्र समुचित ख्याति न पाने के कारण दिन पर दिन क्षीणावस्था को प्राप्त होते चले जा रहे हैं फिर भी यह आशा की जा सकती है कि वे अपने पत्रों को चमकाने के उद्देश्य से विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टिकोण से इस योजना के पीछे कुछ रुपया लगाने को तैयार हो जावेंगे। यह मालूम हो जाने पर कि कितने पत्र हमारी योजना से सहमत है, तीन आदमियों की एक समिति का संगठन करना होगा। इस समिति का काम अनुवादक के लिए उपयुक्त सामग्री जुटाने का होगा। कुछ पत्र-पत्रिकाएँ या तो खरीदनी पड़ेंगी या किसी दूसरे रूप से प्राप्त करनी होंगी और उनमें से महत्वपूर्ण तथा ज्ञानवर्धक सामग्री चुनकर इकट्ठा करनी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त अनुवादकों की एक समिति की भी आवश्यकता है—ऐसे अनुवादक जो अलग-अलग विषयों के विशेषज्ञ हों। प्रबन्ध समिति अनुवादकों को बराबर-बराबर काम बाँट देगी और तब अनुवादित सामग्री को पत्रों म प्रकाशनार्थ भेज देगी। प्रबन्ध समिति को बहुत स काम करने पड़ेंगे। बहुत से पत्रों को पढ़कर उनमें से अनुवाद योग्य सामग्री चुनना कोई आसान काम नहीं है पर अभ्यास हो जाने से काम बहुत कुछ आसान हो जायगा। यदि सौ पत्र-पत्रिकाएँ भी इस काम के लिए दस रुपया प्रतिमास खर्च करने को तैयार हो जावें तो काम को आगे बढ़ाने के लिए लोग तैयार हो सकते हैं। लेखों का चुनाव करनेवाली समिति का निश्चय ही पुरस्कार दिया जायगा यद्यपि पुरस्कार सामान्य ही रहेगा। इस काम के लिए पचास अनुवादक नियुक्त किये जा सकते हैं जिनके पारिश्रमिक के सम्बन्ध में यह तय कर लेना होगा कि एक रुपये पर कितनी पंक्तियाँ उन्हें लिखनी होंगी। यदि कुछ पत्र एक ही प्रकार की सामग्री चाहने लगें तो वितरण में कुछ गड़बड़ी पैदा हो सकती है। ऐसी हालत म उन पत्रों के वितरण का पूरा भार हम लोगों के हाथ छोड़ देना होगा या और कोई दूसरा उपाय खोज निकालना होगा। मेरा विश्वास है कि इस योजना को बढ़ाया जा सकता है और यदि कोई व्यक्ति लगन के साथ इस पर जमा रहे तो उसे हमारे पत्रकार-जगत् की स्थिति को ऊँचा करने का श्रेय और संतोष प्राप्त होगा। आप निश्चय ही इस काम के लिए योग्य व्यक्ति हैं। मैं तो एक हरकारा मात्र हूँ और सदा ऐसे कामों में हाथ डालने की चेष्टा करता रहता हूँ जिनके लिए मैं नहीं बनाया गया। पत्रकार कला से मेरा स्वाभाविक विरोध है पर परिस्थितियों से विवश होने के कारण मैं उसे स्वीकार करने को बाध्य हुआ हूँ। मेरी यह अनुभूति कि मैं किसी काम में कोई स्थायी चिह्न अंकित

करने में असमर्थ हूँ मुझे मूल्यवान कार्यों के लिए उत्साही रहती है। पर अंग्रेजी में एक कहावत है— जियो और सीखो।

यदि मेरी योजना का कोई योग्य व्यक्ति हाथ में ले ले तो इससे अधिक प्रसन्नता मुझे और किसी बात से नहीं हो सकती।

आपका भाई
धनपत राय

२५८

१

१० साउथ रोड, इलाहाबाद
२७ मई १९३३

प्रिय प्रेमचन्द जी

आपके कृपापत्र के लिए धन्यवाद। मैं योजना तैयार कर रहा हूँ जिसे दो दिन के भीतर मैं आपके पास भेज दूँगा। योजना की सफलता के लिए मुझसे जो कुछ भी हो सकेगा करूँगा। मुझे विश्वास है कि अंत में निश्चय ही सफलता मिलेगी। पर प्रारम्भ यदि सामान्य भी हो तो हमें घबराना नहीं चाहिए।

मेरे पास हिन्दी के दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों की सूची बहुत अधूरी है। यदि आपके पास कोई सूची हो तो भेजने की कृपा करें, ताकि एक पूरी सूची तैयार की जा सके।

मैं आपके कहे अनुसार पत्रों में प्रकाशनार्थ एक मसविदा भी भेजूँगा।

आपका
रामचन्द्र टंडन

२५९

७

१० साउथ रोड, इलाहाबाद
१ जून १९३३

प्रिय प्रेमचन्द जी

मुझे इस बात के लिए खेद है कि मैंने आपको जिस योजना को भेजने का वचन दिया था उसे इससे पहले न भेज पाया। मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं था और इस बीच मेरा आफिस जाना भी बंद रहा। इस समय भी मैं आपको अनुवादक-मंडल के संगठन से संबंधित वैधानिक मसविदा नहीं भेज रहा हूँ इस संबंध में मैंने कागज़ पर विचार नोट कर रखे हैं केवल उन्हीं को भेज रहा हूँ। अंतिम मसविदा

तब तैयार किया जायगा जब आप मेरे सुझावों के संबंध में अपनी सम्मति देंगे।

मैं यह पसंद करूँगा कि एजेन्सी का अंग्रेजी नामकरण किया जाय अर्थात् उसका नाम 'हिन्दी ट्रान्सलेशन बोर्ड' रहे न कि अनुवादक मंडल।

इसका उद्देश्य हिन्दी के दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों को विभिन्न विषयों पर अनुवादित लेख भेजते रहने का होना चाहिए। समाचार तथा राजनीतिक लेखों से कोई संबंध नहीं रखना चाहिए। ऐसा होने से मासिक तथा पाक्षिक पत्र भी उक्त एजेन्सी द्वारा लाभ उठा सकेंगे।

बोर्ड का हेड आफिस बनारस में होना चाहिए। उसकी शाखाएँ दिल्ली इलाहाबाद लखनऊ कलकत्ता और जबलपुर में खोली जा सकती हैं। फिलहाल लखनऊ और जबलपुर को छोड़ा भी जा सकता है।

प्रत्येक आफिस चाहे वह प्रधान आफिस हो या शाखा किसी एक संचालक के व्यक्तिगत निरीक्षण के अधीन रहे।

संचालक के ऊपर इन बातों का उत्तरदायित्व होगा—१—भारतीय तथा विदेशी समाचारपत्रों तथा मासिक पत्रों से लेख अथवा लेखांशों का चयन करना और उन्हें अपने आफिस से संलग्न अनुवादकों को अनुवाद के लिए दे देना २—पत्र-व्यवहार द्वारा प्रधान कार्यालय के संसर्ग में रहना और उसके साथ परामर्श करके अनुवादित सामग्री को प्रत्येक पत्र की विशेष आवश्यकता के अनुसार भेजते रहना ३—आवश्यकता पड़ने पर अनुवादों का संपादन करना अथवा अपना नोट उनके साथ जोड़ देना आफिस से संबंधित विभिन्न अनुवादकों को जो पारिश्रमिक दिया जाय उसके बिलों की जाँच करना किसी एक विशेष शाखा में विशेषज्ञता प्राप्त करना और एक ऐसी फाइल रखना जिसमें बाहर से संलग्न अनुवादकों की योग्यताओं का विस्तृत ब्योरा रहे।

डाइरेक्टर को कुछ और भी जिम्मेदारियाँ सौंपी जा सकती हैं, पर इस समय मैंने केवल उन्हीं बातों का उल्लेख किया है जो बिना किसी प्रयास के मुझे सूझ गयीं।

बोर्ड को निम्नलिखित विषयों को अपने हाथ में लेना चाहिए—१—राजनीति (सैद्धान्तिक) २—साहित्य तथा शिक्षा ३—लोक-प्रचलित विज्ञान ४—स्वास्थ्य-सुधार ५—कहानियाँ ६—साधारण ज्ञान।

जो पत्र-पत्रिकाएँ मासिक चन्दा देना स्वीकार करें वे उक्त विषयों में से अपनी आवश्यकता के विषयों को चुन लें।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्रत्येक केन्द्र को किसी एक शाखा के संबंध में विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाहिए यद्यपि प्रत्येक शाखा के अनुवादकों का काम

एकांगीय होना ठीक न होगा। कुछ विशिष्ट शाखाओं को अपने विशेष विषय-संबंधी सामग्री इकट्ठा करके बोर्ड के ग्राहकों के पास भेजते रहना चाहिए।

संचालकों को पचास रुपया प्रति मास वेतन मिलना चाहिए। उन्हें बोर्ड के मामलों का अधिकार रहेगा। संचालक समिति की वार्षिक बैठक में इस बात की घोषणा कर दी जायगी कि बोर्ड को कितना लाभ हुआ है। कार्यालयों को चलाने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं को प्राप्त करने तथा डाक-टिकट आदि के लिए संचालकों को प्रतिमास पचीस रुपया से लेकर पचास रुपया तक भत्ता दिया जाना चाहिए। प्रधान कार्यालय को पचास रुपया प्रतिमास इसके अतिरिक्त देना होगा। उसे शाखा कार्यालयों को आफिस संबंधी आवश्यक चीजें पहुँचाते रहना होगा।

एक लेख में औसतन सात सौ शब्द रहने चाहिए। पाँच सौ से एक हजार शब्द तक के लेख चल सकते हैं।

यदि कोई पत्र किसी विशेष विषय पर लेख चाहे तो उसके लिए विशेष दर भी तय की जानी चाहिए।

अनुवादकों को सात सौ शब्दों के लिए छः रुपये पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। विशेष-विशेष अवस्था में इस दर में परिवर्तन किया जा सकता है।

ऐसे लेखों पर जो आशयमात्र लेकर लिखे गये हैं सात सौ शब्दों के लिए एक रुपया दिया जाना चाहिए।

अनुवादकों की योग्यता सहित उनके नामों की एक सूची प्रत्येक आफिस में रहनी चाहिए। प्रत्येक आफिस के पास बोर्ड के समस्त ग्राहकों की पूरी सूची रहनी चाहिए जिसमें प्रत्येक ग्राहक की आवश्यकता का भी उल्लेख रहे।

बोर्ड को यह अधिकार होना चाहिये कि वह अपने ग्राहकों को जो कोई भी सामग्री भेजे उसे पुस्तकरूप में संगृहीत कर सके।

छपे हुए लेखों की दो 'कटिंग' प्रधान कार्यालय को भेजी जायँ एक प्रधान कार्यालय के लिए और एक शाखा कार्यालय के लिये।

ग्राहकों को क्रम से तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—तीस रुपया प्रति मास देनेवाले ग्राहक पन्द्रह रुपया प्रति मास देनेवाले ग्राहक और दस रुपया प्रति मास देनेवाले ग्राहक।

प्रथम श्रेणी के ग्राहकों को प्रति मास आठ लेख ऐसे मिलेंगे जो केवल उन्हीं के लिये अनुवादित किये गये हों द्वितीय श्रेणी के ग्राहकों को प्रति मास चार लेख ऐसे दिये जायेंगे और तृतीय श्रेणी के ग्राहकों को केवल दो विशेष लेख दिये जायेंगे।

यह आशा की जाती है कि प्रथम श्रेणी के पन्द्रह ग्राहक प्राप्त हो जायेंगे

द्वितीय श्रेणी के बीस और तृतीय श्रेणी के पचास ग्राहक प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार बोर्ड को कुल एक हजार दो सौ पचास रुपया मासिक आय हो सकेगी।

यह मोटे तौर पर तैयार की गयी योजना है। मेरी राय है कि आप प्रधान कार्यालय का भार ले लें। इलाहाबाद के कार्यालय का प्रबन्ध मैं कर लूँगा। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी कलकत्ते का और 'मधुप' के प्रोफेसर इन्द्र दिल्ली का भार सम्हाल लेंगे। इस बात का ध्यान में रखते हुए आप स्वयं उन लोगों से पत्र व्यवहार चला सकते हैं।

यदि आगामी जुलाई से इस कार्य का श्रीगणेश हो सके तो बहुत अच्छा हो बहुत सम्भव है, प्रारम्भिक व्यवस्था में एक पूरा महीना बीत जाये। पर समय नष्ट नहीं होना चाहिए।

मैं आपको सूचित करना चाहता हूँ कि मैंने इलाहाबाद आफिस के लिए अनुवादकों की सूची तैयार कर ली है। एक प्रचार-पत्र संचालकों के हस्ताक्षर सहित शीघ्र ही तमाम पत्रों को भेज दिया जाना चाहिए जिसमें योजना समझा दी जाय। प्रचार-पत्र के साथ यदि का फ़ार्म भी रहे। प्रचार-पत्र जब तैयार किया जाय तब श्री बनारसीदास जी तथा इन्द्र जी के उत्तर आपको मिल जावें। इस बीच आप—और मैं भी—इस बात पर विचार कर लें कि प्रचार-पत्र में क्या क्या बातें रहेंगी।

आपने अभी तक मेरे पास हिन्दी के दैनिक साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों की सूची नहीं भेजी।

एक बात अभी तक छूटी रह गयी है, वह है कानून-संबंधी विवेचना। यह तो स्पष्ट ही है कि हम लोगों की संस्था का उद्देश्य चाहे कैसा ही क्यों न हो वह व्यावसायिक ही होगी और केवल व्यावसायिक ढंग से उसे चलाया जा सकता है। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार की बहुत-सी एजेन्सियाँ हैं। हम आप एक ऐसा प्रयोग करने जा रहे हैं जो मेरी राय में केवल हिन्दी क्षेत्र के लिये ही नहीं बल्कि भारत के लिए नया है। कुछ भी हो आपसे आशा है कि आप एजेन्सी के कानूनी पक्ष पर विचार करके अपनी सम्मति की सूचना मुझे भी दीजियेगा।

पत्र काफ़ी लम्बा हो गया है। अधिक आपका पत्र मिलने पर।

आपका
रामचन्द्र टंडन

२६०

८

जागरण कार्यालय बनारस
१ जून १९३१

प्रिय भाई साहब

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। आपकी योजना मुझे बहुत उपयुक्त जँचती है। कार्यालय से ही काम चल जायगा। शाखाओं की आवश्यकता ही क्या है? प्रधान कार्यालय किसी एक ऐसे केन्द्रीय स्थान में होना चाहिये जहाँ अंग्रेजी पत्र पत्रिकाएँ आसानी से प्राप्त हो सकें। इलाहाबाद इसलिये आदर्श स्थान है। प्रधान कार्यालय म एक संचालक तथा एक या दो क्लर्क रहें। 'अर्जुन' और चतुर्वेदी जी दो ढोरों से क्या कर सकते हैं? संचालक ऐसे व्यक्ति को होना चाहिये जो पठनीय ज्ञानवर्द्धक और विचारोत्तेजक सामग्री का अच्छा चुनाव करने की योग्यता रखता हो। वह स्वयं इस बात का निश्चय करेगा कि अनुवाद के लिए कौन-सी सामग्री किस व्यक्ति को दी जावे। वह इस बात पर ध्यान रखेगा कि किस अनुवादक की योग्यता किस हद तक है और कौन इस संबंध में कितनी सहानुभूति रखता है। अनुवादकों के चुनाव का आधार यही होना चाहिये। पक्षपात से बचने के लिए एक प्रकार की वृत्तानुक्रमिक व्यवस्था होनी चाहिये। बाकी सब बातें ठीक हैं। यदि संचालकों को रकम बढ़ाकर रखी जावे तो प्रारम्भिक भार के निर्वाह का प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। कार्यालय का प्रारम्भिक व्यय प्रति मास पचास तीस बीस चालीस दस पन्द्रह, और एक सौ रुपये से अधिक नहीं होना चाहिये। संचालक को प्रति मास पचास रुपया दो क्लर्कों को क्रम से तीस रुपया और बीस रुपया आफिस का किराया चालीस रुपया एक चपरासी का वेतन दस रुपया रोशनी पन्द्रह रुपया और एक सौ रुपया पत्र-पत्रिकाओं के लिए। इस प्रकार कुल मिलाकर ढाई सौ रुपया का खर्च बैठता है। बाकी रुपया आपकी योजना के अनुसार अनुवादकों में बाँट दिया जा सकता है। अनुवादक विश्वसनीय होने चाहिये। प्रचार-पत्र में अनुवादकों के नामों का उल्लेख रहना चाहिये। यदि हम लोग उर्दू संसार को भी लेवें तो आपकी योजना का क्षेत्र विस्तृत हो जायेगा। किसी लेख का अनुवाद हिन्दी में हो जाने पर उर्दू में वह बड़ी आसानी से रूपान्तरित किया जा सकता है। जो सूची आपने माँगी थी मैं उसे भेज रहा हूँ। वह पूरी नहीं है, पूरी के करीब है। यदि जनता सहयोग दे तो सब कुछ हो सकता है। कुछ बातें सहयोग पर निर्भर हैं। अब कार्यालय का व्यय ढाई सौ

रुपया है तो अनुवादकों का पारिश्रमिक एक और पाँच के अनुपात में होना चाहिए। यदि हमें प्रति मास एक हजार रुपया भी प्राप्त हो जायँ तो योजना बड़े मजे में चलाई जा सकती है। पाँच सौ रुपया भी कोई निरुत्साहजनक रकम नहीं है। ऐसी हालत में हमें कार्यालय का व्यय घटाना होगा। फिलहाल मकान के भाड़े का कोई प्रश्न नहीं उठेगा। इस सम्बन्ध में कुछ अनुभवी व्यक्तियों जैसे श्री कृष्णाराम मेहता अथवा श्री विश्वनाथ प्रसाद से बात करने में क्या हर्ज है? दो-एक व्यक्तियों ने इस विषय में मुझे पत्र लिखे हैं। प्रचार-पत्र इस रूप में तैयार किया जाना चाहिए जिससे लोगों पर प्रभाव पड़ सके और वे यह अनुभव करें कि उन्हें सेवा के बतौर नहीं बल्कि स्वयं अपने हित में सहयोग देना है। प्रारम्भ में निम्न व्यक्तियों को हमें अपने साथ लेना होगा—१—प्रोफेसर ब्रज २—बनारसीदास जी ३—डा० हेमचन्द्र जोशी ४—मिस्टर श्रीप्रकाश और ५—आगरा के श्री पालीवाल जी।

प्रारम्भिक अवस्था में जमीन को तैयार करने के लिए बहुत परिश्रम-साध्य काम करना पड़ेगा। व्यय भी काफी करना पड़ेगा। टिकटों का खर्च खास तौर से रहेगा। प्राय: आधे दर्जन मान्य व्यक्ति हमारा साथ देने को तैयार हो जायँ तो प्रचार-पत्र तैयार करके विस्तृत योजना सम्मतियों के साथ समस्त समाचारपत्रों के सम्पादकों तथा मालिकों के पास भेज दी जाय। यदि योजना का स्वागत हुआ तो समझ लेना चाहिए कि हम लोगों ने बाजी मार ली अन्यथा नहीं। प्रारम्भ में यदि सामान्य परिमाण में काम चलाया जा सके तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।

उर्दू संवादपत्रों की सूची मुंशी दयानारायण निगम से प्राप्त की जा सकती है। मेरा ऐसा ख्याल है कि अमृतसर साहब को सब पत्रों के नाम याद नहीं होंगे। मुंशी दयानारायण तथा और दो-एक सज्जनों की भी सम्मतियाँ इस योजना के संबंध में जान लेनी चाहिए। उर्दू का क्षेत्र काफ़ी बड़ा है और अगर वे लोग सहयोग दें तो बहुत बधाई का विषय होगा। प्रारम्भिक व्यय के लिए आप मेरा कमीशन काट सकते हैं जो हिन्दुस्तानी एकेडमी से मुझे प्राप्य है। प्राय: बीस रुपये मुझे पाने हैं। फ़िलहाल इस रकम से काम किसी तरह चालू किया जा सकता है।

यदि आप समय निकाल सकें तो आपसे अच्छा सचालक दूसरा नहीं मिल सकता। अभी किसी योग्य व्यक्ति को पूरे समय के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता। आप पहले योजना के संबंध में कुछ लोगों से बातचीत कर लें। उसके बाद मुझे बुला लें। मैं आपके साथ आपके घर पर भोजन करते हुए योजना के

संबंध म विस्तार से बातें करूँगा। इसके लिए मैं एक दिन का समय दे सकता हूँ।

आपका स्नेही
धनपतराय

२६२

६

१० साउथ रोड, इलाहाबाद
६ जून १९३३

प्रिय प्रेमचंद जी

आपके पत्र के लिये बहुत धन्यवाद। मैं आपकी सावधानी से पूर्णतया सहमत हूँ। प्रान्तीय शाखाओं के खोलने के संबंध में मैंने जो प्रस्ताव किया था उससे मेरा उद्देश्य विभिन्न केन्द्रों के कार्यकर्ताओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना था। हम लोग अब उस स्थिति पर पहुँच गये हैं जब कि इस विषय पर बातचीत करके कुछ निश्चित निर्णयों पर पहुँच सकते हैं। यदि आप अगले सप्ताह के अन्त म इलाहाबाद आ सकें तो रविवार ११ जून को हम लोग योजना को निश्चित रूप देकर कार्यवाही शुरू कर सकते हैं। कृपया अपने आने की सूचना मुझे पहले से दे दें ताकि यहाँ दो-एक व्यक्तियों को भी समय पर सूचना मिल जावे।

आपका
रामचन्द्र टण्डन

२६२

१०

सरस्वती प्रेस, बनारस

प्रिय भाई साहब

आपका कार्ड कई दिन हुए, मिला था पर मेरी तबीयत इस बीच ठीक नहीं रहती है और इस समय भी कुछ विशेष अच्छी नहीं है। मैं उम्मीद करता हूँ कि शनिवार या इतवार को मैं इलाहाबाद पहुँचूँगा। एक तो बीच रोग तिस पर दाँत का दर्द इन दो कारणों से आपके यहाँ आने का प्रलोभन बहुत कुछ नष्ट हो गया। मैं आपके यहाँ के सुस्वादु व्यंजनों का रस लेने से वंचित ही रह जाऊँगा। यदि इस बीच कोई विशेष कारण न आ खड़ा हुआ तो मुझे उम्मीद है कि इलाहाबाद आ पहुँचूँगा।

आपका
धनपत राय

(कार्ड पर १९ जून १९३३ की डाक मुहर है)

विनोद शकर व्यास

२६३

लखनऊ
७ अप्रैल १९२७

प्रिय महाशय

आपका पत्र मिला। उत्तर में निवेदन है कि मेरी कहानियों का कापीराइट दूसरे प्रकाशकों के पास है और मुझे उनके प्रकाशन की अनुमति देने का अधिकार नहीं है। आशा है आप प्रकाशकों से ही तय कर लेंगे।

क्षमा करें।

भवदीय
धनपत राय
प्रेमचंद

२६४

माधुरी कार्यालय
८ जुलाई १९२७

प्रिय महाशय

पत्रोत्तर में निवेदन है कि मेरी कहानियों का सर्वाधिकार प्रकाशकों ही को है। मैं उसमें हस्तक्षेप कैसे कर सकता हूँ?

रही मेरे जन्म की तिथि आदि। मेरा जन्म सं० १९३७ में हुआ। काशी के उत्तर की ओर पांडेपुर के निकट लमही ग्राम का निवासी हूँ। क्वीन्स कालेज में अंग्रेजी पढ़ी। शिक्षा विभाग में रहा। पहले १९०० ई० में 'प्रेमा' लिखा फिर उर्दू में प्रेम पच्चीसी आदि और 'असरारए ईमार' लिखा। सन् १६ में 'महात्मा शेखसादी' लिखा। उसी साल सरस्वती में एक कहानी लिखी और तब से ग्यारह साल से बराबर कुछ न कुछ लिखता जाता हूँ।

माधुरी के लिए आप कुछ लिखने की कृपा क्यों नहीं करते? क्या आशा करूँ?

भवदीय
धनपत राय

२६५

लखनऊ
९ सितम्बर १६२६

प्रिय व्यास जी

कृपा पत्र मिला। 'मधुकरी' पहले ही मिल गयी थी। संग्रह अच्छा है। कहानियों का चुनाव सुन्दर, छपाई में अशुद्धियों और विरामों का अभाव इस संग्रह की विशेषता है।

आलोचना की दो-एक बातों से मैं सहमत नहीं हूँ मगर मैं कोई आक्षेप नहीं करता। आपको अपनी राय प्रकट करने में उतनी ही स्वाधीनता है जितनी मुझे या किसी दूसरे को है।

भवदीय
धनपत राय

२६६

लखनऊ
१० सितम्बर १६२६

प्रिय व्यास जी

वंदे

आपने 'मधुकरी' पर मेरी सम्मति पूछी है। संग्रह सुन्दर हुआ है और कहानियों के चुनाव में सुरुचि से काम लिया गया है। ऐसे सुन्दर संग्रह पर मैं आपको बधाई देता हूँ। मेरे और आपके साहित्यिक आदर्शों में किंचित् अंतर है पर यह कैसे आशा की जा सकती है कि सभी लोग एक ही जैसे विचार रखते हों। यह भेद स्वाभाविक है। इससे संग्रह की सुन्दरता में कोई बाधा नहीं पड़ती। संग्रह में बनारसवालों के साथ आपने जरूरत से ज्यादा उदारता की है, पर शायद मैं संग्रह करने बैठता तो मैं भी ऐसा ही करता। मेरा 'गल्प समुच्चय' तो एक प्रकाशक के संकेत पर केवल स्कूली कक्षाओं के लिए, उसी के बताये हुए लेखकों से किया गया था। उसमें मैं उन लेखकों को कैसे ला सकता था जिनको प्रकाशक ने स्वयं पसन्द कर दिया था। स्कूल के लिए कठिन भाषा और जवानी से छलकती हुई कहानियों की तो जरूरत न थी। वहाँ तो चरित्र का विचार ही प्रधान रहता है। मेरे विचार में—सभी के विचार में—साहित्य के तीन लक्ष्य हैं—परिष्कृति मनोरंजन और उद्घाटन। लेकिन मनोरंजन और उद्घाटन भी उसी परिष्कृति के अन्तर्गत आ जाते हैं क्योंकि लेखक का मनोरंजन केवल भावों का कल्पनाओं का

नाम नहीं मालूम। हिन्दी-भाषी जनता संख्या में जरूर बड़ी है लेकिन उसमें ज्यादातर गरीब लोग हैं। मैं अपने अनुभव से तुमको बतला सकता हूँ कि किसी पुस्तक के एक संस्करण की दो हजार प्रतियाँ बेचने में पूरे चार बरस लग जाते हैं। एक नये लेखक के लिए उसकी पुस्तक कितनी ही अच्छी क्यों न हो बाजार और भी कहीं संकुचित हो जाता है। मैं कोई प्रकाशक नहीं हूँ हाँ एक मासिक और साप्ताहिक और किताबें छापता हूँ मगर एक-दो मित्रों को छोड़कर मैंने और किसी लेखक की कोई किताब नहीं छापी है। मेरे लिये यह व्यवसाय कमोबेश एक तरह का पागलपन है। मेरी किताब जरूर बिकती है लेकिन उसकी आमदनी प्रेस का पेट भरने में चली जाती है। तुम्हारी किताब मुझको बहुत पसन्द आयी है और मुझे तुम्हारे अन्दर सम्भावनाओं के बीज दिखायी पड़ते हैं इसलिए मैं तुम्हारे लिए एक प्रकाशक ढूँढने की कोशिश करूँगा और यह भी कोशिश करूँगा कि तुमको अच्छी से अच्छी शर्तें हासिल हों लेकिन मुझे डर है कि किसी सूरत में यह रकम ज्यादा कुछ न हो सकेगी। जो शर्तें मुझे हासिल होंगी मैं तुमको लिखूँगा और अगर तुम मंजूर करोगे तो किताब प्रकाशक को दे दी जायगी। अगर यह किताब चल जाती है जैसी कि मुझे उम्मीद है तो अगली किताब के लिए मुमकिन है ज्यादा अच्छी शर्तें हासिल हो सकें। दूसरे बाजारों की तरह यह बाजार भी धीरे-धीरे बनाना पड़ता है। हिन्दी जनता के सामने ज्यादा से ज्यादा आने की कोशिश करो। यही एक उपाय है कि जो मैं भी तुम्हें सुझा सकता हूँ। मैं तुम्हारे सदुद्देश्य को महत्व देता हूँ और मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम पहली पंक्ति में आ जाओ।

तुम्हारा
प्रेमचंद

२२२

सरस्वती प्रेस, बनारस
२७ अप्रैल १९३५

प्रिय इन्द्र

तुम्हारा खत पाकर बहुत खुशी हुई। तुम्हारी किताब पूरी छप गयी है। मैं आज उसकी प्रशंसात्मक भूमिका लिख रहा हूँ। अगर तुम भी कोई आमुख देना चाहो तो जल्द से जल्द भेज दो। किताब दो सौ सत्ताईस पन्ने की हुई है। तुम्हारा मनीआर्डर मुझे बम्बई में मिल गया था मगर चिट्ठियाँ नहीं मिलीं और न तुम्हें

मूल पत्र अंग्रेजी में

जवाब नहीं दे सका क्योंकि मुझे तुम्हारा पता मालूम नहीं था। हम लोग ३ अप्रैल को यहाँ से चले और इधर-उधर घूमते घामते २४ तारीख को यहाँ पहुँचे। मैं परीक्षा में तुम्हारी सफलता के लिए प्रार्थना करता हूँ। अगर तुम प्रस्तावना हफ्ते भर के अन्दर भेज दो तो किताब पन्द्रह दिन में तुम्हारे पास पहुँच जायगी। तुम्हारी खैरियत हमेशा हमारे दिल में रहेगी। मैं तुम्हें अपने ही बच्चों में से एक समझता हूँ। अगर मैं किसी तरह तुम्हारी मदद कर सकूँ तो बड़ी खुशी से करूँगा। तुम्हारी माता जी तुम्हें आशीर्वाद देती हैं।

सस्नेह

तुम्हारा
प्रेमचंद

हंस के मार्च अंक में तुम्हारा लेख है।

२२३

सरस्वती प्रेस, बनारस
१८ मई १९३५

प्रिय इन्द्र

तुम्हारा पत्र। पचास प्रतियाँ रेलवे पार्सल से तुमको भेजी जा रही हैं। एक प्रति बड़ौदा के पते पर रवाना की गयी है। इन दिनों मैं अपने गाँव में हूँ। चेचक का दौरा मेरे घर में हुआ है। पहले बड़ा लड़का गिरफ्तार हुआ उसके बाद छोटा। वह अब भी बिस्तर में है।

'घर की राह' मेरी भूमिका के साथ छपी थी। तुम्हारी प्रस्तावना देर में पहुँची और नहीं दी जा सकी लेकिन तुम्हारा समर्पण मुझको अच्छा नहीं लगा। तुम्हारी किताब मेरे बच्चों ने पत्नी ने मित्रों ने पसन्द की है। जिसने भी पढ़ी तारीफ की। समालोचना के लिए उसे पत्रों के पास भेजा जा रहा है। मैं आशा करता हूँ कि समालोचनाएँ उत्साहवर्धक होंगी। कुल दो हजार प्रतियाँ छपी हैं। बिकी हुई प्रतियों पर हर बार तुमको पन्द्रह फी सदी रायल्टी मिलेगी।

मैं अपना प्रेस और कार्यालय इलाहाबाद ले जा रहा हूँ और इसमें भारी रकम लगेगी वर्ना मैं तुमको पेशगी कुछ भेजता। तुम्हें पूरी संजीदगी के साथ अपनी कोशिश जारी रखनी चाहिए। अगर तुम इस तरह की सिर्फ तीन किताबें लिख लो तो अपनी जीविका भर के लिए काफी जमा लोगे। तुम्हारे भीतर चीज है मेरा मतलब मौलिक सामग्री से है। संयम की तुममें कमी है। उसको अपनाओ।

मूल पत्र अंग्रेजी में

तुम्हें हंस में बराबर लिखते रहना चाहिए और मैं अपनी शक्ति भर तुमको पुरस्कार देने की कोशिश करूँगा। तुम दूसरे पत्रों में भी जरूर लिखो। मगर कम-से-कम पैसे लेकर अपनी अच्छी-से-अच्छी चीज हंस को भेजो इसे उसकी ख्वारिंगारी समझो।

मैं नये वातावरण में जा रहा हूँ इस उम्मीद में कि शायद मैं वहाँ पर कुछ बेहतर हालत में हो सकूँ। अगर मैं पनपता हूँ तो मेरे साथ तुम भी पनपोगे।

वह किताब कोटा में लगवाने के लिये ज्यादा से ज्यादा कोशिश करता।

हम लोग अच्छी तरह हैं बस वही बेचक का झमेला है। तुम्हारी अम्मी भी तुम्हें याद करती हैं और तुम्हें आसीस देती हैं।

सस्नेह

तुम्हारा
प्रेमचंद

२२४

हंस कार्यालय बनारस कैंट
१८ अगस्त १९३५

प्रिय अमृत

जानकर खुशी हुई कि तुम्हें काम मिल गया अस्थायी ही सही आगे चल कर स्थायी हो जायगा। एक बन्धु ने अभी हाल में तुम्हारी पुस्तक की एक प्रशंसात्मक समालोचना लिखी है। जहाँ तक दूसरी समालोचनाओं की बात है उनमें से कोई भी काटकर रखने काबिल न थी। हमने उनमें से एक-दो अच्छे वाक्य निकालकर अपने विज्ञापन में वाम दिये हैं। लोग उसे पसन्द कर रहे हैं लेकिन अब तक आर्डर बहुत कम आये हैं। पुस्तक विक्रेताओं को हम तैंतिस प्रतिशत देते हैं। अगर तुम इस पुस्तक के आर्डर ले सको तो हम दोनों मुनाफे को बाँट सकते हैं। उसकी लागत पच्चीस प्रतिशत है। तुमको हम पन्द्रह प्रतिशत देंगे पुस्तक विक्रेताओं को तैंतिस प्रतिशत। विज्ञापन मद्धे पाँच प्रतिशत। अठहत्तर प्रतिशत इस प्रकार निकल गया। हमारे पास बस बाइस प्रतिशत बचा उसके साथ पैसा डूब जाने का खतरा लगा हुआ। इस बाइस प्रतिशत में से मैं तुमको कोई भी हिस्सा दे सकता हूँ। जितने आर्डर तुम्हारी मारफत मिलें उन पर तुम पचपन प्रतिशत ले सकते हो जिसमें तुम्हारी रायल्टी भी शामिल होगी। तैंतिस प्रतिशत तुम व्यापारियों को दे सकते हो और पन्द्रह प्रतिशत अपनी रायल्टी का रख सकते हो। और सात प्रतिशत और। तैंतालिस प्रतिशत जो बचे उसमें से तीस प्रति

मूल पत्र अंग्रेजी में

सब छपाई और बिक्री के खर्चों में निकल जायगा और प्रकाशन संस्था के पास मुमकिन है पन्द्रह प्रतिशत बच रहे। इससे ज्यादा भारी कोई बात हो सकती है ? जैसा कि मैंने तुमसे कहा था मैं पेशेवर प्रकाशक नहीं हूँ और मैं कुल स्टाक तुम्हीं को पचपन प्रतिशत पर दे देने के लिए तैयार हूँ। जितने आर्डर ले सको ला। एक-दो प्रतियों से काम नहीं चलेगा। छोटे आर्डरों पर हम ज्यादा कमीशन नहीं देते।

'शक्ति-पूजा' तुम्हारे पास भेजी जायगी। पता नहीं मैनेजर ने अब तक क्यों नहीं भेजी। शायद उस अंक की अतिरिक्त प्रतियाँ नहीं हैं।

'जमतोरी' बहुत सुन्दर है। मगर जैसा कि तुम जानते हो अब मेरे पास हिन्दी के लिए बहुत कम जगह है। अगर मुमकिन हुआ तो मैं उसे पहले ही अंक म दे दूँगा वर्ना बाद के किसी अंक मे।

तुम्हारी माता जी ठीक हैं।

तुम्हारा
प्रेमचंद

२२५

बनारस छावनी, बनारस
११ दिसम्बर १९३५

प्रिय इन्द्र

तुम्हारा पत्र कोई दो दिन हुए मिला। मैं पिछले दो महीनों से बिस्तर पकड़े हुए हूँ। धीरे-धीरे मेरी सेहत ठीक हो रही है लेकिन इस काबिल होने में कि मैं कुछ काम कर सकूँ अभी बहुत वक्त लगेगा।

मैं बनारस जमा करके फिर 'हंस' निकालने जा रहा हूँ। और एक नयी पत्रिका निकालने का विचार मैंने छोड़ दिया है। मुझे आशा है कि तुम कभी-कभी उसमें लिखते रहा करोगे।

हास्यरस की गुजराती कहानियों के बारे में मैं कुछ जानकारी चाहता था क्योंकि मैं भारतीय हास्य पर एक पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित करने जा रहा था। उसके अनुवाद का काम मैं तुमको देना चाहूँगा। इस काम के लिए मैं तुम्हें कुछ पुरस्कार भी दे सकूँगा। क्या तुम कृपा करके इन पाँच कहानियों में से तीन सबसे अच्छी कहानियों का अनुवाद करके एक पखवारे के भीतर मुझको भेज सकोगे क्योंकि पुस्तक प्रेस में जा चुकी है ? पूरा ध्यान लगाकर इस काम को करना।

तुम्हारा
प्रेमचंद

मूल पत्र अंग्रेजी में

२२६

लखनऊ
९ जनवरी १९२५

प्रिय शिवपूजन जी

वंदे।

मिश्रा जी से आपके कलकत्ता में सकुशल रहने का समाचार पाकर प्रसन्न हुआ। आपके चले जाने का दुख तो जरूर हुआ क्योंकि अब मैं भी यहाँ दो-चार महीने रहना चाहता हूँ लेकिन यह कम खुशी की बात नहीं कि आप सानन्द हैं।

'फूलों की डाली' यदि आपने देख ली हो तो कृपया उसे प्रेस में देने के लिए भेज दें। यदि अभी समाप्त न हुई हो तो सूचित करें कि कब तक भेज सकेंगे और यदि अवकाश न हो तो कृपया लिखें ताकि मैं ही टेढ़ा-सीधा देख भाल कर अलग करूँ। इस कष्ट के लिए क्षमा प्रदान कीजिये।

भवदीय
धनपतराय

रंगभूमि के ४ फार्म छप चुके हैं।

२२७

लखनऊ
२२ फरवरी १९२५

प्रिय शिवपूजन सहाय जी

वंदे।

मुझे तो आप भूल ही गये। लीजिए जिस पुस्तक पर आपने कई महीने दिमाग रेज़ी की थी वह आपका अहसान अदा करती हुई आपकी खिदमत में आती है और आपसे विनती करती है कि मुझे दो-चार घंटों के लिए एकान्त का समय दीजिये और तब आप मेरी निस्बत जो राय कायम करें वह अपनी मनोहर भाषा में कह दीजिये।

मैं अभी यहीं हूँ। बाल विनोद माला के निकालने के लिए पकड़ लिया गया हूँ। काश आप होते तो कैसी बहार रहती। और इस माला के लिए यदि आप कोई छोटी-मोटी हँसने-हँसानेवाली चूहे बिल्ली चील-कौवे की कहानी लिखें तो बड़ा एहसान करें। मैं रंगभूमि पर आपकी आलोचना का बड़ी बेसब्री से इंतजार करूँगा।

भवदीय
धनपतराय

२२८

लखनऊ,
१७ मार्च १९२५

प्रिय शिवपूजन जी
वंदे।

रंगभूमि की आलोचना आपने अब तक न लिखी। इसकी मुझे आपसे शिकायत है। सिवा इसके और क्या समझूँ कि आप उसे इस योग्य नहीं समझते। आशा है अब माधुरी या किसी अन्य पत्रिका के लिए अवश्य लिखेंगे।

एक बात और लिखने की जरूरत मालूम होती है। यों तो 'मतवाला' में माधुरी पर नित्य दो-चार छींटे उड़ा दिये जाते हैं पर अब की होली के अंक में तो उसने सुरुचि और सभ्यता का अंत ही कर दिया। आपके रहते यह अनर्थ हो इसका मुझे दुख है। आपस की थोड़ी-सी चुहल जिसमें दिल दुखा हो बुरी नहीं लेकिन जब यह चुहल साहित्यिक मनोरंजन की सीमा से निकलकर द्वेष की हद तक पहुँच जाती है तो यही कहना पड़ता है कि यह हिन्दी भाषा का दुर्भाग्य है जहाँ ऐसे-ऐसे गंदे अपमानजनक भ्रष्ट लेख निकालने में संपादकों को आपत्ति नहीं होती। मालूम नहीं मतवाला के पाठकों को इन लेखों से कोई विशेष रुचि है या इस अनवरत प्रवाह का और कोई कारण है। बहरहाल जो कुछ हो यह बात बुरी है और अब उस हद से कहीं आगे बढ़ गयी है जिसे दिल्लगी कहकर क्षम्य समझा जाय। हमारे नाम और माधुरी के और लेखक कितने ही गए-गुजरे हों पर वे हिन्दी की कुछ न कुछ सेवा अवश्य कर रहे हैं और उनके काम की कद्र न करके नित्य खिल्ली उड़ाते रहना अपने को गुणग्राहकता से शून्य सिद्ध करना है। मैं आपको यह पत्र इसलिए लिखने का साहस कर रहा हूँ क्योंकि मैं आपको बहुत थोड़े दिनों का परिचय होने पर भी अपना मित्र समझता हूँ और आपकी शिष्टता और सज्जनता का कायल हूँ। यदि मतवाला की पालिसी में आपको कुछ दखल हो (और इसका हमारे पास प्रमाण है कि है) तो गुरु और परमेश्वर के लिए

आप इस सिलसिले को बंद कर दें या करा दें। आप उस आदमी को जिसने यह लेख लिखा है फिर मतवाला में ऐसे लेख लिखने का मौका न दीजिये। इस लेख में उसने चुभी-चुभी चोटें की हैं और यहाँ कुछ लोगों की सलाह हो रही है कि मतवाला पर अपमान करने का दीवानी और फौजदारी अभियोग चलाया जाय। अगर आपस में यह नौबत आ गयी तो क्या मजा रहा। मतवाला भी हैरान होगा उसका नशा भी हिरन हो जायगा और यहाँवालों को भी काफी मानसिक वेदना होगी। मैं नहीं चाहता कि मित्रों में जूतियाँ चलें। लेकिन इसका रोकना मतवाला के अपने हाथ में है। आश्चर्य तो यह है कि यहाँ से कोई उत्तेजना न मिलने पर भी मतवाला को क्यों लगातार एक fair sex पर ऐसे अश्लील आक्रमण करने का साहस होता है। क्या उसमें महिला-सम्मान बिलकुल नहीं रहा?

आशा है आप मुझे क्षमा करेंगे। मैंने जो कुछ लिखा है मित्रभाव से लिखा है और आप उसे इसी भाव से देखियेगा।

आशा है अपने कुटुम्ब सहित सकुशल होंगे।

भवदीय
प्रेमचंद

२२६

बनारस सिटी
१२ जून १९२६

प्रिय शिवपूजन सहाय जी

दो दिन से बड़े चौकठ पर हाजिरी दे रहा हूँ पर दुर्भाग्यवश दर्शन नहीं होते। इस वक्त यह कहना है कि 'परीक्षा प्रश्नावली' समाप्त हो गयी। इसके टाइटिल पेज की फिक्र है। टाइटिल पर क्या लिखा जायगा कागज कैसा लगाया जायगा? कृपया ये बातें बतला दीजिये। दूसरी कोई किताब यदि दे सकें तो पैसा खाली है इसमें लगा दूँ। छपाई का बिल आपको दूँ या सीधे लहेरियासराय भेजना होगा?

आपका
धनपत राय

२२७

सरस्वती प्रेस काशी
१९ जून १९२६

प्रिय शिवपूजन सहाय जी

यदि यह पुस्तक देख चुके हों तो कृपया भेज दें।

लहेरियासरायवालों ने मेरे पत्र का अब तक जवाब नहीं दिया। क्या आप

उन्हें लिखकर यह पूछ सकेंगे कि परीक्षा प्रश्नावली के लिए कैसा कवर दिया जायगा ? और उस पर क्या लिखा जायगा ?

किताब तैयार हो जाती तो छपाई का बिल वसूल होता वरना मुफ्त में देर होगी ।

आपका
धनपतराय

२२१

लखनऊ
६ अगस्त १९२५

प्रिय शिवपूजन जी

कृपा पत्र मिला । आप 'उपन्यास तरंग' निकालने जा रहे हैं, यह जानकर खुशी हुई । इस वक्त तो मरने की भी फुर्सत नहीं है लेकिन लिखूँगा जरूर अगर अवकाश मिल जाय तो ।

आपकी पत्नी की बीमारी का हाल सुनकर बहुत दुख हुआ । इसके पहले पत्रों में भी यह समाचार पढ़कर चित्त दुखी होता था । आप ही ऐसे दिल के मजबूत हैं कि इतने कष्ट और झगड़े सहकर भी अपना काम किये जाते हैं । मैं तो कब का कंधा डाल चुका होता । सज्जनों को उनकी सज्जनता का यही पुरस्कार मिलता है ।

मैं भी १५ अगस्त तक बनारस चला जाऊँगा और तब लिखने का अवकाश ज्यादा मिलेगा ।

और तो सब कुशल है ।

आपका
धनपतराय

२२२

लखनऊ
५ अप्रैल १९२७

प्रिय शिवपूजन सहाय जी

वन्दे ।

आपका कृपा पत्र मिला । आपके भाग के चित्र तो बन गये अब आप का इंतजार है । आपको अब संस्थे में छुट्टी मिल गयी है दो-तीन दिन में मिल जाइए जिसमें वैशाख में अवश्य छापा जाय ।

इसके बाद और कोई लेख सोचिये। बंगला साहित्य पर एक सुन्दर सचित्र लेख की बड़ी ज़रूरत है। आप ही उसे लिख सकते हैं।

मेरे प्रेस का ध्यान रखियेगा। यदि बेनीपुरी जी आये हों तो उनसे माधुरी के लिए 'विद्यापति' पर लिखने की याद दिला दीजिएगा उन्होंने वादा किया था।

आशा है आप सानन्द होंगे।

भवदीय
धनपत राय

२२३

लखनऊ
१२ अप्रेल १९२७

प्रिय शिवपूजन सहाय

आपके लेख के चित्र बन गये हैं। बैशाख का मैटर प्रेस में देने की जल्दी है। कृपाकर लेख शीघ्र समाप्त कीजिए। इस पत्र को तार समझिए।

आपका
धनपत राय

२२४

लखनऊ
१५ अप्रैल १९२७

प्रिय महाशय

आपने अभी तक लेख नहीं भेजा। आज बैशाख का मैटर प्रेस को दे दिया गया है। कोई सचित्र लेख तैयार नहीं था। इसलिए आपके लेख के आने की आशा में मैंने उसका नाम भी लिख दिया है। लेख न आया तो बड़ी देर हो जायगी। कृपा करके जल्द से जल्द और प्रोग्राम से पहले भेजिए।

भवदीय
धनपतराय

२२५

लखनऊ

११ मई १९२७

प्रिय शिवपूजन सहाय और रामकृष्ण शर्मा जी साहबान

खुदा ने सारी दुनिया का बोझ आप ही दोनों देवताओं के कंधों पर डाल दिया है क्या ? वादे करके उन्हें पूरा न करना कितना बड़ा जुल्म है । निराशा में मौत तो आती है वादे में तो तड़प और खटक सब कुछ है । बंगला स्टेज के लिए कब तक आशा करूँ ? भला एक पत्र तो लिखिए ।

आपका

धनपतराय

२२६

लखनऊ

२ जून १९२७

प्रिय शिवपूजन सहाय

लेख मिला फिर भी अधूरा । इसे मैं आषाढ़ में दूँगा और एक ही बार छापूँगा क्योंकि नये वर्ष से नयी लेखमाला शुरू होनी चाहिए । पर यदि आप इतना ही और लिखें तो मैं सावन और भादों के अंकों में निकाल दूँ । हाँ जरा जल्दी कीजिएगा । इसे तो मैं न लौटाऊँगा । आपके पास से फिर मिलेगा कैसे । अगर आप न भेजें तो विवश होकर इतना ही छापना पड़ेगा तब आप कहेंगे कि आपने अधूरा लेख छाप दिया । लाज सोचिये अब आप मेरे हाथ में हैं ।

और तो सब कुशल है ।

भवदीय

धनपतराय

२२७

लखनऊ

१७ अक्टूबर १९२७

प्रिय शिवपूजन जी

आदाब ।

कृपापत्र मिला । आपने यों यह समझ लिया कि आप मेरी माता के लिए

कभी कुछ न लिख सकेंगे ? क्या आप ही अपने जीवन के द्रष्टा हैं ? मैंने तो इसी आशा से आपका नाम डाल दिया था। आप अगर आग्रह करेंगे तो निकालूँगा अन्यथा नहीं।

श्री वाचस्पति पाठक का लेख मैंने पसन्द करके रख लिया है। ज्यों ही मौका मिला दे दूँगा। लेख के उत्तम होने में सन्देह नहीं। आपके चित्र जो अप्रकाशित थे लौटा दिये गये हैं।

अपने संबंध में मैं आपको क्या मोद्म हूँ। सिवाय मोटी-मोटी बातों के और क्या जानता हूँ। यह बातें आप मेरे भाई साहब से पूछ सकते हैं। स्वभाव और चरित्र आदि बातें तो सम्पर्क ही से मालूम हो सकती हैं। दो-चार बार आपसे मेरी भेंट हुई है उसी आधार पर आप मुझे जो चाहे रूप दे सकते हैं। मगर कृपा करके कहीं पाठक को उल्लू न बना दीजियेगा।

शेष कुशल है।

भवदीय
जगपतराम

२२८

प्रिय शिवपूजन जी

लखनऊ
१० दिसम्बर १९२७

आज भाई बलदेव लाल के पत्र से यह शोक समाचार मिला कि आप कोठे से गिर पड़े हैं और आपके एक पैर में कड़ी चोट आयी है। यहाँ तो पं० कृष्ण बिहारी जी ने यह शुभ सूचना दी थी कि आप बाबा बनने जा रहे हैं कहाँ यह खबर। कैसी चोट है ? क्या हड्डी पर तो असर नहीं पहुँचा है ? ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपको शीघ्र ही चंगा कर दे।

१८ ता० को काशी आ रहा हूँ। ईश्वर करे उस वक्त तक आप चलने फिरने लगें।

मिश्र जी भी आपसे सहवेदना प्रकट करते हैं।

भवदीय
जगपतराम

२२५

लखनऊ
१३ मई १९२७

प्रिय शिवपूजन सहाय और रामवृक्ष शर्मा जी साहबान

खुदा ने सारी दुनिया का बोझ आप ही दोनों देवताओं के कंधों पर डाल दिया है क्या ? वादे करके उन्हें पूरा न करना कितना बड़ा जुल्म है। निराशा में नींद तो आती है वादे में तो तड़प और खटक सब कुछ है। बंगला लेख के लिए कब तक आशा करें ? भला एक पत्र तो लिखिए।

आपका
धनपतराय

२२६

लखनऊ
२ जून १९२७

प्रिय शिवपूजन सहाय

लेख मिला फिर भी अधूरा। इसे मैं आषाढ़ में दूँगा और एक ही बार छापूँगा क्योंकि नये वर्ष में नयी लेखमाला शुरू होनी चाहिए। पर यदि आप इतना ही और लिखें तो मैं सावन और भादों के अंका में निकाल दूँ। हाँ जरा जल्दी कीजिएगा। इसे तो मैं न लौटाऊँगा। आपके पास से फिर मिलेगा कैसे। अगर आप न भेजें तो विवश होकर इतना ही छापना पड़ेगा तब लोग कहेंगे कि आपने अधूरा लेख छाप दिया। सोच लीजिये अब भार मेरे हाथ में है।

और तो सब कुशल है।

भवदीय
धनपतराय

२२७

लखनऊ
१७ अक्टूबर १९२७

प्रिय शिवपूजन जी

आदाब।

कृपापत्र मिला। आपने क्यों यह समझ लिया कि आप बड़ी माला के लिए

कभी कुछ न लिख सकेंगे ? क्या आप ही अपने जीवन के ब्रह्मा हैं ? मैंने तो इसी आशा से आपका नाम शामिल किया था। आप अगर आग्रह करेंगे तो निकालूँगा अन्यथा नहीं।

श्री वाचस्पति पाठक का लेख मैंने पसन्द करके रख लिया है। ज्यों ही मौका मिला दे दूँगा। लेख के उत्तम होने में सन्देह नहीं। आपके चित्र जो अप्रकाशित थे लौटा दिये गये हैं।

अपने संबंध में मैं आपको क्या नोट्स दूँ। सिवाय मोटी-मोटी बातों के और क्या जानता हूँ। यह बातें आप मेरे भाई साहब से पूछ सकते हैं। स्वभाव और चरित्र आदि बातें तो सम्पर्क ही से मालूम हो सकती हैं। दो-चार बार आपसे मेरी भेंट हुई है उसी आधार पर आप मुझको चाहे रूप दे सकते हैं। मगर कृपा करके कहीं पाठक को उल्लू न बना दीजियेगा।

शेष कुशल है।

भवदीय
रूपनारायण

२२८

लखनऊ
१० दिसम्बर १९५७

प्रिय शिवपूजन जी

आज भाई बलदेव लाल के पत्र से यह शोक समाचार मिला कि आप कोठे से गिर पड़े हैं और आपके एक पैर में कड़ी चोट आयी है। कहाँ तो पं० कृष्ण बिहारी जी ने यह शुभ सूचना दी थी कि आप अच्छा होने जा रहे हैं कहाँ यह खबर। कैसी चोट है ? क्या हड्डी पर तो असर नहीं पहुँचा है ? ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपको शीघ्र ही चंगा कर दे।

१८ ता० को काशी जा रहा हूँ। ईश्वर करे उस वक्त तक आप चलने फिरने लगें।

मिश्र जी भी आपसे सहवेदना प्रकट करते हैं।

भवदीय
रूपनारायण

२२९

लखनऊ
२६ अगस्त १९२८

प्रिय शिवपूजन सहाय जी

कृपापत्र मिला। ग्राहकों का यथासाध्य प्रबंध कर लिया जायगा।

प्रेस पर आपकी कृपादृष्टि होनी ही चाहिए। धर्मखाते का काम है। कुछ मजदूरों की रोटियाँ चलती हैं। आप भी इस यश के भागी हों।

आपको यह सुनकर आनन्द होगा कि मेरी कई कहानियों के जापानी भाषा में अनुवाद प्रकाशित हुए हैं और वहाँ की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। जापानी जनता ने उनका वही सम्मान किया है जो टालस्टाय और चेखव की कहानियों का करते हैं। पत्रों में खूब चर्चा रही। मेरे पास जो पत्र आया है उसमें लिखा है—your stories were the sensation in the month of June.

आशा है, आप सानन्द हैं।

भवदीय
धनपत राय

२३०

बम्बई
११ जनवरी १९३५

प्रिय मधुकर

वन्दे।

आपका पत्र मुद्दत दराज के बाद मिला। बड़ी खुशी हुई। मैं मद्रास गया था। हिन्दी प्रचार सभा का दीक्षान्त भाषण था। वहाँ से बंगलोर, मैसूर की सैर करता हुआ कल तीसरे पहर यहाँ पहुँचा। इसलिये उत्तर में देर हुई। यह सफाई दे चुकने पर विलम्ब का अपराध तो आप न लगायेंगे।

बालक का भारतेन्दु अंक निकल रहा है। अच्छी बात है। वर्मा जी हंस का भारतेन्दु अंक निकालने का प्रस्ताव कर रहे हैं। देखिए क्या होता है।

बालकों के लिए मेरा यही संदेश है कि हमारा घर ही हमें मनुष्यता सिखाने की सबसे बड़ी पाठशाला है। स्नेह और त्याग और क्षमा और शालीनता की

भावनाओं के विकास के जितने सुन्दर अवसर घर में मिल जाते हैं उतने और कहीं नहीं मिल सकते। बालकों के सामने यही आदर्श होना चाहिए कि वे अपने घरों को स्वर्ग बना दें अपने प्रेम से विनय से, सद्व्यवहार से। इसी पाठशाला में कामयाब होकर वे संसार के विशाल क्षेत्र में यश और आत्म-संतोष प्राप्त करेंगे।

आशा है आप सपरिवार सानन्द हैं।

प्रेमचंद

२३१

सरस्वती सदन
दादर, बम्बई १४
२१ जनवरी १९३५

प्रिय बंधुवर

वंदे।

मेरी दो तस्वीरें खिची हैं। एक तो बम्बई में दूसरी मैसूर में। एक आपके पास भेजूँगा। मँगवा रहा हूँ।

बालक बड़े शौक से पढ़ूँगा और हंस में पीठ ठोकूँगा।

मेरा भाषण आया तो है लेकिन आप हंस में पढ़ियेगा। दो-एक दिन में हंस भी पहुँचेगा।

उग्र जी से मेरी मुलाकात कभी न हुई और ईश्वर करे न हो। जो आदमी माँ-बहन की गाली देता है उसे मैं इन्सान ही नहीं समझता। है किसी तरह अपना निबाह किये जा रहे हैं। उनका कोई सिनेरियो तो इधर नजर नहीं आया। मगर सुनता हूँ बुरा हाल है। मुझे तो यह लाइन पसन्द नहीं आई। तीन-चार महीने किसी तरह और कट जायें तो घर की राह लूँ।

हंस में क्यों कोई दो पेज का सिलसिला शुरू नहीं करते?

भवदीय
धनपत राय

सद्‌गुरुशरण अवस्थी

२३२

लखनऊ

२५ नवम्बर १९३१

प्रिय सद्‌गुरुशरण जी

कार्ड मिला। जरा पटना चला गया था। युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के एक उत्सव में बुलाया था।

इस लेख में बहुत से चित्र दरकार होंगे। खास-खास संस्थाओं के नाम व्यक्तियों के। मैं चाहता हूँ कम से कम पाँच चित्र तो दिये ही जायँ कौन-कौन से हों यह मैं छाँटकर लिखूँगा।

हंस का जनवरी का अंक 'आत्मकथांक' होगा। आप भी आप बीती कोई घटना या कोई impression या कोई अनुभव लिख भेजने की कृपा कीजिएगा। १५ दिसम्बर से ही मैटर छपने लगेगा। आपके पास पत्र तो कार्यालय से आयेगा ही पर मैं विशेषरूप से आग्रह कर रहा हूँ।

मेरी पुस्तकों में या तो उपन्यास हैं या गल्पों के संग्रह।

उपन्यास मेरे यह हैं—

१) गबन २) प्रतिज्ञा ३) कायाकल्प

गल्प संग्रह यह हैं—

१) प्रेम प्रतिमा २) प्रेम-द्वादशी ३) प्रेम-तीर्थ ४) पाँच फूल।

इनका प्रकाशक मैं खुद हूँ। प्रेम-द्वादशी तो रह चुकी। अब यदि प्रेम-तीर्थ आ जाय तो मुझे कुछ लाभ हो सकता है। आपके पास इसकी कापी भिजवाऊँ? इस विषय में जो आज्ञा हो वह बतलाइए तो वह कार्रवाई करूँ। आपके पास तो प्रति भेज ही रहा हूँ। इस संग्रह में ऐसी कोई कहानी नहीं है जो आपत्तिजनक हो।

भवदीय

धनपतराय

२३३

लखनऊ
१६ मार्च १९३२

प्रिय सद्गुरुशरण जी

वंदे।

कृपापत्र। धन्यवाद।

आपके पत्र से यह जानकर हर्ष हुआ कि मेरी कोई किताब स्वीकृत हुई। लेकिन यह नहीं मालूम कौन-सी किताब? बाबू रघुपति सहाय ने भी संशयवाचक शब्दों में पाँच फूल की स्वीकृति का समाचार लिखा था। यहाँ महाशय ओंकार सिंह ने कहा 'सप्त सुमन' हुआ। वास्तव में कौन किताब हुई यह आपने भी लिखने की कृपा न की। इंटर के लिए तो मेरी कोई किताब न हुई होगी। शास्त्री के उठने का मुझे खेद नहीं है। वह तीन साल चली। अब दूसरी पुस्तक के लिए स्थान मिलना ही चाहिए।

मैंने पं० नन्ददुलारे जी के लेख का जवाब 'हंस' में दे दिया। छप भी गया। २ तक आ भी जायगा। साहित्य-समाज पर ऐसे आघात का सहन न किया जा सके इस अहंकार की कोई हद है। मुझे आशा है मेरा जवाब पढ़कर आप प्रसन्न होंगे।

मैं अप्रैल के अंत तक यहीं रहूँगा फिर काशी चला जाऊँगा और ग्राम्य-निवास के साथ कुछ लिखता रहूँगा। 'हंस' अभी घाटे में है उसे स्थायी बनाने का उद्योग करूँगा। अभी तो वह मेरी पुस्तकों की बिक्री भी खाये जाता है।

आप लखनऊ कब तक आ रहे हैं?

भवदीय
धनपतराय

२३४

लखनऊ
१८ मार्च १९३२

प्रिय सद्गुरुशरण जी

वंदे।

कार्ड मिला। मेरी दो पुस्तकें स्वीकृत हुईं। यह बड़े हर्ष की बात है। 'सप्त सुमन' स्वीकार हुआ तो अच्छा ही है। इसमें परिवर्तन की आवश्यकता नहीं।

आपकी कहानी मैंने मंगवाकर पढ़ी और भेज दी। कहानी वर्णनात्मक हो गयी। सब कुछ आपने ही कहा पात्रों को कुछ कहने का अवसर ही न मिला। जिस कहानी में पात्रों के संभाषण से प्लाट चलता है वही अधिक रोचक होती है। कहानी कुछ लम्बी भी थी। कहीं-कहीं मैंने परिवर्तन कर दिया है। यह प्लाट मैंने Justice Lindsay की किताब में देखा था लेकिन मिल न सका। इसके बाद आप जो कहानी लिखें उसमें बातचीत अधिक और कथा कम रखने की चेष्टा कीजिएगा।

आपके क्लास में यदि साहित्यिक रुचि के छात्र हों तो उन्हें कुछ लिखने की प्रेरणा करते रहिए। युवक कभी-कभी सुन्दर गल्प लिख जाते हैं, जो हम लोगों से नहीं बन पड़ती। हमारी रीत अभ्यास में है। नवीनता और विचित्रता तो उनके साथ है।

शेष कुशल है।

भवदीय

धनपतराय

२३५

हंस कार्यालय बनारस कैंट

१५ दिसम्बर १९३५

प्रिय सद्गुरुशरण जी

आशा है आप प्रसन्न हैं। उन पुस्तकों की आलोचना आपने अभी तक भेजने की कृपा नहीं की। मिश्र जी का तकाजा है और काव्यांग कौमुदी की आलोचना भी इस जनवरी के अंक में जानी चाहिए। अब तो आपको म्युनिसिपल चुनाव से फुरसत मिल गयी होगी।

आपका आलोचना संबंधी लेख जनवरी अंक में जा रहा है।

भवदीय

धनपतराय

२३६

गणेशगंज, लखनऊ

प्रिय सद्गुरुशरण जी

वंदे।

मैं तो कांसी न जा सका। इस फोड़े ने बहुत तंग कर रखा है। फिर मैं

बोलना नहीं जानता साहित्य के विषय में नये विचार भी मेरे पास नहीं हैं। जिसका प्रतिपादन करने के लिए आता।

मैंने अपने पत्र में अपनी रचनाओं और उनके प्रकाशकों के नाम लिखे थे जो आपने पूछे थे फिर लिखता हूँ।

<u>पुस्तक</u>

१) सप्त सरोज सेवा सादी प्रेम-पूर्णिमा
   प्रेम-पच्चीसी सेवासदन प्रमाश्रम
२) रंगभूमि प्रम प्रसून कर्बला
३) मानसरोवर कथा (दो भाग) कायाकल्प
   प्रम-तीर्थ प्रेम-प्रतिमा गबन पांच फूल
   प्रतिज्ञा सप्त रत्न।
४) नवनिधि
५) निर्मला प्रम-प्रमोद
६) वरदान

<u>प्रकाशक</u>

हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता
गंगा पुस्तक माला लखनऊ

सरस्वती प्रेस काशी।

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बंबई
चांद कार्यालय प्रयाग
हिन्दी ग्रन्थ भंडार बम्बई

मेरी कहानियों का एक संग्रह सप्त सुमन है जो बनारस युनिवर्सिटी के दसवें ...म में था। उसकी एक प्रति और प्रेमतीर्थ की एक प्रति मैंने आपके पास भेजने ...कहा है। शायद उन्होंने भेजा हो।
...शेष कुशल।

भवदीय
धनपत राय

इन्द्रनाथ मदान

२३७

एस्प्लेनेड रोड, बम्बई
७ सितम्बर १९३४

प्रिय इन्द्रनाथ जी

अब मैं आपके प्रश्नों पर आता हूँ।

१) अपने घर की मेरी बचपन की स्मृतियाँ बिलकुल साधारण हैं न बहुत सुखी न बहुत उदास। मैं आठ साल का था तभी मेरी माँ नहीं रही। उसके पहले की मेरी स्मृतियाँ बहुत धुँधली हैं, बस मैं बैठा अपनी बीमार माँ को देखता रहता था जो उतनी ही मुहब्बती और मौका पड़ने पर उतनी ही कठोर थी जितनी कि सब अच्छी माँएं होती हैं।

२) मैंने उर्दू साप्ताहिकों में और फिर मासिकों में लिखना शुरू किया। लिखना मेरे लिए बस एक शौक की चीज थी। मुझे सपने में भी खयाल न था कि मैं आखिरकार एक दिन लेखक बनूँगा। मैं सरकारी मुलाजिम था और अपनी छुट्टी के वक्त लिखा करता था। उपन्यासों के लिए मेरे अन्दर एक न बुझनेवाली भूख थी। जो कुछ मेरे हाथ लगता मैं चट कर जाता उसमें कोई भले-बुरे का चुनाव करने की तमीज मेरे अन्दर न थी। मेरा पहला लेख सन् १९०१ में और मेरी पहली किताब सन् १९ १ में छपी। इस साहित्य-रचना से मुझे अपने अहंकार की तुष्टि के अलावा और कुछ न मिलता था। पहले मैं समसामयिक घटनाओं पर लिखता था फिर अलग वर्तमान और अतीत वीरों के चरित्र के लेख। १९०७ में मैं उर्दू में कहानियाँ लिखना शुरू किया और सफलता से प्रोत्साहित होकर लिखता रहा। १९१४ में दूसरों ने मेरी कहानियों के अनुवाद किये और वह हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। फिर मैंने हिन्दी सीखी और सरस्वती में लिखने लगा। उसके बाद मेरा 'सेवासदन' निकला और मैंने अपनी नौकरी छोड़ दी और स्वतन्त्र साहित्यिक जीवन बिताने लगा।

३) अभी मेरा किसी से कोई प्रणय नहीं हुआ। जिन्दगी बहुत उलझनें वाली थी और रोटी कमाना इतना कठिन काम कि उसमें रोमांस के लिए अवसर

न थी। कुछ बहुत छोटे-छोटे मामले थे जैसे कि सब के होते हैं, पर मैं उन्हें प्रेम नहीं कह सकता।

४) स्त्री का मेरा आदर्श त्याग है, सेवा है, पवित्रता है, सब कुछ एक में मिला-जुला — त्याग जिसका अंत नहीं सेवा सदैव सहर्ष और पवित्रता ऐसी कि कोई कभी उस पर उंगली न उठा सके।

५) मेरे दाम्पत्य जीवन में रोमांस जैसी कोई चीज नहीं है। बिलकुल साधारण ढंग की चीज है। मेरी पहली स्त्री का देहांत १९०४ में हुआ वह एक अभागी स्त्री थी तनिक भी सुदर्शन नहीं और यद्यपि मैं उससे सन्तुष्ट नहीं था तो भी बिना शिकवा-शिकायत निभाये चल रहा था जैसे कि सब पुराने पति करते हैं। वह जब मर गयी तो मैंने एक बाल विधवा से विवाह किया और उसके साथ काफी सुखी हूँ। उसमें कुछ साहित्यिक अभिरुचि आ गयी है और वह कभी-कभी कहानियाँ लिखती है। वह एक निडर साहसी समझौता न करनेवाली सीधी सच्ची स्त्री है दोष की सीमा तक आशिरवादीन और अत्यधिक भावुक। वह असहयोग आन्दोलन में शरीक हुई और जेल गयी। मैं उसके साथ सुखी हूँ ऐसी कोई चीज उससे नहीं मांगता जो वह नहीं दे सकती। टूट गये काम पर आप उसे मुका नहीं सकते।

६)—'जिन्दगी मेरे लिए हमेशा काम रही है, काम काम काम। मैं जब सरकारी नौकरी में था तब भी अपना सारा समय साहित्य को देता था। मुझे काम करने में मजा आता है। पत्नी के पास आते हैं जब पैसे की समस्या आ खड़ी होती है वर्ना मैं अपने भाग्य से बहुत संतुष्ट हूँ अपने प्राप्य से अधिक मुझे मिला। आर्थिक दृष्टि से मैं असफल हूँ, व्यवसाय मैं नहीं जानता और तंगी से मुझे कभी छुटकारा नहीं मिलता। मैं कभी पत्रकार नहीं रहा लेकिन परिस्थितियों ने मुझे जबरन बनाया और जो कुछ मैंने साहित्य में कमाया था जो कि बहुत नहीं था सब पत्रकारिता में गँवा दिया।

७) कथानक मैं इस दृष्टि से चुनता हूँ कि मानव चरित्र में जो कुछ सुन्दर है, मर्दाना है वह उभरकर सामने आ जाय। यह एक उलझी हुई प्रक्रिया है, कभी इसकी प्रेरणा किसी व्यक्ति से मिलती है या कभी किसी घटना से या किसी स्वप्न से लेकिन मेरे लिए जरूरी है कि मेरी कहानी का कोई मनोवैज्ञानिक आधार हो। मैं मित्रों के सुझावों का सदैव सहर्ष स्वागत करता हूँ।

८) मेरे अधिकांश चरित्र वास्तविक जीवन से लिये गये हैं, यो उन्हें काफी अच्छी तरह पर्दे में ढंक दिया गया है। जब तक किसी चरित्र का कुछ आधार वास्तविकता में न हो तब तक वह छाया-सा अनिश्चित-सा रहता है और उसमें

विश्वास पैदा करने की ताकत नहीं पाती।

९) मैं रोमें रोलाँ की तरह नियमित रूप से काम करने में विश्वास करता हूँ।

१०) हाँ मेरा गोदान जल्दी ही प्रेस में जा रहा है। वह लगभग छः सौ पृष्ठों का होगा।

आपका
प्रेमचंद

२३८

१६ब, सरस्वती सदन, दादर बंबई—१४
२६ दिसंबर १९३४

प्रिय श्री इन्द्रनाथ

आपका १९ तारीख का खत पाकर खुशी हुई। आपके सवालों के जवाब उसी क्रम से नीचे देने की कोशिश करता हूँ —

१) मेरी राय में 'रंगभूमि' मेरी कृतियों में सबसे अच्छी है।

२) मेरे हर उपन्यास में एक आदर्श चरित्र है जिसमें मानव दुर्बलताएँ भी हैं और गुण भी पर मुख्यतः आदर्श। प्रेमाश्रम में ज्ञानशंकर है, रंगभूमि में सूरदास है। उसी तरह कायाकल्प में चक्रधर है कर्मभूमि में अमरकान्त है।

३) मेरी कहानियों की कुल संख्या लगभग ढाई सौ है। अप्रकाशित कहानियाँ मेरे पास एक भी नहीं हैं।

४) हाँ मेरे ऊपर टाल्सटाय विक्टर ह्यूगो और रोमां रोलाँ का असर पड़ा है। जहाँ तक कहानियों की बात है शुरू में उनकी प्रेरणा मुझे डाक्टर रवीन्द्रनाथ से मिली थी। पीछे मैंने स्वयं अपनी शैली का विकास कर लिया।

५) मैंने कभी संजीदगी से नाटक लिखने की कोशिश नहीं की। मैंने एक दो कथानकों की कल्पना की जो कि मेरे विचार में नाटक के लिए अधिक उपयोगी हो सकते थे। नाटक का महत्त्व समाप्त हो जाता है अगर उसे खेला न जाय। हिन्दुस्तान के पास रंगमंच नहीं है विशेषतः हिन्दी और उर्दू के पास। रंगमंच के नाम पर पुरानी पारसी स्टेज है जिसके नाम से मुझे घृणा होती है। इसके अलावा मैं कभी नाटक की टेकनीक और रंगमंच की कला के सम्पर्क में नहीं आया। इसलिए मेरे नाटक सिर्फ पढ़े जाने के लिए थे। क्यों न मैं अपने उपन्यासों में ही लिखता रहूँ जिनमें मुझे नाटक से कहीं ज्यादा गुंजाइश अपने चरित्रों के उद्घाटन के लिए मिलती है। इसीलिए मैंने अपने विचारों के वाहन के रूप में

उपन्यास को पसन्द किया है। अब भी मुझे उम्मीद है कि एक-दो नाटक लिखूँगा। जहाँ तक आर्थिक सफलता की बात है, हिन्दी या उर्दू में यह किस्म कृति से नहीं मिलती। आप बदनाम हो सकते हैं पर आर्थिक रूप से स्वतन्त्र किसी प्रकार नहीं। हमारी जनता में किताब खरीदने की कमजोरी नहीं है। एक तरह की मुर्दनी उदासीनता, सुस्ती और बौद्धिक आलस्य छाया हुआ है।

६) सिनेमा साहित्यिक व्यक्ति के लिए कोई जगह नहीं है। मैं इस लाइन में यह सोचकर आया कि इसमें आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो सकने का कुछ मौका था लेकिन अब मैं देखता हूँ कि मैं धोखे में था और मैं वापस अपने साहित्य को लौटा जा रहा हूँ। सच तो यह है कि मैंने लिखना कभी बन्द नहीं किया। उसको मैं अपने जीवन का लक्ष्य समझता हूँ। सिनेमा मेरे लिए वैसी ही चीज है जैसी कि वकालत होती। अन्तर इतना ही है कि यह अधिक स्वस्थ है।

७) मैं कभी जेल नहीं गया। मैं कर्मक्षेत्र का आदमी नहीं हूँ। मेरी रचनाओं ने कई बार सत्ता का आक्रोश जगाया है। मेरी एक-दो किताबें जब्त हुई थीं।

८) मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ। हमारा उद्देश्य जनमत को शिक्षित करना है। क्रान्ति ज्यादा समझदार उपायों की असफलता का नाम है। मेरा आदर्श समाज वह है जिसमें सबको समान अवसर मिले। विकास को छोड़कर और किस जरिये से हम इस मंजिल पर पहुँच सकते हैं। लोगों का चरित्र ही निर्णायक तत्त्व है। कोई समाज-व्यवस्था नहीं पनप सकती जब तक कि व्यक्तिशः उन्नत न हों। कहना सन्देहास्पद है कि क्रान्ति से हम कहाँ पहुँचेंगे। यह हो सकता है कि हम उसके जरिये और भी बुरी डिक्टेटरशिप पर पहुँचें जिसमें रंचमात्र व्यक्ति-स्वाधीनता न हो। मैं रंग-ढंग सब बदल देना चाहता हूँ पर ध्वंस नहीं करना चाहता। अगर मुझमें पूर्व ज्ञान की शक्ति होती और मैं समझता कि ध्वंस के जरिये हम स्वर्गलोक में पहुँच जायेंगे तो मैं ध्वंस करने में भी आगा-पीछा न करता।

९) सर्वहारा वर्ग में तलाक एक आम चीज है। तथाकथित ऊँचे वर्गों में ही इस समस्या ने ऐसा गम्भीर रूप ले लिया है। अपने अच्छे-से-अच्छे रूप में विवाह एक प्रकार का समझौता और समर्पण है। अगर कोई दम्पति सुखी होना चाहते हैं तो उन्हें एक-दूसरे का लिहाज करने के लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसे भी लोग हैं जो कि अच्छी-से-अच्छी परिस्थितियों में भी कभी सुखी नहीं हो सकते। योरप और अमरिका में तलाक अनहोनी चीज नहीं है। बावजूद सारी कोर्टशिप और आजादी के साथ एक-दूसरे से मिलने-जुलने के। पति-पत्नी में से किसी एक को झुकने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा। मैं यह मानने से इनकार

विश्वास पैदा करने की ताक़त नहीं आती।

९) मैं रोम रोलाँ की तरह नियमित क्रम से काम करने में विश्वास करता हूँ।

१०) हाँ, मेरा गोदान जल्दी ही प्रेस में जा रहा है। यह लगभग छः सौ पृष्ठों का होगा।

आपका
प्रेमचंद

२३८

१९८, सरस्वती सदन, दादर बंबई—१४
२९ दिसंबर १९३४

प्रिय श्री इन्द्रनाथ

आपका १९ तारीख का खत पाकर खुशी हुई। आपके सवालों के जवाब उसी क्रम से नीचे देने की कोशिश करता हूँ —

१) मेरी राय में 'रंगभूमि' मेरी कृतियों में सबसे अच्छी है।

२) मेरे हर उपन्यास में एक आदर्श चरित्र है जिसमें मानव दुर्बलताएँ भी हैं और गुण भी पर मूलतः आदर्श। प्रेमाश्रम में ज्ञानशंकर है, रंगभूमि में सूरदास है। उसी तरह कायाकल्प में चक्रधर है कर्मभूमि में अमरकान्त है।

३) मेरी कहानियों की कुल संख्या लगभग ढाई सौ है। अप्रकाशित कहानियाँ मेरे पास एक भी नहीं है।

४) हाँ मेरे ऊपर टाल्सटाय, विक्टर ह्यूगो और रोमां रोलाँ का असर पड़ा है। जहाँ तक कहानियों की बात है, शुरू में उनकी प्रेरणा मुझे डाक्टर रवीन्द्रनाथ से मिली थी। पीछे मैंने स्वयं अपनी शैली का विकास कर लिया।

५) मैंने कभी संजीदगी से नाटक लिखने की कोशिश नहीं की। मैंने एक दो कथानकों की कल्पना की थी कि मेरे विचार में नाटक के लिए अधिक उपयोगी हो सकते थे। नाटक का महत्व समाप्त हो जाता है अगर उसे खेला न जाए। हिन्दुस्तान के पास रंगमंच नहीं है, विशेषतः हिन्दी और उर्दू के पास। रंगमंच के नाम पर मुर्दा पारसी स्टेज है, जिसके नाम से अधिक शोर होता है। इसके अलावा मैं कभी नाटक की टेकनीक और रंगमंच की कला के सम्पर्क में नहीं आया। इसलिए मेरे नाटक सिर्फ पढ़ जाने के लिए थे। क्यों न मैं अपने उपन्यासों से ही चिपटा रहूँ जिनमें मुझे नाटक से कहीं ज्यादा गुंजाइश अपने चरित्रों के उद्घाटन के लिए मिलती है। इसीलिए मैंने अपने विचारों के वाहन के रूप में

उपन्यास को पसन्द किया है। अब भी मुझे उम्मीद है कि एक-दो नाटक लिखूँगा। जहाँ तक आर्थिक सफलता की बात है, हिन्दी या उर्दू में यह चिड़िया ढूँढे से नहीं मिलती। आप बदनाम हो सकते हैं पर आर्थिक रूप से स्वतन्त्र किसी प्रकार नहीं। हमारी जनता में किताबें खरीदने की कमज़ोरी नहीं है। एक तरह की मुर्दनी उदासीनता सुस्ती और बौद्धिक आलस्य छाया हुआ है।

६) सिनेमा साहित्यिक व्यक्ति के लिए कोई जगह नहीं है। मैं इस लाइन में यह सोचकर आया कि इसमें आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो सकने का कुछ मौका था लेकिन अब मैं देखता हूँ कि मैं धोखे में था और मैं वापस अपने साहित्य को लौटा जा रहा हूँ। सच तो यह है कि मैंने लिखना कभी बन्द नहीं किया उसको मैं अपने जीवन का लक्ष्य समझता हूँ। सिनेमा मेरे लिए वैसी ही चीज़ है जैसी कि वकालत होती अन्तर इतना ही है कि यह अधिक स्वस्थ है।

७) मैं कभी जेल नहीं गया। मैं कर्मक्षेत्र का आदमी नहीं हूँ। मेरी रचनाओं ने कई बार सत्ता का आक्रोश जगाया है। मेरी एक-दो किताबें ज़ब्त हुई थीं।

८) मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ। हमारा उद्देश्य जनमत को शिक्षित करना है। क्रान्ति शान्त समझदार उपायों की असफलता का नाम है। मेरा आदर्श समाज वह है जिसमें सबको समान अवसर मिले। विकास को छोड़कर और किस ज़रिये से हम इस मंज़िल पर पहुँच सकते हैं। लोगों का चरित्र ही निर्णायक तत्त्व है। कोई समाज-व्यवस्था नहीं पनप सकती जब तक कि हम व्यक्तिशः उन्नत न हों। कहना सन्देहास्पद है कि क्रान्ति से हम कहाँ पहुँचेंगे। यह हो सकता है कि हम उसके ज़रिये और भी बुरी डिक्टेटरशिप पर पहुँचें जिसमें रंचमात्र व्यक्ति-स्वाधीनता न हो। मैं रंग-ढंग सब बदल देना चाहता हूँ पर ध्वंस नहीं करना चाहता। अगर मुझमें पूर्ण ज्ञान की शक्ति होती और मैं समझता कि ध्वंस के ज़रिये हम स्वर्गलोक में पहुँच जायेंगे तो मैं ध्वंस करने में भी आगा-पीछा न करता।

९) व्यवहार रूप में तलाक़ एक आम चीज़ है। तथाकथित ऊँचे वर्गों में ही इस समस्या ने ऐसा गम्भीर रूप ले लिया है। अपने अच्छे-से-अच्छे रूप में विवाह एक प्रकार का समझौता और समर्पण है। अगर कोई दम्पति सुखी होना चाहते हैं तो उन्हें एक-दूसरे का लिहाज़ करने के लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसे भी लोग हैं जो कि अच्छी-से-अच्छी परिस्थितियों में भी कभी सुखी नहीं हो सकते। योरप और अमेरिका में तलाक़ अनहोनी चीज़ नहीं है। बावजूद सारी कोर्टशिप और आज़ादी के साथ एक-दूसरे से मिलने जुलने के। पति-पत्नी में से किसी एक को झुकने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा। मैं यह मानने से इनकार

करता हूँ कि केवल पुरुष ही दोषी है। ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ स्त्रियाँ झगड़ा पैदा करती हैं तरह-तरह की शिकायतों की कल्पना कर लेती हैं। जब यह निश्चय नहीं है कि तलाक से हमारे वैवाहिक जीवन की बुराइयों का इलाज हो जायगा तो ऐसी हालत में मैं उस चीज को समाज पर लादना नहीं चाहता। यह ठीक है कि ऐसे भी केस हैं जहाँ तलाक अनिवार्य हो जाता है। मगर 'मेल न बैठना' मेरी समझ में नकचढ़ेपन के अलावा और कुछ नहीं। तलाक जिसमें बेचारी पत्नी के लिए कोई व्यवस्था नहीं है—यह माँग केवल रुग्ण व्यक्तिवाद की ओर से आ सकती है। समता पर आधारित समाज में इस चीज के लिए कोई जगह नहीं है।

१०) पहले मैं एक परम सत्ता में विश्वास करता था विचारों के निष्कर्ष के रूप में नहीं केवल एक चले आते हुए रूढ़िवादी विश्वास के नाते। वह विश्वास अब खंडित हो रहा है। निस्सन्देह विश्व के पीछे कोई हाथ है लेकिन मैं नहीं समझता कि उसको मानव व्यापारों से कुछ लेना-देना है। उसी तरह जैसे उसे चींटियों या मक्खियों या मच्छरों के झमेलों से कुछ लेना-देना नहीं। हमने अपने आप को जो महत्व दे रखा है उसके पीछे कोई प्रमाण नहीं है।

मुझे उम्मीद है, कि फिलहाल इतना काफी होगा। मैं अंग्रेजी का पंडित नहीं हूँ इसलिए मुमकिन है कि मैं जो कुछ कहना चाहता था उसे व्यक्त न कर सका होऊँ लेकिन उस पर मेरा कोई वश नहीं है।

आपका
प्रेमचंद

मूल पत्र अंग्रेजी में है

२३९

गणेशगंज, लखनऊ
२१ फरवरी १९३२

प्रिय बन्धु

आशीर्वाद। माफ़ करना तुम्हारे दो खत आये। मिसरी की डली मैंने पढ़ा था और बहुत पसन्द किया था। तुमने उर्दू का एक छोटा-सा चुटकुला भेजा था मैं उसे हिन्दी में दे रहा हूँ मगर हिन्दी में जो चीज़ें तुमने भेजी हैं उनमें अभी ज़बान की बहुत खामी है। हिन्दी के पत्र देखते रहोगे तो आप छः महीने में ये त्रुटियाँ दूर हो जायेंगी। कोई कहानी हमारे लिए हिन्दी में लिखो मगर कहानी हो फ़र्ज़ी नहीं या मगर किसी महान् व्यक्ति का जीवन-चरित्र हो तो उससे भी काम चल सकता है, मगर मेरी सलाह तो यही है कि अभी बहुत ज्यादा लिखने के मुकाबले में लिटरेचर और फ़िलासफ़ी का अध्ययन करते जाओ क्योंकि इस वक्त का अध्ययन ज़िन्दगी भर के लिए उपयोगी होगा।

और तो सब ख़ैरियत है।

शुभैषी
धनपतराय

२४०

फतेहगंज, लखनऊ
२१ मार्च १९३२

प्रिय उपेन्द्र

आशीर्वाद।

कई दिन हुए, तुम्हारी हिन्दी कहानी मिल गयी। इसके पहले 'फूल का संग्राम' उर्दू की चीज़ मिली थी। मैं इस हिन्दी कहानी में ज़रूरी सुधार करके हंस में दे रहा हूँ लेकिन तुमने मरीज़ को बिना काफ़ी कारणों के शादी करने पर आमादा कर दिया। वह शादी से बेज़ार है, विवाहित जीवन का दृश्य देखकर उसकी तबीयत और उदासीन हो जाती है, फिर यकायक वह शादी करने पर

करता हूँ कि केवल पुरुष ही दोषी है। ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ स्त्रियाँ झगड़ा पैदा करती हैं तरह-तरह की शिकायतों की कल्पना कर लेती हैं। अब यह निश्चय नहीं है कि तलाक से हमारे वैवाहिक जीवन की बुराइयों का इलाज हो जायगा तो ऐसी हालत में मैं उस चीज को समाज पर लादना नहीं चाहता। यह ठीक है कि ऐसे भी केस हैं जहाँ तलाक अनिवार्य हो जाता है। मगर 'मेल में बैठना' मेरी समझ में मक्खनबाजी के अलावा और कुछ नहीं। तलाक जिसमें बेचारी पत्नी के लिए कोई व्यवस्था नहीं है—यह माँग केवल उग्र व्यक्तिवाद की ओर से आ सकती है। समता पर आधारित समाज में इस चीज के लिए कोई जगह नहीं है।

१०) पहले मैं एक परम सत्ता में विश्वास करता था विचारों के निष्कर्ष के रूप में नहीं केवल एक चले आते हुए रूढ़िवादी विश्वास के नाते। वह विश्वास अब खंडित हो रहा है। निस्सन्देह विश्व के पीछे कोई हाथ है लेकिन मैं नहीं समझता कि उसको मानव व्यापारों से कुछ लेना-देना है। उसी तरह जैसे उसे चीटियों या मक्खियों या मच्छरों के मामलों से कुछ लेना-देना नहीं। हमने अपने आप को जो महत्व दे रक्खा है उसके पीछे कोई प्रमाण नहीं है।

मुझे उम्मीद है कि फिलहाल इतना काफ़ी होगा। मैं अंग्रेजी का पंडित नहीं हूँ इसलिए मुमकिन है कि मैं जो कुछ कहना चाहता था उसे व्यक्त न कर सका होऊँ लेकिन उस पर मेरा कोई बस नहीं है।

आपका
प्रेमचंद

मूल पत्र अंग्रेजी में है

उपेन्द्रनाथ अश्क

२३९

गणेशगंज, लखनऊ
२१ फरवरी १९३२

प्रिय बन्धु

आशीर्वाद। माफ करना तुम्हारे दो खत आये। 'मिस्त्री की बीबी' मैंने पढ़ा था और बहुत पसंद किया था। तुमने उर्दू का एक छोटा-सा मजमूआ भेजा था मैं उसे हिन्दी में दे रहा हूँ मगर हिन्दी में जो चीजें तुमने भेजी हैं उनमें अभी जबान की बहुत खामी है। हिन्दी के पत्र देखते रहोगे तो साल छः महीने में ये त्रुटियाँ दूर हो जायेंगी। कोई कहानी हमारे लिए हिन्दी में लिखो मगर कहानी हो फैन्सी नहीं या मगर किसी महान् व्यक्ति का जीवन चरित्र हो तो उससे भी काम चल सकता है मगर मेरी सलाह तो यही है कि अभी बहुत ज्यादा लिखने के मुकाबले में लिटरेचर और फिलासफी का अध्ययन करते जाओ क्योंकि इस वक्त का अध्ययन जिन्दगी भर के लिए उपयोगी होगा।

और तो सब खैरियत है।

शुभैषी
धनपतराय

२४०

गणेशगंज, लखनऊ
२१ मार्च १९३२

डियर उपेंद्र

आशीर्वाद।

कई दिन हुए, तुम्हारी हिन्दी कहानी मिल गयी। इसके पहले 'फूल का अंजाम' उर्दू की चीज मिली थी। मैं इस हिन्दी कहानी में जरूरी सुधार करके हंस में दे रहा हूँ लेकिन तुमने नरेंद्र को बिना काफी कारणों के शादी करने पर आमादा कर दिया। वह शादी से बेजार है, विवाहित जीवन का दृश्य देखकर उसकी तबीयत और उदासीन हो जाती है फिर यकायक वह शादी करने पर

तैयार हो जाता है। महज इसलिए कि उसकी मँगनी हो गयी है। शादी के बाद का जीवन ज़रूर सुंदर है लेकिन यह कौन कह सकता है कि जिन मियाँ-बीबी को उसने सड़ते देखा था उनका जीवन भी यौवन की पहली मधुऋतु में इतना ही आकर्षक न रहा होगा? तुम्हें कोई ऐसा सीन दिखाना चाहिए था जिससे इंसान को अपना अकेलापन असह्य हो जाता या मियाँ-बीबी में जंग होने पर भी उनमें कुछ ऐसा चारित्रिक सौंदर्य होता जो इंसान को शादी की ओर झुकने पर विवश करता। मौजूदा हालत में किस्सा Convincing नहीं है। 'फूल का अंजाम' इससे अच्छा है, उसमें एक नुक्ता है, एक चिरंतन सत्य है लेकिन उर्दू लेकर मैं क्या करूँ।

पढ़ने के लिए लाइब्रेरी में से साइकालोजी पर कोई किताब ले लो स्कूली या कोर्स की किताब नहीं। अभी एक किताब निकली है The Aspects of a Novel इस विषय पर अच्छी किताब है। मतलब सिर्फ यह है कि इंसान उदार विचारों वाला हो जाय उसकी संवेदनाएँ व्यापक हो जायें। डाक्टर टैगोर के साहित्यिक और दार्शनिक निबंध बहुत ही आला दर्जे के हैं रोमाँ रोलाँ का 'विवेकानन्द' ज़रूर पढ़ो उनकी 'गांधी' भी पढ़ने के काबिल है मार्ले के साहित्यिक जीवन चरित लाजवाब हैं डाक्टर राधाकृष्णन् की दर्शन संबंधी किताबें टालस्टाय का What is Art वगैरह किताबें ज़रूर देखनी चाहिए।

अख्तर साहब से मेरा सलाम कहना। मैं एक हिन्दी किस्सा लिख रहा हूँ वह आपके लिए वक्फ है।

तुम्हारा खैरअन्देश
धनपतराय

२४२

सरस्वती प्रेस काशी
१४ जनवरी १९३४

प्रिय उपेंद्रनाथ जी

आशीर्वाद। एक मुद्दत के बाद तुम्हारा खत मिला जिसे पढ़कर खुशी चिन्ता पैदा हो गयी। लेखकों के लिए यह बड़ी आज़माइश का ज़माना है आमतौर अब सेहत खराब हो जाये। हिन्दी में अखबारों की हालत उर्दू से बेहतर नहीं है। मैं खुद दो अखबार निकाल रहा हूँ और दोनों में बराबर घाटा आ रहा है यहाँ तक कि अब जी बेज़ार हो गया है और चाहता हूँ कि किसी तरह खूबसूरती से नजात पा जाऊँ। आपको मैं इसके सिवा और क्या मशविरा दे सकता हूँ कि कम-से

अफ़साने हिन्दी में निकल जाने दीजिये इसके बाद गालिबन् आप से एडिटर साहिबान अफ़साने माँगने लगेंगे और शायद कुछ मिलने भी लगें मगर हालत निहायत हौसलापस्त करनेवाली है। बुकसेलरों का तजुर्बा आपको जैसा कड़वा हुआ उससे ज्यादा कड़वा मुझे हो रहा है। वह तीरथराम मेरे डेढ़ सौ रुपये दबाये बैठा है पचास रुपये महज़ अखबारात के उसके ज़िम्मे निकलते हैं मगर देने का नाम नहीं लेता। एक दूसरा बुकसेलर लाहौर ही म मेरे करीब सात सौ रुपये हज़म करना चाहता है। अखबारात का यह हाल है और बुकसेलरों का यह हाल बेचारा लेखक क्या करे। मैंने तुम्हारा अफ़साना 'हंस' में दिया है कहीं-कहीं ज़बान की इसलाह करनी पड़ी मगर दस-पाँच अफ़साने निकलें बगर किताब के निकलने में भी दिक्कत होगी। और क्या लिखूँ मुझसे तुम्हारी जो कुछ इमदाद हो सकती है उसके लिए हाज़िर हूँ।

शुभाकांक्षी
प्रेमचंद

२४२

सरस्वती प्रेस, बनारस
१ जुलाई १९३६

प्रिय उपेन्द्रनाथ

दुआ। तुम ताज्जुब कर रहे होगे कि मैंने तुम्हारे खत का जवाब क्यों नहीं दिया। बात यह है कि मैं पंद्रह दिन से बीमार बिस्तर हो रहा हूँ। हाज़मे की शिकायत है जिगर और तहाल की खराबी कोई काम नहीं करता। तुम्हारी परेशानियों का किस्सा पढ़कर रंज हुआ। इस महाजनी दौर में पैसे का न होना अज़ाब है, ज़िन्दगी खराब हो जाती है लेकिन इसके साथ यह भी न भूलना कि ग़रीबी और मुसीबतों का एक अख़लाक़ी पहलू भी है इन्हीं आज़माइशों में इन्सान इन्सान बनता है उसमें खुद-एतमादी पैदा होती है।

हिन्दी में भी वही कैफ़ियत है जो उर्दू में। किताबें नहीं बिकतीं। पब्लिशर कोई नयी किताब छापते नहीं। क़लम पर ज़िन्दा रहना मुश्किल हो रहा है। बस किसी अखबार में जान देने के सिवा और कोई रास्ता नज़र नहीं आता। मगर आदमी का क़ाबू हो तो किसी देहात में जा बैठे। दो एक जानवर पाल ले कुछ खेती कर ले और ज़िन्दगी गाँववालों की ख़िदमत में गुज़ार दे। शहर में रहकर खासकर बड़े शहर में तो सेहत ज़िन्दगी सब कुछ तबाह हो जाती है। फ़िल हाल इतना ही। थक गया हूँ। अब लेटूँगा।

दुआगो
प्रेमचंद

भदत आनद कौसल्यायन

२४३

काशी

१४ फरवरी १९३६

प्रिय आनन्द जी

आपका नोट मिला। धन्यवाद। इसकी जरूरत थी। छापूँगा। हाँ सिंहल साहित्य के विषय में अगर कोई लेख भेज सकें तो बड़ा अच्छा हो। उसे तो हम कुछ जानते ही नहीं। उसका कुछ आलोचनात्मक इतिहास ही हो तो कोई हर्ज नहीं।

अगर इंगलैण्ड जायें तो वहाँ से बौद्ध साहित्य पर एक अच्छा-सा लेख लिखें केवल उसके धर्म-साहित्य पर नहीं बल्कि बौद्धकालीन साहित्य पर। ऐसे लेख की बड़ी जरूरत है।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

आपका

प्रेमचंद

काशी

अगस्त १९३६

प्रिय आनन्द जी

क्या आप समझते हैं अंग्रेजी की गुलामी से भारतीय परिषद् मुक्त है? जब कांग्रेस की सारी लिखा-पढ़ी अंग्रेजी में होती है, तो भारतीय परिषद् तो उसी का बच्चा है। मन्त्री जी हिन्दी नहीं जानते मगर हिन्दी के भक्त अवश्य हैं। अगर आप ऐसे भक्तों को दबाएँगे तो वह भाग खड़े होंगे।

'हंस' सितम्बर से सस्ता साहित्य देहली से प्रकाशित होगा। मैंने उसके सम्पादन से इस्तीफा दे दिया है। मैं इधर एक महीने से बीमार हूँ।

अगर अच्छा हो गया तो यहाँ से अपना एक नया पत्र प्रगतिशील लेखक संघ की विचारधारा के अनुसार निकालूँगा।

मुझे आशा है, इस नयी योजना में मैं आपकी मदद पर भरोसा कर सकूँगा।

आपका

प्रेमचंद

विष्णु प्रभाकर

२४५

सरस्वती, प्रेस काशी
१० दिसंबर १९३२

प्रियवर

'मकुतोस्हार' नामक गल्प मिल गई थी। स्वरचित है। मैं चेष्टा करूँगा कि उसे जल्द प्रकाशित करूँ। कार्यालय में गल्पें बहुत आती हैं, इससे कितने ही मित्रों की रचनाएँ पड़ी रह जाती हैं।

भवदीय
प्रेमचंद

२४६

सरस्वती प्रेस काशी
१२ जनवरी १९३३

प्रियवर

आप के लेख और पत्र मिले। कविताओं में तो छंद भंग है और कहानी वर्णनात्मक हो गई है। यह तो गल्प न होकर गल्प का मुख्य प्लाट है। आप इसे गल्प के रूप में लिख भेजें। गल्प में संभाषण का भाग (अधिक) बयान कम होना चाहिए। डर है इसे न छाप सकूँगा।

हिस्सार में जागरण का प्रचार किसी मातबर एजेंट द्वारा करने की चेष्टा कीजिए।

भवदीय
प्रेमचंद

२४७

काशी
२१ अप्रैल १९३३

प्रियवर

धन्यवाद। आपके लेख छापना तो चाहता हूँ पर जिस रूप में वह है उस रूप में नहीं। चाहता हूँ कि कुछ बना कर छापूँ लेकिन बनाना समय चाहता है और समय का यहाँ बड़ा टोटा है। बहुत खोजता हूँ यही नहीं मिलता। ईश्वर की भाँति अदृश्य हो गया है। इतना ही समझ लीजिए कि अच्छी चीज पाकर सम्पादक तुरंत छापता है। विलम्ब नहीं करता। जब कोई चीज उसे नहीं जँचती तभी वह देर करता है। अच्छी चीजें इतनी ज्यादा नहीं आतीं कि उनको प्रतीक्षा करनी पड़े। और कहानी तो बड़ी मुश्किल से अच्छी मिलती है। बस और क्या लिखूँ।

सप्रेम
प्रेमचंद

ललिताशकर अग्निहोत्री

२४८

सरस्वती प्रेस, काशी
२६ अगस्त १९३२

प्रियवर,

Journalism पर बाबू रामानन्द चैटर्जी के विचार मिले। २६ अगस्त के जागरण में जायगा।

हाँ आप शान्तिनिकेतन के समाचार और अन्य विषय पर समय-समय पर लिखते रहें। मैं सहर्ष छापूँगा। पर जो कुछ लिखें काफी छानबीन के बाद।

शुभाकांक्षी
प्रेमचंद

२४९

सरस्वती प्रेस, काशी
९ सितंबर १९३२

प्रियवर,

धन्यवाद।

आपके यहाँ से लेख का "अनुवाद" न देर हो जाने के कारण मैंने उसे 'आज' के मुंशी कालिका प्रसाद से करा लिया। सुन्दर अनुवाद हुआ है। वह हंस का पहला लेख था और उसका आज को प्रेस में जाना जरूरी था नहीं हमारे लिए बिना किसी सहकारी सम्पादक के अकेले १२ पृष्ठ की पत्रिका निकालना कठिन हो जाता।

आप Quarterly भेजवा दें। मैं उसकी बड़े शौक से आलोचना करूँगा।

भवदीय
प्रेमचंद

हंस कार्यालय बनारस
१४ अक्टूबर १९३५

प्रिय ललिताशंकर जी

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। मैंने श्री नेहरू जी का लेख प्रताप में देखा था पर उनका पता मालूम न होने के कारण उनके पास हंस न भेज सका था। आपके पत्र से पता मालूम हो गया और हंस उनके पास भेज दिया गया। पैम्फलेट आपने भेज दिये थे। मैंने भी भेजवा दिये।

हंस म मैंने विश्वभारती की आलोचना कर दी है। आपने देखी होगी।

श्री चंदोला जी का अनुवाद वापस भेज रहा हूँ। कई दिन देर से पहुँचा नहीं अवश्य छापता। अनुवाद मुझे बहुत अच्छा लगा। कालिकाप्रसाद जी ने शाब्दिक अनुवाद किया है, चंदोला जी ने भावानुवाद किया है। मैंने दोनों अनुवादों को मिलाया। कहीं यह अच्छा मालूम हुआ कहीं वह। मुझे इसके न छाप सकने का खेद है।

आशा है, आप प्रसन्न हैं।

आप यहाँ तक आकर चले गये और मुझसे न मिले इसकी आपसे शिकायत करन का अधिकार आप मुझे देना स्वीकार करें तो अवश्य करूँगा। आगे ऐसी गलती न कीजिएगा। बनारस पुराने ढंग का केन्द्र है। बाहर से प्रकाश मिलता रहता है तो मालूम होता है हम भी जिन्दा हैं।

भवदीय
प्रेमचंद

सरस्वती प्रेस बनारस
२१ दिसंबर १९३५

प्रिय ललिताशंकर जी

आपका पत्र मिला। श्री गोपाल रेड्डी का लेख अवश्य भेज दीजिएगा। या बेहतर हो मेरे पास न भेजकर बम्बई के पते से भेजिए। अर्थात् १११ एस्प्लनेड रोड फोर्ट बम्बई। क्योंकि दक्षिण भाषाओं के लेख बम्बई से एडिट होकर यहाँ आते हैं।

विश्वभारती तो यहाँ नहीं आई इसलिए आलोचना कैसे देखता।

श्री जवाहरलाल नेहरू जब यहाँ आ जायेंगे तब लेखक संघ वाले उन्हें लाने की चेष्टा करेंगे।

भवदीय

प्रेमचंद

२५२

सरस्वती प्रेस, बनारस

१ जनवरी १९३६

प्रिय अमितावाकर

कार्ड। भारती मिली। इस पर नोट पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। किसे प्रत्य बाद हूँ। अपने पास तो रख नहीं सकता। तुम ले लो या चदोसाजी ले लें।

वह लेख अवश्य भेज दो। हिन्दी अनुवाद आये तो अच्छा। यहाँ अनुवाद ठीक न हो सकेगा।

लेख हिन्दी हैं तो मेरे पास भेजिए। बंगला भी उड़िया भी उर्दू भी। यह विभाग यहाँ है। गुजराती मराठी और दक्षिण भाषाओं का विभाग बम्बई।

भवदीय

प्रेमचंद

२५३

सरस्वती प्रेस बनारस कैंट

२७ फरवरी १९३६

प्रिय अमितावाकर जी

तुम्हारा २२ फरवरी ३६ का पत्र मिला। तुम्हारा भेजा हुआ लेख छप गया। उसे मैंने पहला स्थान दिया है। अब उसके reprint कैसे मिलेंगे। उसे छपे तो एक हफ्ता हो गया। पहले तुमने लिखा नहीं कुछ निकलवा लेता।

मैंने तो तुम्हारे आदेशों को कभी नहीं टाला। चतुर्वेदी जी के लेखने पर मैं क्यों आने लगा। वह कौन होते हैं। क्या तुम सीधे मुझसे नहीं कह सकते। तुम्हारे यहाँ जब कोई ऐसा अवसर आये मुझे बुलाना मैं आऊँगा। हाँ यह तो तुम जानते ही हो कि मैं घर में अकेला आदमी हूँ और बिना जरूरत कहीं नहीं

आता जाता। गुरुदेव के दर्शनों की इच्छा मुझे भी है। समय आयेगा तो वह भी पूरी हो जायगी। मित्रों को मेरा वंदे कहना।

शुभाकांक्षी
प्रेमचंद

२५४

सरस्वती प्रेस बनारस
५ जून १९३५

प्रियवर,

इधर आपने बहुत दिनों से 'हंस' के लिए कोई लेख लिखने की कृपा नहीं की। अगर आप ही लोग उसका यों तिरस्कार करेंगे तो वह चलेगा क्योंकर। हमने आप ही जैसे महानुभावों के भरोसे यह सेवा स्वीकार की है। आपको मालूम ही है अब वह भारतीय साहित्य परिषद् का पत्र है। आपकी कृतियाँ केवल हिन्दी भाषी प्रान्तों में ही नहीं अन्य प्रान्तों में भी रुचि से पढ़ी जायेंगी। मुझे आशा है, आप उसके लिए शीघ्र ही कोई लेख भेजेंगे। आलोचनात्मक तुलनात्मक और परिचयात्मक लेखों की हमें विशेष जरूरत है। हम हंस को शुद्ध साहित्य का पत्र बना देना चाहते हैं। आशा है आप हमें निराश न करेंगे।

भवदीय
प्रेमचंद

दुर्गासहाय 'सरूर' जहानाबादी

२५५

नया चौक कानपुर
११ नवम्बर १९०७

जनाब मखदूमी व मुकर्रमी

तसलीम। मिजाजे अक़दस?

मुझे तो आप शायद भूल गये। अब याददेहानी करता हूँ। माह जनवरी १९०८ से इलाहाबाद के इण्डियन प्रेस ने एक आला दर्जे का उर्दू रिसाला शाया करने की नीयत की है और इसकी एडिटरी की खिदमत मैंने आप लोगों की एआनत के भरोसे पर अपने ऊपर ली है। पहला नंबर १५ जनवरी को निकल जायेगा। रिसाला बातसवीर होगा। तसावीर और उम्दा लिखाई छपाई और कागज का खुसूसियत से लिहाज रखा जायेगा। आप जानते हैं इण्डियन प्रेस कैसा मालदार है। वह जिस क़दर चाहे सर्फ़ कर सकता है। मैं चाहता हूँ कि पहले नंबर में अहले क़लम खास तौर पर जोरदार हों और ऐसी नज़्मों के लिए आपके सिवाय और किससे इल्तिजा करूँ। मुआविज़ा जो कुछ मुनासिब होगा या जो कुछ आप फ़र्मायेंगे अकब से हाज़िरे खिदमत होगा। और रिसालों के मुक़ाबिले म आप इसे ज्यादा ज़रा असामो पायेंगे। यह इल्तिमास करने की ज़रूरत नहीं कि पहली नज़्म आप ही की होगी। हाँ यह रिसाला पोलिटिकल न होगा।

जवाब का मुन्तज़िर,

आपका नियाज़मन्द
धनपतराय उर्फ नवाबराय
मास्टर गवर्नमेंट स्कूल कानपुर

अख़्तर हुसेन 'रायपुरी'

२५६

बनारस

२७ फ़रवरी १९३६

डियर अख़्तर

तुम्हारा ख़त मिला। मैं इसी फ़िक्र में था कि तुमने मेरे ख़त का अब तक जवाब क्यों नहीं दिया। अब मालूम हुआ कि तुम पहाड़ों की सैर कर रहे थे।

अब मेरा क़िस्सा सुनो। मैं क़रीब एक माह से बीमार हूँ। मेदे में गैस्ट्रिक अलसर की शिकायत है। मुँह से ख़ून आ जाता है। इसलिए काम कुछ नहीं करता। दवा कर रहा हूँ। मगर अभी तक कोई इफ़ाक़ा नहीं। अगर बच गया तो 'बीसवीं सदी' नाम का रिसाला अपने लोगों के ख़यालात की इशाअत के लिए ज़रूर निकालूँगा। हंस से तो मेरा ताल्लुक़ टूट गया। मुफ़्त की दरदसरी बनियों के साथ काम करके शुक्रिये की जगह यह सिला मिला कि तुमने 'हंस' में *ज़्यादा रुपया सर्फ़ कर दिया। इसके लिए मैंने ज़िम्मेदारान से काम किया* बिल्कुल अकेला अपने वक़्त और मेहनत का इतना ख़ून किया इसका किसी ने लिहाज़ न किया। मैंने 'हंस' उन लोगों को इस ख़याल से दिया था कि वह मेरे प्रेस में छपता रहेगा और मुझे प्रेस की जानिब से गूना बेफ़िक्री रहेगी लेकिन अब वह दिल्ली में सस्ता साहित्य मंडल की जानिब से निकलेगा और इस ज़माने में परिषद् को अन्दाज़न पचास रुपये महीने की बचत हो जायगी। मैं भी ख़ुश हूँ। 'हंस' जिस लिटरेचर को इशाअत कर रहा था वह हमारा लिटरेचर नहीं है वह तो वही भक्तिवाला महाजनी लिटरेचर है जो हिन्दी ज़बान में काफ़ी है।

मेरा नया नावेल 'गोदान' अभी हाल में निकला है। उसकी एक जिल्द भेज रहा हूँ। 'उर्दू' में रिव्यू करना। मैदाने अमल' का नुस्ख़ा तो तुम्हारे यहाँ पहुँचा ही होगा। अब गऊदान के लिए भी एक पब्लिशर तलाश कर रहा हूँ मगर उर्दू में तो हालत जैसी है, तुम जानते ही हो। बहुत हुआ तो एक रुपया फ़ी सफ़ा कोई दे देगा।

और सब ख़ैरियत है। मौलवी अब्दुल हक़ साहब क़िबला की ख़िदमत में मेरा आदाब कहना।

मुख़लिस

धनपतराय

मुहीउद्दीन क़ादर 'ज़ोर'

२५७

हंस कार्यालय, बनारस
११ अगस्त १९३५

जनाब मुकर्रमे बंदा

तसलीम। 'दकन की उर्दू शायरी' के लिए शुक्रिया। चूँकि बम्बई में दफ्तर में कोई उर्दूदां आदमी नहीं है, उर्दू मज़ामीन के तर्जुमे की जिम्मेदारी मुझ पर आयद की गयी है। मैं बहुत जल्द मज़मूनेहाज़ा का हिन्दी तर्जुमा आपकी खिदमत में भेज दूँगा। ख़याल यही है कि देर न हो जाय क्योंकि पहली सितम्बर से पर्चे की तबाअत शुरू हो जायगी। अगर मुझ पर एतबार कर सकें तो मैं इसका जिम्मा ले लूँगा कि आपके मज़मून का बेहतरीन तर्जुमा होगा और अस्ल से किसी तरह इनहराफ़ न होगा। हाँ अस्ल की खूबियाँ तर्जुमे में आनी मुश्किल हैं वो शायद आप खुद तसलीम फ़र्माएँगे।

हंस ने अदब के इस वसीह मैदान में क़दम रखने की जुरअत की है, देखें उसे कहाँ तक कामयाबी होती है।

प्रेमचंद

पद्मकांत मालवीय

२५८

१ जनवरी १९३६

प्रिय पद्मकांत जी

आपसे किसी भले आदमी ने कह दिया कि मैं अभ्युदय से नाराज हूँ। लिख न सकना दूसरी बात है, नाराज होना दूसरी बात है। मैं कोशिश करूँगा कि कुछ लिखूँ। कहानी तो फ़िलहाल लिखना कठिन है लेकिन कोई लेख भेजने का प्रयत्न करूँगा। मैं तो तुम्हारे घर भी हो आया हूँ। पास ही आया हूँ। हाँ गरीब और धनी में जो एक अन्तर होता है वह मुझमें और तुम में है। मैं गरीब वर्ग को विलाप करता हूँ तुम धनी वर्ग को। नहीं इतना पास क्यों आते। मैं भी पास आता हूँ मगर मेरा भरा खाली है, तुम्हारा भरी।

भवदीय

प्रेमचंद

माणिकलाल जोशी

२५६

सरस्वती प्रेस, बनारस
२० दिसम्बर १९३३

प्रिय महोदय

आपका पत्र और 'कौमुदी' की प्रति मिली। मेरे और 'कर्मभूमि' के बारे में जो लेख निकला है उसकी विषयवस्तु का मुझे पता चला। हर लेखक को आज़ादी है कि वह किसी लेखक की तारीफ करे या उसे नीचे गिरावे और मुझे इस संबंध में कुछ नहीं कहना है। मिस्टर किशन सिंह की कदाचित् यह धारणा है कि मैंने स्वयं उपन्यास सम्राट की उपाधि हथिया ली है। मुझसे ज्यादा कोई भी इस उपाधि से घृणा न करता होगा और मैंने कभी किसी को प्रेरित नहीं किया कि वह मुझको इस नाम से पुकारे और मैं खुद नहीं जानता कैसे यह उपाधि मेरे नाम के साथ जुड़ गयी और क्यों इसे बार-बार इतना दुहराया जाता है। तुलनाएँ हमेशा बहुत झगड़े की चीज़ होती हैं और मिस्टर किशन सिंह का कहना बिलकुल सही है कि जो मेरी तुलना गाल्सवर्दी और टाल्सटाय और साहित्य-संसार के दूसरे महान व्यक्तियों से करते हैं वे निश्चय ही मेरे साथ अन्याय करते हैं। अपने संबंध में ऐसी मूर्खता की धारणा रखनेवाला मैं अंतिम व्यक्ति हूँ। मगर ऐसी चीज़ों मैं रोक न हो कैसे?

मिस्टर किशन सिंह की यह राय बिलकुल सही हो सकती है कि मेरी ज्यादातर कहानियाँ बहुत पिटी-पिटायी हैं और उनमें कोई सौन्दर्य नहीं। शायद जो कहानियाँ उन्होंने अनुवाद के लिए चुनीं वे अपवाद-स्वरूप हैं। इसके बारे में मैं क्या कह सकता हूँ? ऐसे भी पाठक हैं जो मिस्टर ह्यूगो और टाल्सटाय को भी बर्दाश्त नहीं कर पाते। मैं विनयपूर्वक इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने वही किया है जो कि अपनी प्रतिभा को देखते हुए अच्छे से अच्छा कर सकता था और इससे बड़ी किसी चीज़ के लिए मेरा दावा नहीं है।

मिस्टर किशन सिंह की मुख्य आपत्ति यह जान पड़ती है कि 'कर्मभूमि' राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि में रखकर लिखी गयी है। यह इस बात का मूल

जाते हैं कि लगभग सब महान उपन्यासों का कोई-न-कोई सामाजिक उद्देश्य होता है या कोई न कोई महान आन्दोलन उसकी पृष्ठभूमि में रहता है। टालस्टाय का वार एण्ड पीस मास्को पर नेपोलियन की चढ़ाई के इतिहास के अलावा और क्या है ? मगर उसने अपने पात्रों में उस सबक को छिपा कर दिया है। उसने ऐसे चरित्र और ऐसी घटनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनसे मानव प्रकृति म उसकी आश्चर्यजनक अन्तर्दृष्टि का पता चलता है। सबसे महत्वपूर्ण वस्तु चरित्रों का विकास है। अगर लेखक को इसमें सफलता मिली है तो फिर उसे आलोचकों से डरने का कोई कारण नहीं। क्या लेखक सुकुमार और गम्भीर भावों को उभार सका है ? अगर वह ऐसा करता है तो उसकी पृष्ठभूमि चाहे जो हो वह शाश्वत सत्यों को लेकर कारबार कर रहा है और उसे बहुत दिनों तक जीवित रहने का अधिकार है।

मिस्टर रँगीलदास कापड़िया ने कुछ दिन हुए मुझको लिखा था कि उन्होंने मेरी रचनाओं पर 'कौमुदी' के लिए एक लेख लिखा है। पता नहीं उस लेख का क्या हुआ। मेरे कई गुजराती मित्र हैं जिन्होंने 'कर्मभूमि' की खूब प्रशंसा की है। मराठी पत्रों ने उसकी अच्छी समालोचना की है, 'केसरी' ने खुलकर प्रशंसा की थी। मैं नहीं समझता कि उन्होंने सिर्फ मेरी खापलूसी करने के खयाल से मेरी तारीफ की थी। मगर जैसा कि मैंने शुरू में ही कहा है हर आदमी को अपनी राय रखने और उसको व्यक्त करने का अधिकार है और कभी कोई अच्छी कृति नहीं रही जिसकी बुराई नहीं हुई। मुझे विश्वास है कि कोई न कोई गुजराती साहित्यकार मेरे प्रति न्याय करेगा और मुझे गुजराती जनता के सामने ज्यादा अच्छी रोशनी में पेश करेगा। हिन्दी में एक-दो पत्रों ने मेरे खिलाफ आन्दोलन शुरू कर दिया है। बड़े खेद की बात है कि साहित्य का क्षेत्र भी व्यक्तिगत राग द्वेष से क्षत-विक्षत हो रहा है। अनेकानेक दल और विरोह हैं और अगर आप उनमें से किसी एक दल की प्रशंसा करते हैं तो विश्वास रखिये कि दूसरा दल इस वर्जित प्रदेश में कुछ काम के लिए आपको दण्ड दिये बिना न रहेगा। इसबार की 'सरस्वती' ने मेरे खिलाफ एक लेख लिखा है और ऐसा लगता है कि मिस्टर किशन सिंह उसी लेख से अनुप्रेरित हुए हैं। 'कर्मभूमि' का अनुवाद करने के लिए आप मिस्टर किशन सिंह को चुनिये और तब हो सकता है कि वह शान्त हो जायें। काफी सम्भव है कि उन्हें यह बात बुरी लग रही हो कि यह काम उनको नहीं सौंपा गया।

अच्छा विज्ञापन सफलता का प्राण है और आपको ऐसी व्यवस्था करनी

चाहिए कि 'कर्मभूमि' जैसे ही निकले कई पत्र-पत्रिकाएँ और साहित्यकार उसकी समालोचनाएँ लिखें। जैसा कि आपने स्वयं ही अनुभव किया होगा यह कदम उठाने से आपका यह उद्योग निश्चय ही सफल होगा।

आपका

प्रेमचंद

माणिकलाल जी जोशी कर्मभूमि गोदान निर्मला प्रतिज्ञा और रंगभूमि के गुजराती अनुवादक हैं।

'भारत'-सम्पादक के नाम पत्र

२६०

प्रियवर,

आपने अपने सम्मानित पत्र के २२ सितम्बर के अंक में सरस्वती प्रेस की हड़ताल के विषय में प्रेस कर्मचारी संघ की शानदार फतह का जो हाल छापा है उसके बारे में मैं भी कुछ निवेदन करने की आपसे अनुमति चाहता हूँ और मुझे आशा है आप मुझे निराश न करेंगे। सरस्वती प्रेस के प्रोप्राइटर होने के नाते हड़ताल की कितनी जिम्मेदारी मुझ पर आती है उसे स्पष्ट करना आवश्यक है ताकि आपके पाठकों को उससे मेरे बारे में जो गलतफहमी हो सकती है वह दूर हो जाय।

सरस्वती प्रेस लगातार कई साल से घाटे पर चल रहा है। पहले 'हंस' निकला और उससे तीन साल तक बराबर घाटा होता रहा। अब भी कुछ न कुछ घाटा ही है। इसके बाद प्रेस में काम की कमी को पूरा करने और जाति की कुछ सेवा करने के लिए मैंने 'जागरण' निकालने का भार भी ले लिया। यद्यपि काम मेरे बूते का न था लेकिन इस आशा से कि शायद यह उद्योग सफल हो जाय और प्रेस में धनाभाव का जो रोग लगा हुआ है वह दूर हो जाय मैंने यह भार भी सिर पर ले लिया और दो साल अपने समय का बहुत बड़ा भाग खर्च करके उसे चलाता रहा लेकिन तो भी बराबर घाटा ही रहा यहाँ तक कि प्रेस पर कोई चार हजार का कर्ज हो गया जिसमें कर्मचारियों का देना और कागजवालों का बकाया दोनों शामिल है। फिर भी मैंने हिम्मत नहीं हारी और जब अपनी बिगड़ी आर्थिक दशा से तंग आकर मैं काशी से चलने लगा तो मैंने 'जागरण' का सम्पादन-भार बाबू सम्पूर्णानन्द को सौंपा जिसे उन्होंने सहृदयता के साथ स्वीकार किया। मगर घाटा बराबर होता रहा। मेरी पुस्तकों की बिक्री के रुपये भी प्रेस के खर्च में आते रहे, फिर भी खर्च पूरा न पड़ता क्योंकि इधर पुस्तकों की बिक्री भी घट गयी है। बाबू सम्पूर्णानन्द जी के हाथों में 'जागरण' ने सोशलिस्ट नीति की जैसी जोरदार वकालत की वह हिन्दी संसार भली भाँति जानता है। मैं खुद सोशलिस्ट विचारों का आदमी हूँ और

मेरी सारी जिन्दगी गरीबों और दलितों की वकालत करते गुजरी है। हिन्दी में 'जागरण' एक ऐसा पत्र था जिसने घाटे की परवाह न करते हुए वीरता के साथ सोशलिज्म का प्रचार किया। जब प्रेस की आमदनी का यह हाल था तो कर्मचारियों का वेतन कहाँ से पाबंदी के साथ दिया जा सकता था? मेरी किताबों से जो कुछ आमदनी होती है वह इतनी भी नहीं है कि उससे मेरा निर्वाह हो सकता। न मुझमें यह क्षमता है कि धनिकों से अपील करके कुछ धन संग्रह कर सकता। ऐसी दशा में प्रेस कर्मचारियों और कागजवालों दोनों ही से मुझे मजबूरन वादा-खिलाफी करनी पड़ी। मुझे ऐसी दशा में 'जागरण' को अवश्य बंद कर देना चाहिए था जैसा मेरे अनेक मित्रों ने कहा लेकिन दुनिया उम्मीद पर कायम है और मैं बराबर यही सोचता रहा कि शायद अब पत्र का प्रचार बढ़े। उसके पीछे कई हजार का नुकसान उठा चुकने के बाद उसे बंद करते मोह आता था। मेरे कई मित्रों ने प्रेस को ही बंद करने की सलाह दी क्योंकि प्रेस के बंधन से मुक्त होकर मैं अपनी पुस्तकों और लेखों से लस्टम-पस्टम अपना निर्वाह कर सकता हूँ। कम से कम उस दशा में मुझ पर किसी का कर्ज तो न रहता। लेकिन मुझे यही संकोच होता था कि ये २५-३० आदमी बेकार होकर कहाँ जायेंगे। प्रेस से मुझे कुछ नहीं मिलता। मेहनत भी मुफ्त में करनी पड़ती है मगर इतने आदमियों की रोजी तो लगी हुई है। महज इस खयाल से मैं हर तरह की बरबादी उठा कर प्रेस और पत्र चलाता रहा। दिल में समझता था कर्मचारियों को प्रेस का ज्ञान है ही क्या वह मेरी मजबूरी नहीं समझते? जब उन्हें मालूम है कि मैंने आज तक प्रेस से एक पैसे का लाभ नहीं उठाया और जायज कमाई से कम से कम दस हजार रुपये प्रेस और पत्रों के पीछे फूँक दिये तो उनको मेरे नादिहन्द होने की कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए। मैं तो उनसे अपने को उनकी हमदर्दी का पात्र समझता था। मैं मानता हूँ कि गरीबों को समय पर वेतन न मिलने से बड़ा कष्ट होता है लेकिन क्या ये खुद ही इस प्रेस के मालिक होते तो वे भी मेरी ही तरह सिर पीटकर न रह जाते? उन्हीं कर्मचारियों में कितने ही किसान हैं। क्या उन्हें किसानी में घाटा नहीं हो रहा है और वे प्रेस की मजदूरी करके लगान नहीं अदा कर रहे हैं? कर्मचारी को मालिक से असंतोष तब होता है जब मालिक खुद तो आमदनी हजम कर जाता है और उन्हें भूखा रखता है। जब उन्हें मालूम है कि मालिक खुद बेगार में रात-दिन पिस रहा है, उसकी जेब में एक पाई भी नहीं आती तो उनको मालिक से शिकायत करने का कोई जायज मौका नहीं है। फिर भी इन परिस्थितियों पर जरा भी विचार न करके प्रेस संघ ने प्रेस में हड़ताल करवा दी। मैंने खबर पाते ही

संघ के सभापति महोदय को सारा हाल समझा दिया और निवेदन किया कि मैं कर्मचारियों को exploit नहीं कर रहा हूँ बल्कि खुद उनके द्वारा exploit किया जा रहा हूँ और प्रेस में जो कुछ आयेगा वह कर्मचारियों को दिया जायेगा मैंने खुद न प्रेस से कभी एक पैसा लिया है न अब लूँगा लेकिन उन्हें तो अपनी शानदार फ़तेह की पड़ी थी मेरी गुजारिशों पर क्यों ध्यान देते ? उन्हें यहाँ तक विचार न हुआ कि इस प्रेस को साहित्य या समाज की सेवा ही के कारण यह घाटा हो रहा है, और यही प्रेस है जो मजदूरों की वकालत कर रहा है, और इस लिहाज से मजदूरों की हमदर्दी का हकदार है ऐसी कोशिश करें कि वह सफल हो और ज्यादा एकाग्रता से उनकी वकालत कर सके। उनके सोशलिज्म में ऐसे तुच्छ विचारों के लिए स्थान ही नहीं था। वहाँ तो सीधा-सादा सूखा हुआ सिद्धान्त था कि प्रेस ने मजदूरी बाकी लगा रखी है इसलिए हड़ताल करना थी। मैं अब भी प्रेस को बंद कर सकता था क्योंकि मैं पहले ही कई बार कह चुका हूँ कि प्रेस से मुझे कोई आर्थिक लाभ नहीं है बल्कि हमेशा कुछ न कुछ घर से देना पड़ता है, लेकिन फिर यही खयाल करके कि इतने आदमी उसी प्रेस से कुछ न कुछ पा रहे हैं उसे बंद कर देने से उन्हीं का नुकसान होगा और उन्हें अपने बाकी वेतन के लिए कई महीनों का इंतजार करना पड़ेगा प्रेस को जारी कर दिया। यह है उस शानदार विजय का वृत्तान्त जो संघ को सरस्वती प्रेस पर प्राप्त हुई है। अपने वकील का मसा चौंटना अगर विजय है तो बेशक उसे विजय हुई *क्योंकि इस झमेले में 'जागरण' बंद हो गया। जिन मजदूरों के लिए वह सैकड़ों* का माहवार घाटा सह रहा था जब उन्हीं मजदूरों को उस पर दया नहीं आती तो फिर उसका बंद हो जाना ही अच्छा था।

रह गईं अन्य शर्तें। वे सब अच्छी हैं और मैं हमेशा से उनकी पाबन्दी करता आया हूँ। मेरे कर्मचारियों में से किसी का साहस नहीं है कि वह मेरे विरुद्ध अपशब्द या डाँट-डपट का आक्षेप कर सके। मैं खुद मजदूर हूँ और मजदूरों का दोस्त हूँ। उनके साथ किसी तरह का अन्याय या सख्ती देखकर मुझे दुःख होता है। और मेरे मैनेजर ने मार-पीट की थी तो कर्मचारियों को मुझसे कहना चाहिए था अगर मैं मैनेजर की तम्बीह न करता तो उनका जो जो चाहता वह करते। लेकिन संघ ने अपनी शानदार फ़तेह की धुन में मुझे सूचना देने की जरूरत न समझी और हड़ताल करके प्रेस का नुकसान और बढ़ाया। प्रेस की ११ दिन की कमाई मजदूरों के मुँह से छीन ली। इन शर्तों में एक भी ऐसी नहीं है जो मैं सच्चे हृदय से न मान लेता बल्कि मैं तो मजदूरों को आधे महीने की पेशगी देने की शर्त भी मानता अगर कोष में रुपये होते। मैं खुद चाहता हूँ कि वह समय

पाने जब मजदूरों को (जिनमें मैं भी हूँ) कम से कम काम करके अधिक से अधिक मजदूरी मिले खूब छुट्टियाँ मिलें और जितनी सुविधाएँ दी जा सकें दी जायें मगर शर्त यही है कि आमदनी काफी हो। घाटे पर चलनेवाले उद्योग को बड़ी-बड़ी सदिच्छाएँ रखने पर भी बदनाम होना पड़ता है और उस पर कोई भी बड़ी आसानी से शानदार फतेह पा सकता है।

अजंता सिनेटोन
परेल बम्बई
२५ सितम्बर १९३४

प्रेमचंद

जे० पी० भार्गव

२६१

२१ मारवाड़ी गली लखनऊ

प्रिय पंडितजी

मुझे खेद है कि यद्यपि मैंने अपने पिछले पत्र में आपसे जल्दी जवाब देने के लिए कहा था तथापि आपने मेरी प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया। न मुझे हिसाब मिला और न रुपया। क्या आप अब भी ऐसा सोचते हैं कि मुनाफा तब बँटेगा जब कुल लागत पूँजी लौट आयेगी? मैं ऐसा नहीं सोचता। हमारा इकरारनामा यह था कि सारे खर्चे काटने के बाद मुनाफा बराबर बराबर बाँट लिया जाय। क्या इसका मतलब यह है कि मुनाफा बाँटने के पहले कुल लागत वसूल हो जानी चाहिए। मेरी समझ में यह एक भ्रान्त धारणा है। मान लीजिए मैंने इस वर्ष पुस्तक माला में एक और पुस्तक जोड़ी होती जिसमें तीन हजार रुपये की लागत लगती तो शायद मुझे तब तक रुकना पड़ता जब तक कि आपके यह तीन हजार भी वसूल न हो जाते। फिर मान लीजिए अगले साल एक और किताब निकल आती तो फिर नयी पूँजी लगानी पड़ती। अगर आपका ऐसा ख्याल है तो मुनाफा बाँटने का वक्त कभी न आयेगा क्योंकि आपका कुछ रुपया हमेशा स्टाक में लगा रहेगा और मुनाफे का विभाजन कभी संभव न होगा।

और जब आपकी कुल लागत निकल आयेगी तब आपको किताबों की बिक्री को आगे बढ़ाने में क्या दिलचस्पी रह जायगी। समय बीतने के साथ-साथ बिक्री धीमी पड़ती जायगी और आप अपनी लागत निकालकर पूरी तरह बचे रहेंगे एकदम सुरक्षित मुझको भारी नुकसान उठाना पड़ेगा। आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं इन पुस्तकों को बेच सकता था और इनसे मुझे कुछ भी नहीं तो दो हजार दो सौ रुपये के करीब मिले होते। प्रूफ के संशोधन से मुझे कोई मतलब न होता। यह क्या मेरी ओर से लागत में हाथ बँटाना नहीं है? क्या मेरी मेहनत की कोई कीमत नहीं है? इस दो हजार दो सौ रुपये में मुझे एक सौ बत्तीस रुपया सालाना सूद की आमदनी होती।

पिछले साल आपने जो हिसाब दिया था उससे पता चलता था कि नगद

सौ रुपये का मुनाफा हुआ। कुछ चीजों का हिसाब गलत लगाया गया था उदाहरण के लिए कुल बिक्री पर तैंतिस प्रतिशत काटा गया था जब कि कुछ किताबें फुटकर ग्राहकों के हाथ भी बिकी होंगी। लागत को देखते हुए साढ़े आठ सौ रुपये का मुनाफा किसी तरह सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। कुल लागत पाँच हजार रुपये की थी। यह सब नकद नहीं था। कागज उधार खरीदा गया। अगर कागज नकद खरीदा गया होता तो चार फी सदी की छूट तमाम इस्तेमाल होनेवाले कागज के कमीशन के रूप में हुई होती। फिर विज्ञापन के खर्चे में भी कुछ आनुपातिक कमी हो गयी होती क्योंकि विज्ञापन में पुस्तकमाला के अलावा भी कुछ पुस्तकें शामिल कर ली गयी थीं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए और एक रुपया सूद काटने के बाद भी काफी अच्छा मार्जिन बच जाता है और कुल पूँजी का करीब एक तिहाई हिस्सा वसूल हो चुका है।

मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि मेरी बेटी की शादी इस साल तय हो जायगी और मुझे अपने अप-टू-डेट मुनाफे की रकम की जरूरत होगी।

मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप इन दोनों ही की दृष्टियों से विचार कर और अपना ही चेक भरने की जल्दबाजी न दिखलायें। स्टाक आपके पास है। यह क्या काफी गारण्टी नहीं है।

मैं ६ फरवरी को बनारस आने की सोचता था लेकिन चूँकि मुझे आपके पास से कोई खत नहीं मिला और मुझे शक है कि आप यह रकम मुझे देंगे इसलिए मैं रुपये का इन्तजार लखनऊ में करूँगा।

मेरे एक दोस्त सुदर्शन साहब ने इसी तरह का इकरारनामा मैकमिलन एण्ड कंपनी के साथ किया है। उनको अपना आधा मुनाफा हर छठे महीने मिल जाता है। मैं समझ नहीं पाता कि आप क्यों इकरारनाम को उसकी असल शक्ल से मुख्तलिफ ढंग से पेश कर रहे हैं।

आशा है कि आप मजे में हैं।

आपका

धनपतराय

यह पत्र भी भेजा नहीं गया, शायद मार्च [illegible] जेल के [illegible] को लिखा गया था जिसमें इसी समय जू० बी० का एक इकरारनामा हुआ था जिसके अन्तर्गत 'धार्मिक ग्रन्थमाला' के नाम से कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। (मूल पत्र अंग्रेजी में है)।

२६२

सरस्वती प्रेस, काशी
१५ अक्टूबर १९३१

प्रिय बहादुरचंद जी

वंदेमातरम ।

यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि आप साइबेन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं । आप लोगों को धन्य है जो विदेशों में भारत का नाम रौशन कर रहे हैं । मैं यहाँ से 'हंस' नामक एक मासिक पत्रिका निकालता हूँ । यदि अवकाश मिले तो कभी-कभी वहाँ का कुछ हाल उसके लिये लिखने की कृपा कीजियेगा । सचित्र हो तो और भी अच्छा ।

यदि डच प्रेमियों को मेरी कहानियाँ कुछ अच्छी लगती हों तो आप बड़ी खुशी से जिन कहानियों का अनुवाद करना चाहें करें । हाँ उनकी भाषा किसी डच साहित्य प्रेमी को दिखा लीजियेगा जिसमें आपकी और मेरी अपकीर्ति न हो । मेरी भाषा बोलचाल की होती है और उसका अनुवाद तो कठिन न होना चाहिये । मेरी यही कामना है कि आप अपने उद्योग में सफल हों और मुझे भी यश मिले ।

कभी-कभी पत्र लिखते रहा कीजिए ।

भवदीय
प्रेमचंद

श्री बहादुरचंद छाबड़ा [illegible] भारतीय पुरातत्व विभाग के बहुत बड़े अधिकारी बने ।

इस पत्र की फोटो-प्रतिलिपि [illegible] के अंग्रेजी-डच रूप अनुवाद में छपी है ।

राम किशोर चौधरी

२६३

सरस्वती प्रेस, काशी

७ नवम्बर १९३२

प्रिय रामकिशोर जी

मैं अभी प्रयाग गया तो यह सुनकर घबड़ाहट हुई कि तुम बीमार हो गये हो। मुन्नू की माँ ने कहा कि दुलहिन को बुला भेजना। मुझे बड़ी जल्दी थी। सोचा था मन्ना को भेज दूँगा पर यह समाचार पाकर न भेजा। अब कृपया लिखो कैसी तबीयत है। दुलहिन के स्वास्थ्य का क्या ढंग है ?

हम लोग कुशल से हैं। बेटी देवरी से दिसंबर में आवेगी।

शेष कुशल।

शुभम

धनपतराय

सुदर्शन का खत प्रेमचंद को

२६६

36 Chakrabera Road (South)
Bhawanipur Calcutta
16 May 1935

भाई जान

नमस्ते। कुछ दिन हुए मैंने सुना था कि आप बंबई छोड़कर बनारस चले आये हैं। परमात्मा करे, यह ग़लत हो। बिला शुबहा हमारे निगारखानों[1] की फ़िज़ा इस काबिल नहीं कि यहाँ कोई खुद्दार और क़ाबिल आदमी ज़्यादा देर रह सके। लेकिन मैंने भवनानी साहब की निस्बत ज़्यादा तारीफ़ सुनी थी। इसलिए यक़ीन नहीं आता कि आपको उन लोगों ने छोड़ दिया हो। इधर सिटरे घर का भी बुरा हाल है।

मैं आजकल न्यू थिएटर्स में हूँ। इसका मालिक बेहद शरीफ़ मालूम हुआ है। काम भी कम है। पैसा भी मिलता है। लेकिन जो मज़ा घर में बैठकर अफ़साने लिखने में था वह यहाँ नहीं। पर वहाँ पैसा नहीं है। क्या करें। अखराजात[2] किसी बीमार बुड्ढे की कमज़ोरी की तरह बढ़ते चले जाते हैं। मजबूरन।

मिसेज़ प्रेमचंद को नमस्ते। मिसेज़ सुदर्शन बीमार हो गयी थीं। पहाड़ पर भेज दिया है। हम कलकत्ते की गर्मी में झुलस रहे हैं।

सुदर्शन

---

१ फ़िल्म कंपनियों २ खर्चे।

रघुपत सहाय 'फ़िराक़' के दो खत प्रेमचन्द को

२६७

Tilak Mahal,
Cawnpore.
10 February 1930

भाई जान तसलीम।

आपके कार्ड और इसरार के जवाब में एक अधूरा मज़मून मशहूर उर्दू शायर 'फ़ानी' पर भेज रहा हूँ। कई माह गुज़र गये जब इसे शुरू किया था। तकमील[1] इसकी अब तक न हुई थी। मगर किसी काम का हो तो पहले नंबर में इसे मज़मून की पहली क़िस्त करके आप शाया कर दें। बक़िया अख़ीर अप्रैल तक भेज सकूँगा। उसके पहले कैसे भेज सकूँगा?

जो ग़ज़ल मैंने भेजी है उसका एक शेर शायद छूट गया है। मुमकिन है आपके काम का हो। वो ये है—

> है चोट सी चोट मुहब्बत की है दर्द सा दर्द मुहब्बत का
> आँखें भी न बहने पायी थीं और मुँह पे हवाई छूट गयी।

विवेक मिशन में एडीटर था और जो चार हफ़्तों के बाद बंद हो गया उसमें मेरे कुछ मज़ामीन हैं। उन्हें ग़ैर-मतबूआ[2] ही समझना चाहिए। अव्वल तो उसको बंद हुए तीन साल हो गये दूसरे उसकी इशाअत भी नाम को थी। चलता या चलाया जाता तो अच्छी ख़ासी इशाअत हो जाती। इनमें से कहिए तो कुछ मज़ामीन भेज दूँ। दूसरों के लिखे कुछ दिलचस्प अफ़साने और नज़्में भी हैं जो आपके काम आ सकती हैं।

'हंस' का पहला नंबर कब तक निकल जायगा? मेरा ख़याल है कि कोशिश जारी रही तो ज़रूर 'हंस' कामयाब और मुनफ़अत-रसाँ साबित होगा। इम्तहान बहुत क़रीब है। और क्या अर्ज़ करूँ। जवाब से ममनून फ़र्माइएगा।

आपका
रघुपत सहाय

---

१ पूर्ति २ अप्रकाशित

२६८

१ कचहरी रोड, इलाहाबाद
१० सितम्बर १९३१

माईजान तसलीम।

हफ़्तों हुए आपका ख़त मिला था। आपको शायद इसका एहसास भी नहीं कि मुझमें क़ुव्वते-इरादी[1] क़रीब-क़रीब बिल्कुल मफ़कूद[2] हो चुकी है और अहबाब[3] की अब कोई फ़र्माइश कुछ भी लिखने पढ़ने की होती है तो एक सदमा[4] होता है। आप तो मुतअस्सिफ़[5] हैं मगर जो मुतअस्सिफ़ नहीं हैं या जिनके दिल-ओ-दिमाग़ को कम अज़ कम तसनीफ़ की मश्क़ या आदत नहीं है और जिसने कभी यूँ ही कुछ लिख-पढ़ दिया हो खुसूसन जब बेदिली[6] का उस पर पूरा तसल्लुत[7] हो चुका हो वह क्या लिखे पढ़े। इसके अलावा पाँच छः बरसों से सिवा कुछ उर्दू अख़बार के हिन्दी के पाँच सतर भी जो दिलचस्पी और इनहमाक[8] से न पढ़ सका हो। ऐसा शख़्स करे तो क्या करे। यक़ीन मानिए अगर मैं ख़ुद हिन्दी में कुछ लिखूँ तो फिर उसे पढ़ने का न उभरेगा। इस मुआमले में मेरी अदबी मौत हो चुकी है।

फ़िलहाल मेरा हाल यह है कि मुआशियात यहाँ पर अभी मुस्तहकिम नहीं है। ज़िम्मेदारियाँ मेरी मामूली नहीं। तीन अपने बच्चे हैं जो सब बड़े भए हैं। दो भाई एम० ए० में हैं जिनकी ज़िम्मेदारियाँ उनकी उम्मीदों और ख़ुशियों या मुतालबामियों से ज़्यादा है। वालिदा बीवी और मैं ख़ुद। इन सबके अख़राजात।[9] किसी तरह काम चला रहा हूँ और मुल्क की तरफ़ से ख़िदमात की तरफ़ से नाउम्मीद हो चुका हूँ। जो कुछ लिखा है, उसका ख़मियाज़ा[10] अलग भुगत रहा हूँ। इन्सान यह सब उठा के सकते कि कोई मरकज़[11] उसकी दिल-चस्पियों का हो। यही मरकज़ सहारा होता है। ऐसा बड़ा शायर भी नहीं हूँ कि ज़िन्दगी से मरकर शेर में ज़िन्दा रहने की कोशिश करूँ या उस नर्गिस[12] को बिल्कुल तन्हाई[13] बना रखूँ। इस मिसरे को दुहराया तो बेकार करते हैं लेकिन कितने पते की बात है—

'न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम न इधर के हुए न उधर के हुए।'

बहरहाल मुल्क-क़ौम[14] को ही ग़नीमत जानकर काम किये जा रहा हूँ अगरचे भाई वक़्त और उम्र का एक अजब असर होता है और एक अफ़सोस और तर

---

१ इच्छाशक्ति २ समाप्त ३ मित्रों ४ आघात ५ खेदयुक्त ६ उदासीनता ७ आधिपत्य ८ तल्लीनता ९ ख़र्च १० दण्ड ११ केन्द्र १२ ... १३ ... १४ ... [illegible]

नीज़बेह घबराहट अक्सर रूह का गला घोंट देती है और साँस रुक जाती है। उम्र भर बेदिल रहने का एक तअस्सुफ़देह असर यह हुआ करता है कि कहने के लिए नहीं बल्कि दरहक़ीक़त जीते हुए दम जाती है। ख़ैर ख़ुदफ़रामोशी[1] की ग़रज़ झक मार लिये जाता हूँ। इन सुतूर[2] को रस्मे टामटोल या हमदर्दी हासिल करने का बहाना शायद आप न तसव्वुर करेंगे।

भाईजान गुप्ताजी के क़र्ज़े के लिए दो सौ रुपये माफ़ आप ज़रूर किये जाइए। आपकी फ़र्ज़शनासी का बहुत सहारा है। हाँ मुझे अब तक का हिसाब अगर मुमकिन हो तो लिख भेजिए। मुझे बदहवासी में इसका भी पता नहीं कि आपसे कितना मिलना है। और यह भी लिखिए कि दो सौ रुपये कब तक आप भेज सकेंगे।

प्रेस से आपको इतना नुक़सान हो रहा है। क्या मिल्क[3] नुक़सान उठाकर आप उसे निकाल देना अच्छा नहीं समझते?

आपके बच्चे कहाँ पढ़ रहे हैं। आपका मुलाज़िमत कब तक क़ायम रहने की उम्मीद है? नवलकिशोर प्रेस के लिए आप फ़िलहाल क्या काम कर रहे हैं। ख़ुद क्या लिख रहे हैं। अफ़साने या कोई नाविल।

कभी इलाहाबाद आने की इधर उम्मीद है या नहीं।

देखिए Round Table Conference में क्या होता है। यूँ ही वक़्त मुल्क पर और सारी दुनिया पर नाज़ुक है। कहीं ऐसे में फिर 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' हुआ तो कम अज़ कम हम लोगों की ज़िन्दगी भर तो ख़ुदा ही ख़ुदा नज़र आयेगा। और यों तो हिन्दोस्तान सख़्तजान मुल्क है ज़िन्दा रहेगा और फिर मुमकिन है, बल्कि अग़लब[4] है कि सुकून के दिन भी अहले-मुल्क[5] को नसीब होंगे। मगर कब?

आपका
रघुपत सहाय

---

१ आत्म विस्मृति २ सतरें, पंक्तियाँ ३ माया ४ निश्चित ५ देशवालों।

२६९

मौलवी अब्दुल हक का खत प्रेमचंद को

सल्तनत मंज़िल सैफ़ाबाद,
हैदराबाद (दकन)
२१ जनवरी १९३०

मेरे इनायतफ़र्मा

तसलीम।

आपने अज राहे करम एक हफ़्ते में बनारस पर मज़मून लिख देने का वादा फ़रमाया था। मैं अब तक उसका मुन्तज़िर रहा। अब याद दिहानी करता हूँ। मुझे उसकी बहुत शदीद ज़रूरत है। इनायत फ़र्माकर जहाँ तक जल्द मुमकिन हो रवाना फ़र्माइए। बहुत ममनून हूँगा।

नियाज़मंद
अब्दुलहक़

अमरनाथ झा का पत्र प्रेमचंद को

२७०

२१ ईस्टर्न कैनाल रोड
देहरादून
१० जून १९२५

प्रिय प्रेमचंद जी

रंगभूमि के विषय में आपको पत्र लिखने में जो अक्षम्य देरी हुई है उसके लिए कृपया क्षमा कर दें। मैंने अब उसे समाप्त कर लिया है। मैंने उसका एक-एक शब्द पढ़ा है और अब पहले से भी ज्यादा आपकी अद्भुत सृजनात्मक प्रतिभा का प्रशंसक बहुत बड़ा प्रशंसक हो गया हूँ। सूरदास को अपना नायक बनाना अत्यंत साहस का काम था लेकिन उसके चरित्र को आपने कितनी सुन्दरता से चित्रित किया है। अगर आप एक-दो सुझावों के लिए मुझे माफ करें तो वे ये हैं। पृष्ठ ७८१ पंक्ति ६ में 'सेवक जी' स्पष्ट ही भूल है। उपन्यास में दो कथा प्रसंग मुझे काफी कमजोर जान पड़ते हैं—रेलगाड़ी में विनय और सोफिया वाला दृश्य और वीरपाल सिंह के गुप्त अड्डे पर विनय का वह अत्यंत झुका-झुका बल्कि दबा-सहमा सा भाव। इन्हें छोड़कर मेरे खयाल में मेरे पास दूसरा कोई आलोचना का शब्द नहीं है। रंगभूमि आधुनिक हिन्दी का एक गौरव बनेगी।

समस्त शुभकामनाओं के साथ

आपका
अमरनाथ झा

मूल पत्र अंग्रेजी में

मौलवी अब्दुल हक का ख़त प्रेमचंद को

२६९

सल्तनत मंज़िल सैफ़ाबाद,
हैदराबाद (दकन)
२१ जनवरी १९३०

मेरे इनायत फ़र्मा
तसलीम ।

आपने अज़ राहे करम एक हफ़्ते में बनारस पर मज़मून लिख देने का वादा फ़रमाया था । मैं अब तक उसका मुन्तज़िर रहा । अब याद दिहानी करता हूँ । मुझे उसकी बहुत सख़्त ज़रूरत है । इनायत फ़र्माकर जहाँ तक जल्द मुमकिन हो रवाना फ़र्माइए । बहुत ममनून हूँगा ।

नियाज़मंद
अब्दुलहक़

अमरनाथ झा का पत्र प्रेमचंद को

२७०

२१ ईस्टर्न कैनाल रोड
देहरादून
१० जून १९२५

प्रिय प्रेमचंद जी

रंगभूमि के विषय में आपको पत्र लिखने में जो अक्षम्य देरी हुई है उसके लिए कृपया क्षमा कर दें। मैंने अब उसे समाप्त कर लिया है। मैंने उसका एक-एक शब्द पढ़ा है और अब पहले से भी ज्यादा आपकी अद्भुत सृजनात्मक प्रतिभा का प्रशंसक बहुत बड़ा प्रशंसक हो गया हूँ। सूरदास को अपना नायक बनाना अत्यंत साहस का काम था लेकिन उसके चरित्र को आपने कितनी सुन्दरता से चित्रित किया है! मगर आप एक-दो सुझावों के लिए मुझे माफ़ करें तो वे ये हैं। पृष्ठ ७८६ पंक्ति ६ में 'सिवाय' की स्पष्ट ही भूल है। उपन्यास में दो कथा प्रसंग मुझे काफ़ी कमजोर जान पड़ते हैं—रेलगाड़ी में विनय और सोफ़िया वाला दृश्य और वीरपाल सिंह के गुप्त अड्डे पर विनय का वह अत्यंत झुका-झुका बल्कि दबा-सहमा सा भाव। इन्हें छोड़कर मेरे ख्याल में मेरे पास दूसरा कोई आलोचना का शब्द नहीं है। रंगभूमि आधुनिक हिन्दी का एक गौरव बनेगी।

समस्त शुभकामनाओं के साथ

आपका
अमरनाथ झा

मूल पत्र अंग्रेजी में

नरेन्द्रदेव के दो पत्र प्रेमचंद को

२७२

काशी विद्यापीठ
बनारस
२९ नवम्बर १९२८

प्रिय श्री प्रेमचंद जी

श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुत्री के नाम कुछ पत्र अंग्रेजी में लिखे थे। इन्हीं पत्रों द्वारा उन्होंने संसार का इतिहास बताने का प्रयत्न किया था। H.G Wells की Outline of History का ढंग है। इतिहास समाप्त न हो सका। केवल रामायण-महाभारत काल तक का इतिहास दिया है। कुछ लोगों की राय है कि यदि इन पत्रों का हिन्दी-उर्दू म अनुवाद कराके प्रकाशित किया जाय तो हिन्दुस्तानी बालकों का बड़ा उपकार हो। भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिए।

मुझसे उन्होंने इस संबंध में परामर्श किया कि किन महाशय से इसके लिए प्रार्थना की जाय। हम लोगों की राय में आप से बढ़कर कोई लेखक नहीं है जो इस काम को सुचारु रूप से सम्पन्न कर सके।

अत आपसे प्रार्थना है कि इस कार्य को आप स्वीकार कर लें। अनुवाद Allahabad Law Journal Press से प्रकाशित होगा।

यदि अनुमति देने के पूर्व आप अंग्रेजी पत्र देखना चाहें तो मै उनकी प्रतिलिपि आपकी सेवा में भेज दूं। पुस्तक का नाम क्या होना चाहिए इस संबंध में भी कृपया अपनी सम्मति प्रदान करें और पुस्तक को देखकर यह भी लिखें कि पुस्तक को और सुन्दर तथा उपयोगी बनाने के लिए क्या करना चाहिए।

आप अपने terms भी कृपया लिखें।

आपका
नरेन्द्रदेव

२७२

काशी विद्यापीठ
बनारस
११ दिसम्बर १९२९

प्रिय श्री प्रेमचन्द जी

सप्रेम नमस्कार,

आपका कृपापत्र मिला। मैं इधर दस-ग्यारह दिन से बीमार हूँ। इस कारण उत्तर अब तक न दे सका था। क्षमा कीजिएगा। जिस वक्त मैं कानपुर से रवाना होने लगा उस वक्त श्री हीरालाल के नौकर से मालूम हुआ कि आप आये हुए थे। इन में ही कुछ तबीयत खराब हो गयी। मुझको श्वास रोग है। जाड़े मे इसका दौरा हो जाया करता है। जब होता है तब दस-पन्द्रह दिन रहता है।

आपका अनुवाद बहुत अच्छा है। मैंने कुछ अंश देखे हैं। अनुवाद शीघ्र ही छपेगा। पुरस्कार के संबंध में जवाहरलाल जी से कानपुर में बातें हुई थीं। प्रकाशक उनको रायल्टी दे रहे हैं। उसी रायल्टी में से आपका भाग होगा। यदि आप रायल्टी न पसंद करें तो एक मुश्त रकम आप ले लें। प्रेसवाले जवाहरलाल को थोड़ी ही रायल्टी दे रहे हैं। आप विचार करके लिखें। अब कांग्रेस के बाद ही इसका कुछ निश्चय हो सकेगा।

भवदीय
नरेन्द्रदेव

कन्हैयालाल मुन्शी का पत्र प्रेमचंद को

२७३

प्रिय भाई प्रेमचंद जी

आप तो इंदौर नहीं आये। लेकिन भाई जैनेंद्र प्रसाद आदि ने मील के हमारी योजना को आगे बढ़ाई। इसका परिणाम एक प्रस्ताव से आशा जिससे भीतर प्रान्तीय परिषद् बुलाने में सुगमता होगी। अब सवाल रहा मासिक पत्र का। जैनेंद्र कुमार ने कहा था कि आप 'हंस' को इस काम मे दे देंगे। यदि आप 'हंस' को इस प्रवृत्ति का मुख पत्र बना सकते हों तो हमारा काम बहुत ही सरल हो जायगा। आप मुझे शीघ्र लीखीयेगा कि इस बारे मे आपकी क्या राय है। गांधी जी भी इस बाबत में बड़े प्रसन्न हैं और अच्छा सहकार दे देंगे ऐसी मुझे आशा है। आपका उत्तर की राह देखता हुआ

भवदीय

कन्हैयालाल मुनशी

मैं तो दीन से पंचगनी जा रहा हूं। वहां पत्र भेजीयेगा।

(मूल पत्र हिन्दी में ही है। उसे ज्यों का त्यों दिया जा रहा है।)

हजारी प्रसाद द्विवेदी का पत्र प्रेमचंद को

२७४

शान्तिनिकेतन

२१ मार्च १९३५

भंजन्मोहमहान्धकार वसति सद्वृत्तपुष्पैर्भजन्
वैदग्ध्यं प्रथयन् सुसज्जनमनोवाटीनिधिं ह्लादयन् ।
ध्वान्तोद्भ्रान्तजनान् विशन्नुदितं ध्वान्तप्रियान् क्षोभयन्
चन्द्रः कोऽपि चकास्त्यसावभिनवः श्री प्रेमचन्द्रः सुधी ॥

प्रेमचन्द्रस्य चन्द्रस्य न कदापि समानुभौ ।
एकः पूर्णकलो नित्यमपरस्तु यथा कथा ॥

मान्यवर, उस दिन पं० बनारसीदास जी के साथ गुरुदेव (कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर) से मिलने गया था। बातों ही बातों में वर्तमान हिन्दी साहित्य के सम्बन्ध में चर्चा चली। ऐसे अवसरों पर आपका नाम सबसे पहले आता है। उस दिन भी आपके रचित साहित्य की चर्चा बड़ी देर तक चलती रही। हम लोगों की इच्छा थी कि नव वर्ष के अवसर पर आप जैसे आदरणीय साहित्यिकों को निमंत्रित करें और गुरुदेव से परिचय करावें। गुरुदेव ने हम लोगों के विचार का उत्साह के साथ स्वागत किया। इसलिए हम लोगों ने निश्चित किया कि स्थानीय हिन्दी समाज का वार्षिकोत्सव नव वर्ष (१४ अप्रैल १९३५) को मनाया जाय। उस दिन गुरुदेव का प्रवचन होता है। उसके पहले दिन भी जिस दिन वर्ष समाप्त होता है उनका व्याख्यान होता है। कुछ और भी समारोह रहता है। गुरुदेव और आश्रम की ओर से निमंत्रण तो यथासमय जायगा ही इसके पहले ही हम हिन्दी समाज की ओर से आपको निमंत्रित करते हैं। इस बार आप जरूर पधारें। हमारे आग्रहपूर्वक निमंत्रण को आप अस्वीकार न करें। आपको गुरुदेव से मिला कर हम गर्व अनुभव करेंगे।

आपके साहित्य ने हिन्दी को समृद्ध किया है और हिन्दीभाषियों को दुनिया में मुँह दिखाने लायक। इसीलिए आपके यश को हम लोग निर्विचार बाँट लिया करते हैं। जब हम रंगभूमि या कर्मभूमि को दूसरों को दिखाते हैं तो मन ही मन

गर्वपूर्वक पूछा करते हैं—है तुम्हारे पास कोई ऐसी चीज ! और इस प्रकार का गर्व करते समय हम प्रेमचंद नामक किसी अज्ञात अपरिचित व्यक्ति की याद भी नहीं रखते—मानो सब कुछ हमारी ही कृति है ! आज उस व्यक्ति को पत्र लिखते समय उसकी अनुमति के बिना उसके सम्पूर्ण यश को स्वायत्त कर लेने के अपराध के लिए जो हम क्षमा नहीं माँगते वह भी गर्व का ही एक दूसरा रूप है।

आत्मीयता का इससे बड़ा प्रमाण हम क्या दे सकते हैं ?

आप हमारा आदर और अभिनन्दन ग्रहण कीजिए ।

आपका

हजारी प्रसाद द्विवेदी

२७५

मेयो कालेज अजमेर।
२ फरवरी १९५२

बाद अदब तसलीम।

आपका खत मय खुतबे[1] के मिला। खुतबे में आपने जिन खयालात का इजहार किया है उनसे मुझे करीब-करीब पूरे तौर पर इत्तफाक है और मैं समझता हूँ कि अगर इसका तर्जुमा उर्दू रसायल[2] में शाया किया जाये तो बहतर होगा। मेरी नजर में दो रसायल हैं और आखिरी खत जो मैंने आपको लिखा था उसकी गरज यही थी कि यह तहरीक इन रसायल के जरिये उठाई जाये—१) जामिया है २) मालूमात। मालूमात को शायद आपको मालूम हो मियाँ जाली ने फिर से जिन्दा किया है। दिसंबर में जाली से लखनऊ में बातचीत भी हुई थी। उनकी राय हुई थी कि वह गश्ती खत 'मालूमात' को भेज दूँ और वह उस पर अपनी राय जाहिर करके दूसरों को दावत देंगे कि वह भी अपने खयालात का इजहार करें। इन दो रसालों के अलावा अगर राय हो तो किसी पंजाबी रसाले को भी शामिल कर लिया जाये। पर खयालात वे आपके खुतबे की खबर न पायेंगे। अब गालिबन यही बेहतर हो कि पहले आपके खुतबे का उर्दू तर्जुमा इन रसालों को भेजा जाये और उसके बाद यह गश्ती खत। आपकी क्या राय है?

सिनेमा के बारे में मैं आपसे इत्तफाक नहीं करता हूँ। आजकल जो हमारे सिनेमा की हालत है वह यकीनन नफरतअंगेज है मगर साथ ही इसका खयाल रखने की जरूरत है कि इसका असर हमारी मआशरत[3] पर बहुत वसीह[4] और गहरा होगा। यह असर बुरा हो या भला यह उन लोगों पर मुनहसर है जो सिनेमा बनाते हैं। यह जाहिर है कि यह काम तिजारत का है। कारोबारी आदमी की नजर रुपये पर होगी और रुपया लोगों को खुश करने से ही हासिल हो सकता है। फिलहाल जबकि अवाम की तालीम और तरबियत[5] इतनी गिरी

---

१ भाषण २ पत्रिकाओं ३ [illegible] ४ व्यापक ५ संस्कार

हुई है उनका मज़ाक़[1] भी मौज़ूँ होगा। मगर इसी सिनेमा से यह मज़ाक़ बहुत कुछ दुरुस्त भी किया जा सकता है। अब अगर तमाम माक़ूल लोग जो इसमें शामिल हैं माहौल[2] की गन्दगी के ख़याल से अलहदा हो जायें तो फिर अवाम का मज़ाक़ सुधारनेवाला या उनके ख़यालात दुरुस्त करनेवाला कौन होगा। एक इतनी अहम चीज़ सिर्फ़ ख़ुदग़रज़ जाहिलों के हाथ रह जायेगी। ख़ुद जो काम इस वक़्त आपके पेशे नज़र है उसमें सिनेमा से बेहद मदद मिल सकती है। इतनी ही ख़िदमत क्या कम होगी। मेरी तो राय यह हरगिज़ न होगी कि आप आजिज़ होकर छोड़ दें। आप रफ़्ता-रफ़्ता एक ख़ासा बड़ा काम भी कर सकेंगे। यह मेरी राय है मगर आप हालात से मेरी बनिस्बत कहीं ज़्यादा वाक़िफ़ हैं और मुझसे बेहतर राय क़ायम कर सकते हैं।

इस ख़ुतबे का उर्दू तर्जुमा जल्द भेज दीजिए। या तो ख़ुद बराहे रास्त रसालों को भेज दीजिए या (एक और ख़याल आता है) यह गश्ती ख़त और यह ख़ुतबा मुझे भेज दीजिए। यह ख़त बतौर इस ख़ुतबे के ज़मीमे[3] के मैं अपनी तरफ़ से साथ ही भेज दूँ, जैसी आपकी राय हो।

आपका मुख़्लिस

इश्तियाक़ हुसैन

ख्वाजा ग़ुलामउस्सैयदेन

२७६

अलीगढ़
१२ नवम्बर १९२८

मुकर्रमी तसलीम।

मुझे आपसे ज़ाती तौर पर शर्फ़-नियाज़[१] हासिल नहीं है लेकिन मैं बहुत अर्से से आपकी दिलनशीन तसानीफ़ और अफ़सानों को शौक़ से पढ़ता रहा हूँ और आपके अदबी ज़ौक़ और क़ाबलियत का मद्दाह[२] रहा हूँ। मैंने अभी हाल में अपने मुहतरम[३] दोस्त सैयद सज्जाद हैदर साहब के तवस्सुत[४] से आपका नया नाविल 'चौगाने हस्ती' पढ़ा। मैं इस तसनीफ़ पर आपको निहायत ख़ुलूस और गर्मजोशी से मुबारकबाद देता हूँ। मैंने अंग्रेज़ी और दूसरे योरुपी ममालिक के अफ़साने बहुत बड़ी तादाद में पढ़े हैं और मैं वसूक़[५] के साथ कह सकता हूँ कि आपका यह नाविल उनके सफ़े अव्वल के नाविलों से किसी तरह कम नहीं है। गुज़िश्ता चन्द माह में हिन्दुस्तान की Creative genius ने दो ज़बरदस्त चीज़ें पैदा की हैं—एक नेहरू रिपोर्ट दूसरी चौगाने हस्ती। मेरी ख़्वाहिश और इल्तिजा[६] है कि आप उर्दू अदब की ख़िदमत और सरपरस्ती को जारी रखें। अगर आपने इस तरफ़ से अपनी तवज्जो को हटा लिया तो यह न सिर्फ़ उर्दू अदब पर ज़ुल्म होगा बल्कि ख़ुद अपनी ग़ैर-मामूली अदबी क़ाबलियत के साथ नाइंसाफ़ी होगी।

उम्मीद है कि आप इस पुरख़ुलूस और दिली हदियए तहनियत[७] को क़बूल करेंगे।

नियाज़मन्द
ख़्वाजा ग़ुलामउस्सैयदेन

---

१ मेल-मुलाक़ात २ प्रशंसक ३ आदरणीय ४ माध्यम ५ विश्वास ६ प्रार्थना ७ बधाई-भेंट।

मौलवी अब्दुल माजिद दरियाबादी

२७७

दरियाबाद, बाराबंकी
२८ सितम्बर, १९२८

बन्दानवाज तसलीम

आपकी 'चौगाने हस्ती' को खत्म किये कई हफ्ते हो चुके। जी बहुत था कि हमदर्द के लिए खुद ही रिव्यू लिखूँगा लेकिन जिस तफ्सील से लिखने को जी चाहता था उसकी फुर्सत न मिलना थी न मिली। आखिर आज हारकर एक दोस्त के पास भेज देता हूँ कि वह मेरी मर्जी के मुताबिक रिव्यू कर दें।

'बाजारे हुस्न' की सैर अलबत्ता अभी तक नहीं की। आपसे यह दरयाफ्त करना भूल गया था कि वह मिलेगी कहाँ?

एक ड्रामे का मुख्तसर[1] प्लाट अर्से से जेहन में है। आपसे बेहतर इसे कौन लिखेगा। ऐसा हो कि स्टेज पर चलकर आ सके। आप नाम ही से सारे प्लाट को समझ लेंगे — 'तिलिस्मे फ़िरंग' या ज्यादा सादा व आमफ़हम नाम 'गोरी बला'। बस यही आलसिबन्नाम्ना कैरेक्टर जरा खूब खोलकर दिखा दिया जाये। नेहरू रिपोर्ट और लखनऊ कान्फ्रेंस के सिलसिले में मुझे पूरी तरह अन्दाजा हुआ कि हमारे यहाँ के बड़े-बड़े आजादतलब भी अपनी सारी जंग 'अंग्रेज' के खिलाफ महदूद रखना चाहते हैं, न कि 'अंग्रेजियत' के खिलाफ। अंग्रेज को निकालकर खुद अंग्रेजियत के रंग में गर्क हो जाना चाहते हैं। अंग्रेजियत के सिस्टम की बुराई अब तक हमारी समझ में नहीं आई है। पांस्पुर वाली तरक्कीयें और आम सेवकामासे उसूले जिन्दगी सारे हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों के हाथों फैलाने की फिक्र में लगे हुए हैं। इस बहमियत को पूरी तरह expose करना है।

इस रंग के ड्रामे को आपसे बेहतर कौन लिख सकता है और आप चाहें तो बहुत जल्द लिख डाल सकते हैं। ज्यादा तसलीम।

मख्लुस माजिद

---

१ संक्षिप्त

२७८

दरियाबाद बाराबंकी
२५ अक्तूबर १९५८

करमफ़र्मा[1]

आपका परवाना पहुँच गया था। शुक्रिया अदा करता अलबत्ता रहा आज के वक़्त रसीद तक लिखने की तौफ़ीक़ न हुई। बहरहाल रसीद व शुक्रिया आज दोनों अदा हैं। रिव्यू भी अगर ख़ुदा को मंज़ूर है कुछ रोज़ में निकल जायेगा।

'चीनामे हुस्ती' मैंने एक मुसलमान नौजवान दोस्त को दे दी थी जो कलकत्ता यूनिवर्सिटी के ताज़ा एम॰ ए॰ (हिस्ट्री) हैं और उर्दू अदब का भी अच्छा ख़ासा मज़ाक़ रखते हैं। उनसे और कई किताबों पर भी रिव्यू लिखवा चुका हूँ। आपकी किताब जब उनके पास भेजी तो मुक़द्दमतन्[2] बाज़ Points लिख दिये थे कि इन पहलुओं को रिव्यू में दिखायें। बदक़िस्मती से उन्होंने किताब के मुताल्लिक़ एक बिल्कुल दूसरी राय क़ायम की और आज जुदा जुदा करके रिव्यू लिखकर भेजा। मैं इस रिव्यू को बिजिन्सिही[3] आपकी ख़िदमत में रवाना कर रहा हूँ। ज़ाहिर है कि मैं इससे मुत्तफ़िक़[4] नहीं और इसलिए इसे शाया भी न कराऊँगा। ताहम मैं चाहता हूँ कि आपके नोटिस में यह बात आ जाये कि मुसलमानों का एक तबक़ा इस किताब को इस पहलू से भी देख रहा है। मैं रिव्यू निगार के बारे का हरगिज़ तस्लीम नहीं करता। मुझे कहीं भी Anti-Islamism और Aggressive क़िस्म की फ़िरक़ापरस्ती नज़र नहीं आई (हालाँकि मैं रिव्यू-निगार साहब से कहीं ज़्यादा fanatic क़िस्म का मुसलमान हूँ)। ताहम आपके इल्म में यह ख़बर आ जाना चाहिए कि एक जमात के नज़दीक आपकी इबारत से ऐसा मफ़्हूम[5] भी निकलता है।

बाद मुलाहज़ा यह रिव्यू वापस फ़रमा दिया जाये। मैं उन साहब को वापस करके किसी दूसरे साहब से लिखवाऊँगा। ख़ुद लिखने की फ़ुर्सत कहाँ से निकालूँ। ज़्यादा तसलीम।

मुख़्लिस माजिद

---

१ मेहरबान २ शुरू में ३ ज्यों का त्यों ४ सहमत ५ आशय।

मार्फ़त मौलवी सैयद हाशिमी साहब,
लाल टेकरी हैदराबाद (दकन)

मुहतरम बन्दा तसलीम।

आपने अपने इनायतनामे मुवर्रिख़ा[1] २ जनवरी में वायदा फ़रमाया था कि एक हफ़्ते के अन्दर क़ाज़ी पर सबक़ लिखकर भेज दूँगा। उस वक़्त से मुझे उसका इंतज़ार रहा। उसके बाद मैंने यहाँ से बज़रिये तार आपकी ख़िदमत में यादविहानी की। उसका जवाब भी नहीं मिला जिससे मुझे बेहद तरद्दुद[2] है। इस सबक़ की वजह से काम रुका पड़ा है। मैं आपका निहायत ममनून[3] हूँगा अगर आप अज़राहेकरम[4] जहाँ तक जल्द मुमकिन हो लिखकर भेज देंगे। अब ज़्यादा देर न लगाइये। इससे बड़ा हर्ज हो रहा है।

इलाहाबाद में आपसे मिलकर बहुत ख़ुशी हुई लेकिन इस सरसरी मुलाक़ात में सेरी[5] न हुई। अगर लखनऊ आना हो तो ज़रूर हाज़िरे-ख़िदमत हूँगा।

इसका जवाब जल्द इनायत फ़र्माइये।

नियाज़मन्द

अब्दुल हक़

बंजारा रोड, करीमाबाद
हैदराबाद (दकन)
१४ फ़रवरी १९३०

बिरादरे मुहतरम तसलीम।

आपका इनायतनामा मुवर्रिख़ा २१ जनवरी मुझे कल मिला। पर यह औरंगाबाद से लौटा हुआ यहाँ पहुँचा। आपकी इस इनायत और ज़हमत का मैं तहे दिल से शुक्रगुज़ार हूँ। क़ाज़ी का सबक़ आपने बहुत ख़ूब लिखा है। उसे पढ़कर बहुत ख़ुशी हुई और आज ही मैन लिखने के लिए दे दिया है। अलबत्ता मुक़र्ररा[6] सफ़हात[7] से किसी क़दर बड़ा हो गया था इसलिए कहीं-कहीं से चन्द सतरें कम कर दी हैं लेकिन इससे उसकी शान में फ़र्क़ नहीं आने पाया।

नियाज़मन्द

अब्दुल हक़

---

१ दिनांक २ चिन्ता ३ आभारी ४ कृपया ५ तृप्ति ६ निर्धारित ७ पृष्ठों

किदवाई

२८१

मुसलिम यूनिवर्सिटी
अलीगढ़।
२१ नवम्बर १९२८

मुकर्रमी

आपका कार्ड मिला। याद फ़रमाने का शुक्रगुज़ार हूँ। मैं आपके ख़त का इंतज़ार करके सज्जाद हैदर साहब से 'चौगाने हस्ती' आरियतन्[1] लेकर पढ़ी और मैं आपको एक ऐसी अज़ीमुश्शान तसनीफ़ पर सच्चे दिल से निहायत मुख्लिसाना[2] मुबारकबाद पेश करता हूँ। आपकी तसानीफ़ के मुताल्लिक़ मेरा कुछ अर्ज़ करना छोटा मुँह बड़ी बात है लेकिन फिर भी यह अर्ज़ किये बग़ैर नहीं रह सकता कि मुझे उर्दू में बहुत कम ऐसी उम्दा और कामयाब नाविलें पढ़नी नसीब हुई हैं बल्कि बाज़ हैसियात की बिना पर ग़ालिबन मैं ग़लत नहीं कहता कि यह उर्दू का सिर्फ़ एक बेहतरीन नाविल है। अगरचे 'बाज़ारे हुस्न' भी आपकी एक मायए-नाज़[3] तसनीफ़ है लेकिन 'चौगाने हस्ती' उससे कहीं ज़्यादा बढ़ी हुई चीज़ है। अगर 'बाज़ारे हुस्न' एक ख़ास तबक़े एक महदूद[4] जमात के इस्लाह[5] और मफ़ाद[6] के लिए कामयाब मद[7] है तो 'चौगाने हस्ती' एक क़ौम एक मुल्क के बहबूद[8] और बेहतरी की राह में एक कोशिश है जो एक तबक़े की इस्लाह से ज़्यादा मुफ़ीद ज़्यादा वसीअ[9] एक चीज़ है और इस सिलसिले में लगी-लिपटी बातों में मेरे ख़याल में तमाम वो मसायल आपने पेश कर दिये हैं जो हमारी ज़िन्दगी से मुताल्लिक़[10] हैं और हमारी मआशरत के इस्लाह और कामयाबी के लिए अज़-बस[11] ज़रूरी है। तफ़्सीली राय का इस वक़्त गुंजाइश नहीं। सिर्फ़ मैं एक मरतबा फिर मुबारकबाद पेश करता हूँ। मुझे अहसास इस अम्र का है कि उर्दू ने अपनी ज़बान के इतने बड़े मुहसिन[12] की तरफ़ से ऐसी बेपरवाई

---

१ उधार २ विनीत भाव से ३ उच्चकोटि की ४ सीमित ५ सुधार ६ हित ७ कोशिश ८ उन्नति ९ [illegible] १० संबद्ध ११ नितान्त १२ उपकारक

करती है। लेकिन मैं मायूस नहीं हूँ और उम्मीद रखता हूँ कि बहुत जल्द उर्दू को इस गुनाह का कफ्फ़ारा अदा करना पड़ेगा। मैं उस दिन का इंतज़ार कर रहा हूँ जब आप डा॰ टैगोर के हम-पल्ला[1] होंगे और नोबेल प्राइज़ के मुस्तहक़ समझे जायेंगे।

इसका अफ़सोस है कि आपको मेरा ख़त देर से मिला लेकिन इसे क्या कीजिए कि मुझे किताब की इशाअत की ख़बर देर से मिली? बहरहाल अब आप मजबूर हैं तो मैं भी ख़ामोश हो जाऊँगा। 'ख़ाके परवाना' और 'ख़राबो ख़याल' देखने की आरज़ू बाक़ी है।

असनामे ख़याली इन्शाअल्लाह ज़रूर हाज़िरे-ख़िदमत होगी।

ख़ाकसार

— फ़िराक़

---

१ [illegible]

आज़म करहेवी

२८२

इलाहाबाद कोमटा
मियुनिसपाल।
२१ अक्टूबर

मुहिब्बी व मुश्फ़िक़ी तसलीम।

मुझे हाल में आपके कई नाविलों (हिन्दी) को पढ़ने का इत्तफ़ाक़ हुआ। कल 'कायाकल्प' ख़त्म की। फ़िज़ूल तारीफ़ करना मेरा शेवा[1] नहीं है लेकिन 'कायाकल्प' पढ़कर मेरे दिल पर जो असर हुआ उसका इज़हार न करना भी जुर्म है। यूँ तो "चक्रधर 'मुंशी जी' और 'मनोरमा' वग़ैरह कि नावेल के तमाम अफ़राद[2] का नक़्शा आपने निहायत ख़ूबी से खींचा है लेकिन सबसे ज़्यादा जिसकी सीरत[3] ने मेरे दिल पर असर किया वह 'लौंगी' है। आपने उसका इतना नैचुरल कैरेक्टर दिखाया है कि मुस्तग़नी अज़ दाद है।[4]

वतन की तरफ़ आने की कोशिश कर रहा हूँ। अगर मेरे हुस्ने-मन्शा लखनऊ का तबादला हो गया तो शर्फ़े-नियाज़ हासिल करूँगा।

मुख़लिसकेश
आज़म करहेवी

---

१ आदत २ व्यक्तियों ३ चरित्र ४ दाद नहीं दी जा सकती।

हरिहर नाथ

२८३

माधुरी कार्यालय, लखनऊ,
२२ जनवरी, १९३०

प्रिय हरिहर नाथ जी

मैंने बड़े चाव से आपकी सुन्दर और अत्यंत आवेशपूर्ण चीज पढ़ी। इसमें बहुत भाव है और बहुत रस पर कहानी के आवश्यक तत्त्व—कोई विचार कथानक और चरित्र—इसमें नहीं है और इसलिए यह चीज गद्य काव्य है कहानी नहीं। अगर आपकी रुचि इसी ओर हो तो जरूर लिखिए, पर थोथी भावुकता से बचिए। सृजनशील मन को सृजन करना चाहिए—किस चीज का? चरित्रों को उजागर करनेवाली परिस्थितियों का। युवक को आशावादी भावना से लिखना चाहिए, उसकी आशावादिता संक्रामक होनी चाहिए, जिससे कि वह दूसरों में भी उसी भावना का संचार कर सके। मेरा खयाल है कि साहित्य का सबसे बड़ा उद्देश्य उभारना है, ऊपर उठाना। हमारे यथार्थवाद को भी यह बात आँख से ओझल न करनी चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप 'मनुष्यों' की सृष्टि करें साहसी ईमानदार, स्वतंत्रचेता मनुष्य आन पर खेलनेवाले जोखिम उठानेवाले मनुष्य ऊँचे आदर्शोंवाले मनुष्य। आज इसी की जरूरत है। निश्चय ही मानव प्रकृति चुक नहीं गयी। इस तरह की रचनाएँ मुझे आशंका है, लोकप्रिय नहीं हो सकतीं। माधुरी में तो और मैं इसे छापूँगा ही।

मैंने लगभग हफ्ते भर पहले लिखा था कि हंस क्या है और क्या करने जा रहा है। मैंने इसके लिए कहानी लिखने और अपनी सुविधानुसार जल्दी से जल्दी भेज देने का अनुरोध आपसे किया था। मेरा मकसद है समालोचनाओं और दूसरे विषयों के अतिरिक्त हर महीने प्रथम श्रेणी की चुनी हुई लगभग छः कहानियाँ देना। जरूर एक कहानी लिखिए। हिन्दी साहित्य के हमारे नवयुवक लेखकों का भविष्य उज्ज्वल है। लेकिन आप भी जानते हैं कि अपनी खास जगह बनाने के लिए नियमित रूप से लगन से और धीरज के साथ काम करना जरूरी है।

आशा है मुझे आपका आश्वासन मिलेगा कि आप हंस के लिए लिख रहे हैं।

भवदीय

धनपतराय

APPENDIX

168 Saraswati Sadan
Dadar Bombay 14
26th December 1934

Dear Mr Indarnath

Glad to receive your letter of the 16th The answers to your questions are herewith attempted in their order

1) Rangabhoomi is in my opinion the best of my works.

2) I have in each of my novels an ideal character with human failings as well as virtues, but essentially ideal. In Prema sram there is Premshankar in Rangabhoomi there is Surdas Similarly in Kayakalp there is Chakradhar in Karmabhoomi there is Amarkant.

3) The total number of my short stories reaches an approximate figure of 250 Unpublished stories I have got none.

4) Yes, I have been influenced by Tolstoy Victor Hugo and Romain Rolland As regards short stories I was inspired originally by Dr Rabindranath Since, I have evolved my own style.

5) I never seriously attempted drama I have conceived of one or two plots which I thought might be better utilised in a drama. Drama loses its importance when not staged India has not got a stage, particularly Hindi and Urdu What passes for stage is the effete Parsi stage, for which I have a horror

---

पत्र संख्या २१८

Then I never came in touch with drama technique and stage-craft. So my dramas were only meant as reading dramas. Why should I not stick to my novel where I have greater scope to reveal my characters, than I can possibly have in a drama This is why I have preferred novel as a vehicle of my thought I still hope to write one or two dramas As far as financial success (is concerned) this commodity is rare in Hindi or Urdu You may get notorious, but by no means financially independent. Our people have not the weakness of buying books. It is apathy dull-headedness and intellectual lethargy

6) Cinema is no place for a literary person I came in this line as it offered some chances of getting independent financially but now I see I was under a delusion and am going back to my literature. In fact I have never ceased contributing to literary work which I regard as the aim of my life. Cinema is only what pleadership might have meant for me, only healthier

7) I have never been to jail. I am not a man of action My writings have several times offended Power one or two of my books were proscribed.

8) I believe in social evolution, our object being to educate public opinion. Revolution is the failure of saner methods My ideal society is one giving equal opportunities to all. How is that stage to be reached except by evolution. It is the people's character that is the deciding factor No social system can flourish unless we are individually uplifted What fate a revolution may lead us to is doubtful. It may lead us to worse forms of dictatorship denying all personal liberty I do want to overhaul, but not destroy If I had some prescience and knew that destruction would lead us to heaven I would not mind destroying even

9) Divorce is common among the proletariat. It is only in

the so-called higher classes where this problem has assumed a serious shape Marriage even at its best is a sort of compromise and surrender If a couple mean to be happy they must be ready to make allowances while there are people who can never be happy even under the best of circumstances In Europe and America divorces are not uncommon in spite of all courtship and free intercourse. One of the couple must be ready to bend, male or female does not matter I refuse that only males are to be blamed There are cases where ladies create trouble, fancy grievances. When it is not a certainty that divorce will cure our nuptial evils, I don t want to fasten this on society Of course there are cases when a divorce becomes a necessity But misfit is in my opinion nothing but fastidiousness. Divorce without any provision for the poor wife—this demand is only made by morbid individualism. There is no place for it in a society based on equality

10) Formerly I believed in a supreme deity not as a result of thinking but simply as a traditional belief. That belief is being shattered Of course there is some hand behind the universe; but I don't think it has anything to do with human affairs, just as it has nothing to do with the affairs of ants or flies or mosquitos. The importance which we have given to our own selves has no justification.

I hope that will be sufficient for the present. Not being an English scholar I may have failed to express what I wished to say but I can t help it.

Yours truly

P Chand

Then I never came in touch with drama technique and stagecraft. So my dramas were only meant as reading dramas. Why should I not stick to my novel where I have greater scope to reveal my characters, than I can possibly have in a drama This is why I have preferred novel as a vehicle of my thought I still hope to write one or two dramas. As far as financial success (is concerned) this commodity is rare in *Hindi* or *Urdu* You may get notorious, but by no means financially independent. Our people have not the weakness of buying books. It is apathy dull-headedness and intellectual lethargy

6) Cinema is no place for a literary person I came in this line as it offered some chances of getting independent financially but now I see I was under a delusion and am going back to my literature. In fact I have never ceased contributing to literary work, which I regard as the aim of my life. Cinema is only what pleadership might have meant for me, only healthier

7) I have never been to jail. I am not a man of action My writings have several times offended Power one or two of my books were proscribed.

8) I believe in social evolution our object being to educate public opinion. Revolution is the failure of saner methods My ideal society is one giving equal opportunities to all How is that stage to be reached except by evolution. It is the people's character that is the deciding factor No social system can flourish unless we are individually uplifted What fate a revolution may lead us to is doubtful. It may lead us to worse forms of dictatorship denying all personal liberty I do want to overhaul but not destroy If I had some prescience and knew that destruction would lead us to heaven I would not mind destroying even.

9) Divorce is common among the proletariat It is only in

the so-called higher classes where this problem has assumed a serious shape Marriage even at its best is a sort of compromise and surrender If a couple mean to be happy they must be ready to make allowances, while there are people who can never be happy even under the best of circumstances In Europe and America divorces are not uncommon in spite of all courtship and free intercourse. One of the couple must be ready to bend male or female does not matter I refuse that only males are to be blamed. There are cases where ladies create trouble, fancy grievances. When it is not a certainty that divorce will cure our nuptual evils, I don't want to fasten this on society Of course there are cases when a divorce becomes a necessity But misfit is in my opinion nothing but fastidiousness. Divorce without any provision for the poor wife—this demand is only made by morbid individualism. There is no place for it in a society based on equality

10) Formerly I believed in a supreme deity not as a result of thinking but simply as a traditional belief That belief is being shattered Of course there is some hand behind the universe; but I don t think it has anything to do with human affairs, just as it has nothing to do with the affairs of ants or flies or mosquitos. The importance which we have given to our own selves has no justification.

I hope that will be sufficient for the present. Not being an English scholar I may have failed to express what I wished to say but I can't help it.

Yours truly
P Chand.

Madhuri Office
Lucknow
22 January 1930

My dear Hariharnathji

Your beautiful and intensely passionate piece I read with much interest. This is full of fervour and pathos, but the essentials of story—an idea plot and character—these are lacking and hence it is a गद्यकाव्य and not a story If your taste lies that way do it by all means but avoid sentimentalism A creative mind should create—what ? Situations to illustrate characters. A young man should write in an optimistic mood his optimism should be infectious it should infuse the same spirit in others. I think the highest aim of literature is to uplift elevate. Even our realism should not lose sight of this fact. I would *rather see you creating men bold honest, independent* men adventurous, daring men and men with lofty ideals. This is the need of the hour Certainly human nature has not been exhausted Such pieces I am afraid cannot be popular I shall publish it in Madhuri of course.

I wrote about a week ago what Hans was and what it wa going to do I requested you to write a story for that and send it to me at your earliest leisure. My ideal is to give first class choice stories about half a dozen every month besides reviews and other subjects. Do write a story There is a bright future before our young authors in *Hindi* literature *But* you know as well as I that distinction is the fruit of systematic devotion and application and patient work.

Hoping to get an assurance that you are writing for Hans

Yours Sincerely
Dhanpat Rai

पत्र संख्या २८१

Hans Karyalaya
Benares
1st December 1935

My dear Benarsi Dasji

I had your card and thank you for it. How I wish I could attend Noguchi's lectures but can't help. How to leave the family is the problem. The boys are at Allahabad and when I go my better half must feel so lonely and helpless. If I take her with me, I must have a decent amount to spend. So it is better to be tied down to home, than feel the pinch of money. And to keep young is a question of temperament. There are youths older than myself and elderly people younger than myself. But I hope, I am growing younger every day. I have no faith in the other world and so the idea of otherworldliness, which is the greatest killer of youth does not approach me. Of course there is a healthy youth and a mad youth. Healthy youth consists of a progressive and optimistic view of life at the same time avoiding the pitfalls. Mad youth consists of rashness and exaggeration of one's own capacities and dreams. I have not ceased dreaming and am a bit rash as well. The exaggeration has happily gone. So even of madness I have the better part. I have come to realise that a contented family is a great blessing. And great minds, there are heaps of them. It requires a great deal of judgment to know real greatness from imitation. I cannot imagine a great man rolling in wealth. The moment I see a man rich all his words of art and wisdom are lost upon me. He appears to me to have submitted to the present social order which is based on exploitation of the poor by

---

पत्र संख्या ७७

the rich Thus any great name not dissociated with mammon does not attract me. It is quite probable this frame of mind may be due to my own failure in life. With a handsome credit balance I might have been just as others are—I could not have resisted the temptation But I am glad nature and fortune have helped me and my lot is cast with the poor It gives me spiritual relief.

You have passed Moghalsarai so many times without tak ng the trouble to break for a day And you expect me to come ll the way making my wife angry Peace within is my motto.

the rich Thus any great name not dissociated with mammon does not attract me. It is quite probable this frame of mind may be due to my own failure in life. With a handsome credit balance I might have been just as others are—I could not have resisted the temptation. But I am glad nature and fortune have helped me and my lot is cast with the poor It gives me spiritual relief.

You have passed Moghalsarai so many times without taking the trouble to break for a day And you expect me to come all the way making my wife angry Peace within is my motto.